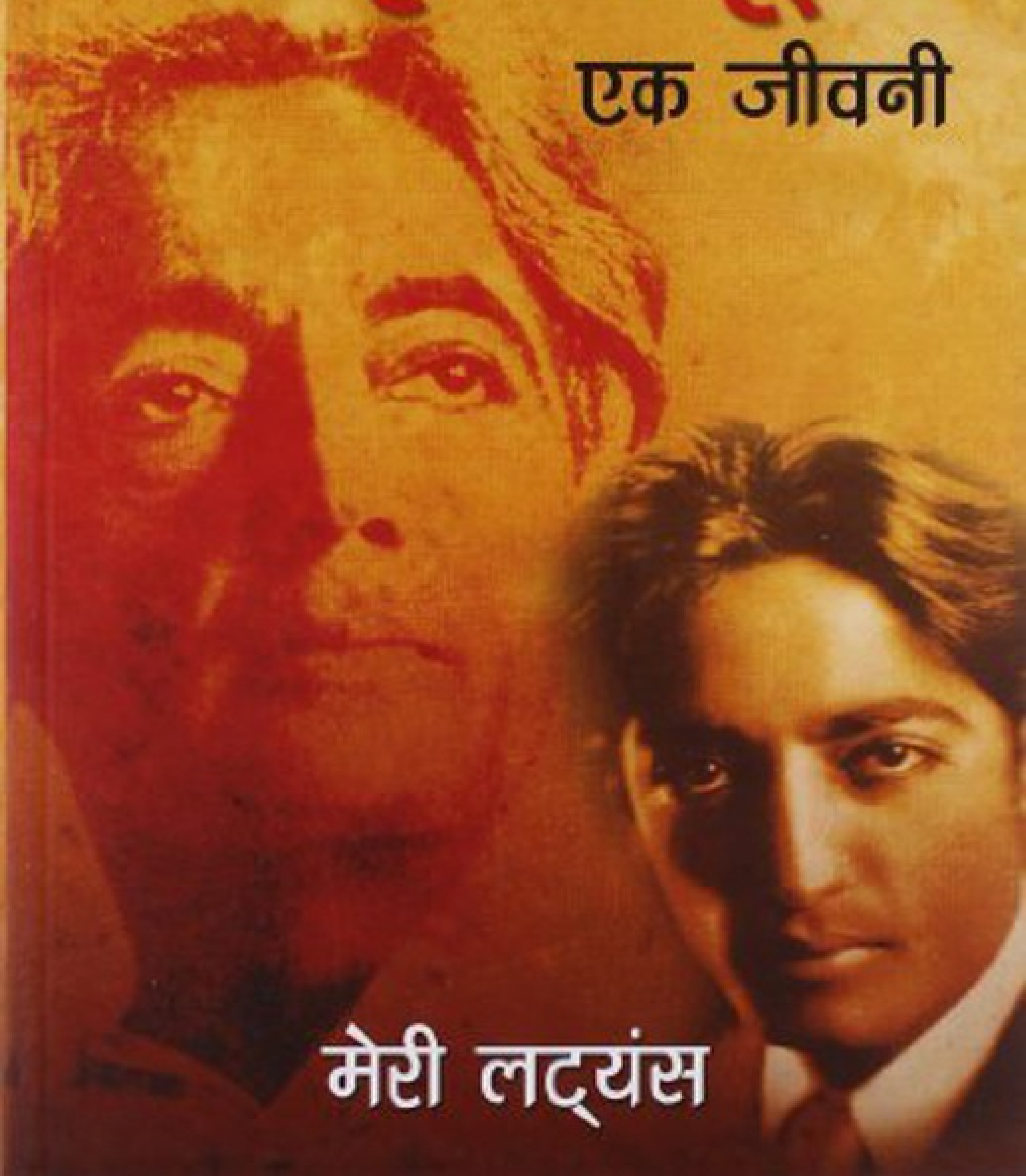
जे. कृष्णमूर्ति

एक जीवनी



मेरी लट्यंस

जे. कृष्णमूर्ति उस शाश्वत सत्य की अभिव्यक्ति हैं जो समय के आरम्भ से विविध रूप-भाषा में व्यक्त होता रहता है, तो भी अव्यक्त है, ज्ञात से मुक्त है। एक ऐसे चिरपथिक की जीवनगाथा, जो अपना रास्ता आप बनाता रहा, बताता रहा कि जीवन एक पथरहित भूमि है, और हरएक को अपनी राह खुद बनानी है, अपना दीपक स्वयं होना है।

“ऐसा सुंदर मानव पहले मैंने कभी नहीं देखा।”

– जॉर्ज बर्नार्ड शॉ

“जब उन्होंने कमरे में प्रवेश किया, मैंने स्वयं से कहा : निश्चित ही, प्रेम के देवता का आगमन हुआ है।”

– खलील जिब्रान

“उन-सा और कोई नहीं जिससे मिलना मैं सौभाग्य मानता।”

– हेनरी मिलर

“कृष्णमूर्ति को सुनना बुद्ध को सुनने सरीखा है – ऐसी शक्ति, ऐसा अंतरस्थ प्रामाण्य।”

– ऑल्डस हक्सले

“वह मानो हमसे हमारा ही परिचय करा देते थे।”

– आर. वेंकटरमण

जे. कृष्णमूर्ति

एक जीवनी

मेरी लट्यंस

राजपाल

अनुवाद
मुकेश गुप्ता

ISBN : 978-93-5064-158-3
प्रथम संस्करण : 2013
J. KRISHNAMURTI : EK JEEVANI
Hindi Translation of The Life and Death of Krishnamurti by Mary Lutyens

Translated by Mukesh Gupta

राजपाल एण्ड सन्ज़
1590, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट-दिल्ली-110006
फोन: 011-23869812, 23865483, फैक्स: 011-23867791

website : www.rajpalpublishing.com
e-mail : sales@rajpalpublishing.com

क्रम

आभार

कृष्णमूर्ति के उन कई मित्रों से मैं क्षमा मांगना चाहूंगी जिनका ज़िक्र इस पुस्तक में नहीं हो पाया है। मुझे उम्मीद है कि वे इस बात को समझ जाएंगे कि कृष्णमूर्ति की जीवनी को एक खंड में समेटने के प्रयास में बहुत से प्रसंगबाह्य विस्तार को छोड़ना पड़ा है, हालांकि, मुझे उम्मीद है, ऐसी किसी भी घटना को नहीं छोड़ा गया है जो उनके विकास की महत्त्वपूर्ण कड़ी रही हो।

डेविड बोह्म, मेरी कैडोगन, मार्क एडवर्ड्स, पुपुल जयकर, डॉ. परचुरे, स्वर्गीय डोरिस प्रैट, वांदा स्कारावेल्ली, और विशेष तौर पर स्कॉट फोर्ब्स और मेरी ज़िंबलिस्ट का मैं गहरा आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने मुझे अपने लेखन को उद्धृत करने की अनुमति प्रदान की। ब्रॉकवुड सेंटर से पुस्तकों, वीडियो टेप और कैसेट्स के रूप में मुझे जिस किसी भी चीज़ की ज़रूरत पड़ी उसे तुरंत भेजने के लिए मैं रे मैकॉय को भी धन्यवाद देना चाहूंगी, और साथ ही राधा बर्नियर को, जिन्होंने थियोसोफिकल आर्काइव्ज़, अड्यार से नित्या द्वारा मिसेज बेसेंट को लिखे उस लंबे पत्र की प्रतिलिपि को उपलब्ध कराया जिसमें 'प्रॉसेस' के आरंभ का वर्णन किया गया था।

स्वर्गीय बी. शिवा राव की मित्रता और उदारता के बिना कृष्णमूर्ति की जीवनी लिखने का प्रयास मैं कभी नहीं कर पाती।

परिचय

कृष्णमूर्ति ने कई बार यह अनुरोध किया था कि उनकी शिक्षा की कोई अधिकारपूर्ण व्याख्या, टीका न हो, लेकिन साथ ही जो लोग उस शिक्षा में दिलचस्पी रखते हैं उन्हें आपस में चर्चा करने के लिए उन्होंने प्रोत्साहित किया। अतः यह पुस्तक उनकी शिक्षा की, जो दर्जनों पुस्तकों, ऑडियो एवं वीडियो टेपों के माध्यम से उपलब्ध है, व्याख्या या मूल्यांकन का प्रयास नहीं है। वास्तव में इस पुस्तक का उद्देश्य प्रकटन, 'रेवलेशन' के उस स्रोत को ढूंढने की कोशिश करना है जिस पर यह शिक्षा आधारित है, एक बड़े ही विलक्षण मानव के स्वरूप को समझने की चेष्टा करना है, उसके विकास के पथ को चिह्नित करने और उसके लंबे जीवन को सम्यक् दृष्टि से देखने का प्रयास है। तीन अलग-अलग विस्तृत खंडों को लिखने में वर्षों का अंतराल रहा, अतः ऐसा कर पाना कठिन था। पहले और दूसरे खंड के बीच ही आठ वर्षों का अंतराल था।

जब पहला खंड यिअर्ज़ ऑव अवेकनिंग प्रकाशित हुआ था तो मुझसे पूछा गया था कि क्या मैं उन घटनाओं में विश्वास करती हूँ, जिनका मैंने ज़िक्र किया है। मेरा जवाब था कि सन् 1928 तक, यानी अपनी बीस साल की उम्र तक, मैं निश्चित ही उनमें विश्वास करती थी, बस 1925 में हॉलैंड में हुई अजीबो-गरीब घटनाओं को छोड़कर। बाद में स्वयं कृष्णमूर्ति के दृष्टिकोण के साथ-साथ मेरा दृष्टिकोण भी बदलता गया।

मुझे ऐसा कोई समय याद नहीं आता जब मैं कृष्णमूर्ति को नहीं जानती थी। ऐसा इसलिए था कि कृष्णमूर्ति जब पहली बार 1911 में इंग्लैंड आए थे तभी मेरी मां का उनसे घनिष्ठ परिचय हो गया था। तब वह सत्रह साल के एक घबराए हुए-से नवयुवक थे जो अपनी उम्र से काफी कम दिखाई देते थे और जिन्हें दो साल पहले भारत में थियोसोफिकल सोसायटी के नेताओं ने आने वाले मसीहा के संवाहक के तौर पर चुन लिया था। मेरी मां 1910 में थियोसोफिकल सोसायटी की सदस्य बनी थीं; तब मैं तीन साल की थी। मेरा लालन-पालन उसी के सिद्धांतों के अनुरूप हुआ था जो बाहर से दिखने में बहुत सरल थे : मानव के भाईचारे में विश्वास और सभी धर्मों की समानता। 'हमारे परम पिता जो स्वर्ग में हैं...' ईसाइयों की इस प्रार्थना के बजाय मुझे हर सुबह यह बोलना सिखाया गया था : 'पूरे जगत में फैली प्रेम की स्वर्णिम शृंखला की मैं एक कड़ी हूँ और मैं वचन देती हूँ कि अपनी कड़ी को दीप्तिमान और मज़बूत रखूंगी।' जब तक मैं करीब तेरह साल की नहीं हो गयी मुझे इस बात का पूरी तरह से एहसास नहीं था कि थियोसोफी का एक गुह्य, गूढ़ मर्म भी है। इस गुह्य मर्म और सोसायटी की आधारशिला का वर्णन पुस्तक के पहले अध्याय में किया गया है।

थियोसोफी के कारण मेरे माता-पिता के बीच दरार पैदा हुई जो वक्त गुज़रने के साथ बढ़ती ही गयी, किंतु दिलचस्प बात यह है कि मेरे पिता के माध्यम से ही मेरी मां को थियोसोफी का पता चला था। 1909 में मेरे पिता एडविन लट्येंस को एक फ्रांसीसी बैंकर गियोम मैलेट से एक अधिकार-पत्र प्राप्त हुआ कि वह वरौंझविल में नॉर्मंडी के तट पर, जो द्येप से ज़्यादा दूर नहीं था, उनके लिए एक घर बनायें। उस जगह का पहला दौरा करके जब मेरे पिता लौटे तो उन्होंने मेरी मां को बताया कि मैलेट दंपति थियोसोफिस्ट हैं। जब उन्होंने इस बारे में पूछताछ की तो मेरे पिता ने कहा कि इस बारे में उन्हें कुछ पता नहीं है, पर हां, उन लोगों के पास पुस्तकों की एक गुप्त अलमारी है, जिसे वे हमेशा ताला लगाकर रखते हैं। मेरी मां को इससे बड़ा कौतूहल हुआ और अगले दौरे पर मेरे पिता के साथ जब वह वरौंझविल गयीं तो मैडम मैलेट को उन्होंने थियोसोफी के विश्वासों की थोड़ी-बहुत रूपरेखा बताने के लिए मना लिया। सबसे ज़्यादा जिस बात ने उनको प्रभावित किया वह थी मैलेट दंपति की सहजता, सरलता, और उनके व्यवहार में किसी हेरफेर का न होना—इसे वह 'क्वेक' धर्म से भी जोड़कर देख सकती थीं। उनमें बस एक झक्कीपना था—वे पक्के शाकाहारी थे। क्रिसमस पर मैडम मैलेट ने मेरी मां को थियोसोफिकल सोसायटी की अध्यक्ष श्रीमती एनी बेसेंट* के 1907 के 'लंदन लेक्चर्स' की एक प्रति भेजी। उनकी आत्मकथा** के अनुसार इसने उनमें इतनी गहरी रुचि जगायी और उन्हें इतना आनंदविभोर कर दिया कि वह खुद को खुशी के मारे चिल्लाने से रोक न सकीं। ऐसा लगता है कि इसने उनके सामने आध्यात्मिक समझ के नूतन परिदृश्य खोल दिये थे।

मेरी मां इस रूपांतरण के लिए परिपक्व थीं। एक महत्त्वाकांक्षी और सफल वास्तुकार के साथ उनके विवाह को तेरह वर्ष बीत चुके थे जो हालांकि उनको बेहद प्यार करता था फिर भी अपने काम में इतना डूबा था कि उसके पास उनका या अपने पांच बच्चों का साथ देने के लिए समय नहीं था। और वह अपनी भावात्मक एवं बौद्धिक मांगों को उद्दीप्त करने के लिए किसी तृप्तिजनक कार्य की अत्यन्त व्यग्रता से तलाश कर रही थीं। पर घर में बैठे-बैठे और एक सामान्य सामाजिक जीवन जीने से उन्हें बेहद ऊब होने लगी थी। वैसे, बच्चों की समुचित देखभाल के लिए एक निपुण आया घर में थी। स्त्रियों के मताधिकार से जुड़े आंदोलन की वह ज़बरदस्त समर्थक बन गयी थीं (पर जेल जाने और ज़बरन खाना खिलाये जाने के डर से वह उस संघर्ष में सीधे शरीक नहीं हुईं); समाजशास्त्र का उन्होंने खूब अध्ययन किया था तथा मोरल एजुकेशन लीग नाम के संगठन की वह सदस्य बन गयी थीं। यह संगठन राज्य स्तर पर वेश्यावृत्ति के नियमन से संबंधित था जिसके लिए उन्होंने पैंफलेट लिखे थे और इंग्लैंड के कई हिस्सों में सम्मेलनों में भाग लिया था। संगठन के कार्य के लिए ही वह यौन रोगियों के 'लॉक हॉस्पीटल' में हर हफ्ते जाती थीं और रोगियों को डिकिन्स पढ़कर सुनाती थीं। (पढ़कर सुनाने की उनमें अद्‌भुत योग्यता थी।) ब्लूम्सबरी स्क्वायर में हमारे घर पर वह सांध्यकालीन गोष्ठियां भी आयोजित करती थीं जिनमें इस प्रकार के विषयों, जैसे, आनुवंशिकी एवं पर्यावरण को

लिया जाता था। अपने कई समकालीन लोगों की तरह उनकी दिलचस्पी पराविद्या (स्पिरिचुअलिज़्म)* में नहीं थी, और न ही गुह्यविज्ञान या भारतीय रहस्यवाद में जो कि उस समय बहुत से पश्चिमी लोगों को अपनी तरफ खींच रहा था क्योंकि डार्विन ने उनके ईसाई विश्वासों को हिला दिया था।

थियोसोफी का यह विश्वास कि एक मसीहा आने वाला है और पूरे विश्व को इस महान घटना के लिए तैयार किया जाना है, मेरी मां को हर ढंग से संतुष्ट करने के लिए काफी था जो कि बड़े धार्मिक स्वभाव की थीं और अपनी युवावस्था में जीसस के प्रति निकटता का गहरा भाव रखने वाली निष्ठावान ईसाई रही थीं। बिलकुल प्रारंभ में, 1910 में, सोसायटी की सदस्य बनने के बाद उनकी सारी ऊर्जा इस कार्य के लिए समर्पित हो गयी थी; सार्वजनिक रूप से बोलने का उन्होंने प्रशिक्षण लिया ताकि हर तरफ जाकर वह थियोसोफी पर व्याख्यान दे सकें (वह एक कुशल वक्ता बन गयी थीं)। डॉ. हेडन गेस्ट (बाद में लॉर्ड गेस्ट) के—जो कि अभी हाल में थियोसोफी में दीक्षित हुए थे—साथ मिलकर उन्होंने एक नया थियोसोफिकल लॉज** खोला था जिसका उद्देश्य उन सभी लोगों को एक सूत्र में बांधना था जो थियोसोफी के भ्रातृत्व के सिद्धांत को व्यावहारिक धरातल पर उतारना चाह रहे थे।

1910 की गर्मियों में श्रीमती बेसेंट भारत से इंग्लैंड आईं। फेबियन सोसायटी में 'एक आदर्श सरकार का स्वरूप' विषय पर उनका व्याख्यान हुआ जिसे सुनने मेरी मां वहां गयीं। बर्नार्ड शॉ और सिडनी वेब मंच पर उपस्थित थे। मेरी मां ने अपने संस्मरण में लिखा : 'पहली बार उनको देखने पर मुझे झटका-सा लगा। वह इतनी अलग दिखाई पड़ रही थीं कि ऐसा कोई व्यक्ति पहले मैंने नहीं देखा था। स्त्री-सुलभ दूधिया वस्त्रों में वह नहाई थीं जबकि उनके विशाल सिर पर छोटे-छोटे सफेद घुंघराले बाल पूरी तरह पुरुषोचित लग रहे थे। तिरसठ साल की होने पर भी उनमें उत्साह की तनिक भी कमी नहीं दिखती थी। ऐसी आश्चर्यजनक जीवंतता के किसी व्यक्ति को मैंने पहले कभी नहीं देखा था।'

कुछ हफ्तों के बाद मेरी मां ने उनको फिर किंग्सवे में 'भावी मसीहा' के ऊपर बोलते सुना। व्याख्यान के बाद साहस कर वह उनसे मिलीं और उनको खाने पर आमंत्रित किया, जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। खाने पर उनके साथ बस एक और व्यक्ति मौजूद थे और वह थे मेरे पिता।

घर पहुंचने पर श्रीमती बेसेंट ने मेरी मां से पूछा कि क्या वह अपना हैट उतार सकती हैं, और ऐसा कहते हुए उन्होंने अपने बालों की सफेद छोटी-छोटी लटों को झटककर फैलाया। मेरी मां को बाद में मालूम हुआ कि यह उनका स्वभाव था। अजीब-सी भूरी रंगत लिये हुए उनकी आंखें बाघ की जैसी दिखती थीं जिन्हें देखकर मेरी मां को लगा जैसे वे उनके आर-पार देख रही हों और उनके गहनतम भावों को पकड़ ले रही हों। अपनी इस पहली मुलाकात में मेरे पिता को श्रीमती बेसेंट पसंद आयीं और वह उनसे तब और प्रभावित हुए जब उन्होंने उनसे टैवीस्टॉक स्क्वायर में बनने वाले थियोसोफिकल

सोसायटी के नये इंग्लिश मुख्यालय का डिज़ाइन बनाने के लिए कहा। (आजकल वहां पर ब्रिटिश मेडिकल एसोसिएशन का कार्यालय है।) पर ज्यों-ज्यों समय बीता, मेरी मां पर श्रीमती बेसेंट के प्रभाव को वह नापसंद करने लगे।

एक आध्यात्मिक अनुभूति से गुज़रने के बाद, जिसने उनका जीवन पूरी तरह से बदल डाला—1929 में, चौंतीस वर्ष की आयु में, कृष्णमूर्ति ने थियोसोफिकल सोसायटी से अपना नाता तोड़ लिया तथा भावी मसीहा के रूप में अपनी भूमिका को त्याग कर वह अपनी ही धार्मिक दृष्टि के साथ विश्व भर में घूमने के लिए निकल पड़े। उनका दर्शन किसी भी रूढ़िवादी धर्म या संप्रदाय से नहीं जुड़ा था। उनकी शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य मानव को उन समस्त पिंजरों से मुक्त करना था जो उनको आपस में बांटते हैं, जैसे जाति, मज़हब, वर्ग, राष्ट्रीयता और परंपरा, और इस प्रकार मनुष्य के मानस में गहन रूपांतरण लाना था।

फरवरी, 1986 में उनकी मृत्यु हुई—तब उनके इक्यानवे वर्ष पूरे होने में तीन माह बाकी थे—और आज भी कृष्णमूर्ति की शिक्षा में लोगों की रुचि में कतई कमी नहीं हुई। वास्तव में उनकी ख्याति फैल ही रही है। बहुत से लोगों को उनके बारे में पता न चल पाने का कारण यह रहा कि उन्होंने कभी व्यक्तिगत प्रचार को महत्त्व नहीं दिया। लोगों को उनके बारे में या तो एक-दूसरे से सुनकर पता लगा या अचानक ही उनकी कोई किताब हाथ में आ जाने पर।

थियोसोफिकल सोसायटी जब कृष्णमूर्ति का प्रचार कर रही थी तो उसके सदस्यों द्वारा उन पर धन, ज़मीन और संपत्ति के उपहारों की वर्षा हो रही थी। जब उन्होंने सोसायटी को छोड़ा और अपनी उस भूमिका को नकारा, तब उन्होंने दानदाताओं को वे सारे उपहार लौटा दिये और एक नये जीवन की शुरुआत की बिना यह परवाह किये कि उनके साथ कोई आयेगा या नहीं, 500 पौंड की वार्षिक वृत्ति के अलावा कुछ भी पैसा आयेगा या नहीं। पर हुआ यह कि उन्होंने एक कहीं अधिक व्यापक और रोचक दुनिया से एक नये श्रोता वर्ग को आकृष्ट किया और जिन कार्यों को भी अपने हाथों में लिया उनमें से ज़्यादातर के लिए पैसे का इंतज़ाम मानो चमत्कारिक ढंग से होता चला गया। वह प्रायः कहा करते थे : 'कोई भी कार्य कीजिए, यदि वह सही है तो पैसा अपने-आप आ जाएगा।'

किसी का भी गुरु होने से कृष्णमूर्ति ने इंकार किया। लोग उनके पीछे अंधे और आज्ञाकारी होकर चलें, वह यह नहीं चाहते थे। गुरु-सत्ता तथा भारत से पश्चिम पहुंची अनुभवातीत (ट्रान्सेंडेंटल) ध्यान पद्धतियां उनके लिये अफ़सोस का विषय थीं। ख़ास तौर पर वह शिष्य नहीं चाहते थे जो उनके चारों तरफ कोई नया धर्म खड़ा कर दें तथा गद्दी-पदवी की रचना कर ये लोग अपनी ही अधिसत्ता न खड़ी कर लें। अपनी शिक्षा के संदर्भ में उनका कुल आग्रह यही था कि यह एक दर्पण का कार्य करे जिसमें लोग स्वयं को जैसे

वे भीतर और बाहर से हैं जस-का-तस देख लें और उन्हें जो दिखाई दिया है यदि वह पसंद न आये तो स्वयं को बदल डालें।

बच्चों की शिक्षा में कृष्णमूर्ति की ख़ास दिलचस्पी थी। वह यह चाहते थे कि इसके पहले कि बच्चों के दिमाग जिस समाज में वे पैदा हुए हैं उसके पूर्वाग्रहों से ग्रस्त होकर जड़ हो जाएं, उनकी सही शिक्षा आरंभ हो जानी चाहिए। जिन सात विद्यालयों की उन्होंने स्थापना की और जो उनके नाम के साथ जुड़े हैं वे आज भी फल-फूल रहे हैं। उनमें से पांच भारत में हैं, एक इंग्लैंड में और एक कैलिफोर्निया में है। उनका सबसे पुराना विद्यालय ऋषिवैली है जिसकी स्थापना 1930 के शुरु में मद्रास और बैंगलोर के बीच हुई थी। उसमें आज 340 विद्यार्थी हैं जिनमें से एक तिहाई लड़कियां हैं और उसे भारत के श्रेष्ठतम स्कूलों में गिना जाता है। उनका सबसे छोटा स्कूल इंग्लैंड के हैंपशायर में है जिसमें केवल साठ विद्यार्थी हैं लेकिन वे चौबीस अलग-अलग राष्ट्रीयताओं के हैं और उनमें लड़के एवं लड़कियों की संख्या बराबर है।

कृष्णमूर्ति की मृत्यु के कुछ समय बाद इंग्लैंड के स्कूल के नज़दीक वयस्कों के लिए एक बड़ा कृष्णमूर्ति केंद्र[1] खोला गया जो कि उससे बिलकुल अलग था। उनके जीवन के आख़िरी दो वर्षों का एक प्रमुख सरोकार इस केंद्र की संकल्पना और निर्माण रहा था। तीन छोटे अध्ययन केंद्रों का निर्माण अब भारत में भी हो चुका है। कृष्णमूर्ति ने 1960 के दशक में इंग्लैंड, भारत और ओहाय में तीन अलग-अलग फाउंडेशनों की स्थापना भी की, जिसमें पुएर्तो रीको का सहायक फाउंडेशन भी शामिल था। ये फाउंडेशन मात्र प्रशासनिक कार्यों के लिए हैं और प्रत्येक का संचालन ट्रस्टियों के एक बोर्ड द्वारा होता है। इसके अलावा इक्कीस देशों में सहायक कमेटियां भी कार्य कर रही हैं।

कृष्णमूर्ति के मित्र उन सभी देशों में फैले हुए थे जिनमें ये कमेटियां थीं तथा महारानियों से लेकर बौद्ध भिक्षु तक उनके मित्र थे। शुरुआती वक्त में बर्नार्ड शॉ, लिओपोल्ड स्टोकोवस्की और विख्यात मूर्तिकार एंटोनी बोर्डेल उनके महान प्रशंसकों में थे, और बाद के दिनों में उनके मित्रों में ऑल्डस हक्स्ले, जवाहरलाल नेहरू और पाबलो कैज़ल्स शामिल थे। आखिरी दिनों में उनकी मित्रता श्रीमती गांधी, औषधि विज्ञान में नोबेल पुरस्कार विजेता प्रोफेसर मॉरिस विल्किन्स, भौतिकविद् डॉ. डेविड बोह्म, जीवविज्ञानी रूपर्ट शेल्ड्रेक और अभिनेता टेरंस स्टैंप से रही। इसके अलावा वे ऐसे कुछ सुविख्यात लोगों के संपर्क में भी आए जिन्होंने उनका साक्षात्कार लिया था या उनके साथ वार्ताएं की थीं, इनमें शामिल थे डॉ. जोनस साक और दलाई लामा। इसमें कोई शक नहीं है कि कृष्णमूर्ति ने विज्ञान और धर्म के बीच में एक सेतु बनाने में मदद की।

कृष्णमूर्ति की वार्ताओं में श्रोताओं की संख्या बहुत बड़ी नहीं हुआ करती थी। उनके जीवन के आखिरी बीस वर्षों में हॉल या टैंट की क्षमता के अनुसार 1,000 से 5,000 तक लोग उनकी वार्ताओं में शामिल होते थे। उनके पास ऐसा क्या आकर्षण था जिससे खिंचकर लोग उनको सुनने आते थे? यह अनोखी बात है कि वहां सबसे ज्यादा संख्या युवाओं की होती थी फिर भी हिप्पी उनमें गिने-चुने ही होते थे। उनके श्रोताओं में

अधिकांश सुसंस्कृत और साफ-सुथरे कपड़े पहनने वाले होते थे जिनमें स्त्री और पुरुष बराबरी से शामिल थे। कृष्णमूर्ति के पास वक्तृत्व प्रतिभा नहीं थी फिर भी ये लोग उनको बड़ी गंभीरता और उत्सुकता से सुना करते थे। उनकी शिक्षा दिलासा देने के लिए नहीं बल्कि लोगों को झकझोर कर जगाने के लिए थी ताकि वे इस विश्व की ख़तरनाक दशा के बारे में सजग हो जाएं जिसके लिए हममें से हरएक ज़िम्मेदार है, क्योंकि उनके मुताबिक प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में मानो एक लघु विश्व ही है।

निस्संदेह कृष्णमूर्ति के आकर्षण का एक कारण उनका व्यक्तित्व था। बचपन को छोड़कर वह हमेशा असाधारण रूप से ख़ूबसूरत दिखाई देते रहे थे, और यहां तक कि अपनी वृद्धावस्था में भी उनका रूपाकार और चालढाल अत्यंत सुंदर दीख पड़ते थे। लेकिन इस सबसे बढ़कर व्यक्तिगत तौर पर उनमें एक चुंबकीय आकर्षण था जो लोगों को खींचता था। वह सार्वजनिक मंच पर कठोरता के साथ और कभी-कभार लगभग उग्र होकर बोल सकते थे किंतु व्यक्तिगत तौर पर या छोटे समूहों में बोलते हुए उनमें बड़ी हार्दिकता और स्नेह का भाव रहता था। हालांकि वह खुद को स्पर्श किया जाना पसंद नहीं करते थे पर जब वह बैठकर किसी से बात कर रहे होते थे तो अक्सर आगे की ओर झुककर अपना हाथ उसके हाथ पर या घुटने पर रख दिया करते थे, और अपने किसी मित्र या मदद मांगने आए किसी व्यक्ति का हाथ मज़बूती से थाम लेना उन्हें पसंद था। इससे भी बढ़कर, जब वह गंभीर बात नहीं कर रहे होते थे तो खूब हँसना, मज़ाक करना और बेसिरपैर की कहानियां सुनना-सुनाना उन्हें प्रिय था। उनकी ज़ोरदार गहरी हँसी मुग्ध कर देने वाली होती थी।

कृष्णमूर्ति की मृत्यु के बाद से लोगों की उनमें रुचि न केवल लगातार बनी हुई है बल्कि बढ़ भी रही है, मैं समझती हूँ यह न केवल इस बात का संकेत है कि उनका वह व्यक्तिगत चुंबकीय आकर्षण कुछ-कुछ उनके कैसेट और वीडियो टेपों के माध्यम से अभी मौजूद है बल्कि यह इस बात का इशारा भी है कि उनकी शिक्षा में वर्तमान युग के लिए एक संदेश है जिसकी लोगों को बेहद ज़रूरत है। उनकी कही कई बातों से सहमत न भी हुआ जाए तो भी उनकी ईमानदारी पर शक नहीं किया जा सकता है।

---

* 1847 में पैदा हुईं श्रीमती बेसेंट का विवाह फ्रैंक बेसेंट नाम के एक पादरी से हुआ था। दो बच्चों के जन्म के बाद उनकी आस्था डगमगा गयी और अपने पति को उन्होंने साहस कर यह बतला दिया। पति ने उनको तलाक दे दिया तथा बच्चों के संरक्षण का अधिकार भी प्राप्त कर लिया। हालांकि अदालत में श्रीमती बेसेंट ने बच्चों का अधिकार पाने के लिए कड़ा संघर्ष किया और अपना केस खुद लड़ा। इसके बाद वह घोषित निरीश्वरवादी और समाज सुधारक बन गयीं; वह चार्ल्स ब्रैडलॉ की सहकर्मी और बर्नार्ड शॉ की घनिष्ठ मित्र भी रहीं। 1889 में डब्ल्यू. टी. स्टेड ने जब उनको थियोसोफिकल सोसायटी की एक संस्थापिका मैडम ब्लावात्स्की की पुस्तक ‘द सीक्रेट डॉक्ट्रिन’ की

समीक्षा करने के लिए कहा तो उसे पढ़ कर वह थियोसॉफी की अनुयायी बन गयीं।

** मेरी मां की आत्मकथा, कैंडल्स इन द सन (हार्ट-डेविस, 1957)

* यह विश्वास कि मृत लोगों का संवाद जीवित लोगों से, विशेषकर कुछ माध्यमों के द्वारा हो सकता है – उस समय भी एक बड़ा ही ज्वलंत एवं विवादित प्रश्न था। इसके साक्ष्यों की छानबीन के लिए इंग्लैंड में 1882 में 'द सोसायटी फॉर सायकिकल रिसर्च' की स्थापना की गयी थी। सभी प्रकार के अलौकिक विषयों में लोगों की दिलचस्पी थी।

** सोसायटी अलग-अलग लॉजों में बंटी थी। इंग्लैंड और स्कॉटलैंड के सभी बड़े शहरों में, तथा यूरोप भर में कई लॉजें थीं जो बैठकें और व्याख्यान-यात्राएं आयोजित करती थीं।

1. प्रिंस ऑव वेल्स की पुस्तक ए विज़न ऑव ब्रिटेन में इस केंद्र के फोटोग्राफ हैं। (डबलडे 1989).

1

क्या बालक कृष्णा का कुछ हुआ?

कृष्णमूर्ति के जीवन में सबसे अद्‌भुत बात यह रही कि उनकी किशोरावस्था में जो भविष्यवाणियां की गयीं वे सभी सच साबित हुईं—लेकिन जो सोचा गया था उससे बिलकुल अलग ढंग से। कृष्णमूर्ति के विकास को समझने के लिए थियोसोफी से संबंधित रहस्यवाद की थोड़ी-बहुत जानकारी होना ज़रूरी है, क्योंकि इसी वातावरण में उनका पालन-पोषण हुआ था। 'थियोसोफिकल सोसायटी' की स्थापना सन् 1875 में अमेरिका में हुई। इसका उद्‌देश्य था सार्वभौम मानवीय बंधुत्व के केंद्र का निर्माण करना। रूस की एक असाधारण रहस्यदर्शी, अतींद्रिय दृष्टि रखने वाली एवं चमत्कारी मैडम हेलेना पेत्रोव्ना ब्लावत्स्की ने कर्नल हेनरी स्टील ऑलकॉट के साथ मिलकर इसकी स्थापना की थी; कर्नल अमेरिकी गृहयुद्ध के सेवानिवृत्त सिपाही थे, पराविद्या में उनकी गहरी रुचि थी। उनके अनुसार उनके पास भी अतींद्रिय क्षमताएं थीं। आजीवन 'घनिष्ठ' रहने वाली इस जोड़ी ने, जैसा कि ऑलकॉट ने स्वीकार किया, पूरब की प्राचीन परंपराओं के प्रभाव में आकर अपने रहस्यवादी संप्रदाय का मुख्यालय 1882 में मद्रास के दक्षिण में स्थित अड्‌यार नाम की एक बहुत ही ख़ूबसूरत जगह पर एक विशाल से परिसर में स्थानांतरित कर लिया; यहां पर अड्‌यार नदी बंगाल की खाड़ी से मिलती है; भारत के सबसे विशाल बरगद के पेड़ों में से एक यहां पर है और करीब मील भर लंबा नदी का मुहाना सागर के निर्जन, रेतीले तट से मिलता है। सोसायटी का अंतरराष्ट्रीय मुख्यालय तभी से यहीं पर मौजूद है—इसका विशाल परिसर बढ़ता जा रहा था, नयी इमारतों का निर्माण हो रहा था। यहां से ही सोसायटी की गतिविधियां तेजी से पूरे विश्व में फैली।

मानवीय बंधुत्व और सर्वधर्मसमभाव में आस्था का विचार मात्र सोसायटी का सदस्य बनने के लिए पर्याप्त था। परंतु इसके अतिरिक्त सोसायटी की हृदय-स्थली में एक 'एसोटेरिक सेक्शन' (गुह्यविद्या विभाग) भी था, जिसकी सदस्यता केवल तभी प्रदान की जाती थी जब प्रार्थी ने सोसायटी के प्रति अपनी निष्ठा और उपयोगिता प्रमाणित कर दी हो।

'एसोटेरिक सेक्शन' ने विभिन्न धर्मों की प्राचीन ज्ञान-संपदा में से महान आध्यात्मिक विभूतियों के पदानुक्रम को ग्रहण किया और उसे 'ग्रेट व्हाइट ब्रदरहुड' का नाम दिया। उन्होंने मनुष्य के लिए जन्म-जन्मांतर की यात्रा के पश्चात अंत में पूर्णत्व की प्राप्ति के सिद्धान्त को स्वीकार किया। इसका तात्पर्य था कि अन्ततः प्रत्येक मानव पूर्णत्व को प्राप्त होगा, चाहे कितने ही जन्म लेने पड़ें; इससे इस बात की ओर संकेत मिलता था कि मानव क्रमिक विकास की अलग-अलग अवस्थाओं में है। सोसायटी ने 'मास्टर' (महात्मा) के रूप में पूर्णात्माओं को स्वीकार किया जो कि कर्म के चक्र से मुक्त थे—कर्मचक्र के अटल नियम के अनुसार हम भला-बुरा जो भी बोते हैं, वही पाते हैं तथा जन्म-जन्मांतर के पश्चात मानव जाति के क्रमिक विकास में सहयोगी बनने के लिए हमारा चुनाव किया जाता है। बहुत से मास्टर हैं, किन्तु उस समय जिन दो मास्टरों ने सोसायटी को अपने विशेष संरक्षण में लिया, वे थे मास्टर मौर्य और मास्टर कुथुमी। मैडम ब्लावत्स्की के समय में, ऐसा विश्वास किया जाता है, कि दोनों मास्टर तिब्बत की किसी गहरी घाटी में पराभौतिक मानव शरीर धारण किये हुए एक-दूसरे के निकट संपर्क में रहते थे; वहां से वे अक्सर विश्व के बाकी हिस्सों में विचरण के लिए निकलते थे। वे तिब्बत में रहते हुए भी स्वयं को मूर्त-भौतिक रूप में परिवर्तित करके पत्रों के माध्यम से सोसायटी के संचालकों से संवाद स्थापित कर सकते थे।[*] मैडम ब्लावत्स्की का ऐसा दावा भी था कि वह तिब्बत में महीनों मास्टरों के साथ रह चुकी थीं तथा जिन गूढ़ विद्याओं की वह सदा अभिलाषी रहीं, उनकी प्राप्ति उन्हें स्वयं उनके द्वारा अंगीकृत मास्टर मौर्य द्वारा हुई, जिन्हें आगे चलकर उन्होंने अपने वृहद्काय ग्रंथों 'आइसिस अनवेल्ड' और 'द सीक्रेट डॉक्ट्रिन' के रूप में विश्व को सौंपा। इसके अलावा 'एसोटेरिक सेक्शन' के माध्यम से भी उन्होंने यह कार्य किया।[1]

आध्यात्मिक महात्माओं के पदानुक्रम में मास्टर से भी ऊपर लॉर्ड मैत्रेय, 'बोधिसत्त्व' थे तथा सन् 1909 में कृष्णमूर्ति को खोज लिये जाने के समय थियोसोफी के अनुयायियों द्वारा ऐसा माना जाता था कि जिस प्रकार दो हज़ार साल पहले बोधिसत्त्व ने नवधर्म के प्रतिपादन के लिए जीसस के शरीर को चुना था, उसी प्रकार अब कृष्णमूर्ति को चुना गया है। संसार को जब विशेष आवश्यकता होती है तब बोधिसत्त्व मनुष्य के रूप में अवतरित होते हैं। पदानुक्रम में इनसे ऊपर बुद्ध समेत और भी महान विभूतियां थीं।[2]

1891 में मैडम ब्लावत्स्की का देहांत हुआ और उसके बाद 1907 में सोसायटी के प्रथम अध्यक्ष कर्नल ऑलकॉट का। श्रीमती एनी बेसेंट सोसायटी की अध्यक्ष चुन ली गयीं और अड्यार उनका घर हो गया। वे और उनके प्रमुख सहयोगी चार्ल्स वैब्स्टर लेडबीटर (जो पहले इंग्लैंड के एक चर्च में पादरी थे और मैडम ब्लावत्स्की के शिष्य भी थे), दोनों अतींद्रिय क्षमताओं के धनी थे—हालांकि बाद में श्रीमती बेसेंट ने अपनी अतींद्रिय शक्तियां एक तरफ रख दीं और अपनी अधिकांश ऊर्जा

भारत के 'होम रूल' आंदोलन को समर्पित कर दी। मास्टरों से घनिष्ठ संपर्क की बात दोनों ने स्वीकार की। श्रीमती बेसेंट के मास्टर मौर्य थे जबकि लेडबीटर के कुथुमी – लेडबीटर अपने मास्टर के प्रवक्ता बन गये और मास्टर के निर्देशों का अनुपालन करते हुए संसार में उनके अनुयायियों का शिष्यत्व के गूढ़ पथ पर मार्ग-निर्देशन करने लगे। पर्याप्त रूप से विकसित शिष्यों की तरफ ध्यान देने के लिए मास्टर स्वयं तैयार रहते थे। इस पथ पर पहली सीढ़ी 'परिवीक्षा' ('प्रोबेशन') थी, दूसरी 'स्वीकरण' ('एक्सेप्टेंस') और उसके बाद चार दीक्षाएं जिनका अंत पांचवीं प्रमुख दीक्षा ('एडेप्टहुड') में होता था, जो कि पूर्णत्व की प्राप्ति, निर्वाण थी।

लेडबीटर के अनुसार मास्टर अब भी तिब्बत की उसी घाटी में, उन्हीं शरीरों में रहते थे जिनमें मैडम ब्लावत्स्की ने उन्हें जाना था तथा चमत्कारी ढंग से उन्होंने अपने शरीर को वृद्ध होने से बचा रखा था। यद्यपि वे अपनी घाटी को नहीं छोड़ते थे, फिर भी सूक्ष्म तल पर उनके स्थान पर पहुंचकर उनसे मिला जा सकता था।[3] लेडबीटर शिष्यत्व के वास्ते परीक्षार्थियों को सोते समय सूक्ष्म शरीरों में मास्टर कुथुमी के घर ले जाते थे और प्रातः इस बात की घोषणा करते थे कि पथ के जिस चरण की उपलब्धि वे परीक्षार्थी चाह रहे थे, वे इसमें सफल हुए या नहीं। इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है कि ऐसी कौन सी शक्ति थी जिसका प्रयोग लेडबीटर अपने शिष्यों के ऊपर करते थे—कि वे उनमें तथा मास्टर में तथा अन्य बताए गए देव-पुरुषों के अस्तित्व में इतनी श्रद्धा के साथ विश्वास करने लगते थे। इनके विश्वास से पैदा होने वाली ईर्ष्या और दंभ का भी अनुमान लगाया जा सकता है। लेडबीटर निश्चयपूर्वक यह मानते थे कि वह और श्रीमती बेसेंट कृष्णमूर्ति के अड्यार पहुंचने के समय इतने विकसित थे कि वे दोनों चौथी श्रेणी अर्थात 'अर्हत' में दीक्षित हो चुके थे।

जिद्दू कृष्णमूर्ति का जन्म चेन्नई और बंगलौर के बीच स्थित एक पहाड़ी कस्बे मदनापल्ली में 11 मई, सन् 1895 को हुआ था। पिता जिद्दू नारायणय्या का विवाह अपने रिश्ते की ही संजीवम्मा से हुआ था जिनसे दस संतानों का जन्म हुआ; उनमें से कृष्णमूर्ति आठवें थे। तेलुगुभाषी इस विशुद्ध शाकाहारी ब्राह्मण परिवार की हालत भारतीय मानदंडों के अनुसार कोई बुरी नहीं थी—नारायणय्या ब्रिटिश सरकार के राजस्व विभाग में अधिकारी थे, सेवानिवृत्त होने से पूर्व वे ज़िला मजिस्ट्रेट के पद तक पहुंच गये थे। नारायणय्या थियोसोफी के अनुयायी थे और संजीवम्मा श्रीकृष्ण की उपासिका। आठवें बच्चे को उन्होंने अपने आराध्य का नाम दिया।

संजीवम्मा को ऐसा कुछ पूर्वाभास हो गया था कि उनका आठवां बच्चा असाधारण होगा और इसलिए उन्होंने, अपने पति के विरोध के बावजूद, इस बात का निश्चय किया कि उनका यह बच्चा पूजागृह में ही जन्म लेगा। एक ब्राह्मण लेखक ने लिखा है कि पूजागृह में प्रवेश केवल स्नान और धुले हुए साफ-सुथरे वस्त्र

पहनने के पश्चात ही किया जा सकता था; धार्मिक रीति के अनुसार इस कमरे में बच्चे का जन्म अशोभनीय था; इस जगह जन्म, मृत्यु और मासिक धर्म प्रदोष के सूचक माने जाते थे।[4] इस सबके बावजूद बच्चे का जन्म उसी कमरे में हुआ।

संजीवम्मा के अन्य बच्चों की तुलना में यह एक निरापद प्रसव था। दूसरे दिन प्रातः एक प्रसिद्ध ज्योतिषी ने शिशु की जन्मकुंडली बनाई और बच्चे के एक बहुत महान व्यक्ति बनने की भविष्यवाणी की। सालों तक भविष्यवाणी के पूर्ण होने के कोई आसार नज़र नहीं आए। ज्योतिषी जब भी नारायणय्या से मिलते तो पूछते—"क्या बालक कृष्णा का कुछ हुआ?...प्रतीक्षा करो, मैंने सत्य ही कहा है, एक दिन वह महान और अद्भुत व्यक्ति बनेगा।"

दो वर्ष की आयु में बालक कृष्णा मलेरिया से मरते-मरते बचा। इसके बाद कई सालों तक वह मलेरिया के दौरों और ज़बरदस्त नकसीर से पीड़ित रहा जिसके चलते वह स्कूल से दूर और मां के ज़्यादा नज़दीक रहा। मां के साथ मन्दिर जाना उसे अच्छा लगता। वह इतना खोया-खोया सा स्वप्निल बालक था और पढ़ाई के काम में, जिससे उसे नफरत थी, इतना पिछड़ा था कि शिक्षक उसे मंदबुद्धि समझते थे। इस सबके बावजूद वह चीज़ों को अत्यधिक ध्यानपूर्वक देखने वाला बालक था, जैसा कि वह आजीवन बना रहा। देर तक खड़े-खड़े पेड़ों-बादलों को देखना, फूलों व कीड़ों को बैठकर घूरते रहना। स्वभाव से वह बेहद उदार था, यह दूसरी विशेषता थी जो जीवन-भर उसके साथ रही। स्कूल से अक्सर वह बिना पेंसिल, स्लेट या किताब के लौट आता, पता चलता किसी गरीब बच्चे को वे चीज़ें भेंट कर आया है। सुबह भिक्षा मांगने वाले घर आते—प्रचलन के अनुसार कच्चे चावलों का दान किया जाता, मां कृष्णा को दान बांटने के लिए भेजती और कृष्णा पहले भिक्षुक की झोली में ही सारा चावल डाल कर चला आता तथा और चावल की मांग करता। और शाम को जब भिक्षुकगण पका भोजन मांगने आते तो नौकर उन्हें भगाने का प्रयास करते, तब कृष्णा यह देखते ही भोजन लाने के लिए घर के भीतर दौड़ पड़ता। संजीवम्मा बच्चों के लिए जब कोई मिठाई बनातीं, कृष्णा अपने हिस्से में से भी भाइयों को बांट देता।

कृष्णा के स्वभाव में एक और विशेषता थी जो विचित्र रूप से उसकी स्वप्निल प्रकृति से मेल नहीं खाती थी – वह थी यंत्रों से प्रेम। इसका पता तब चला जब एक दिन उसने पिता की घड़ी के सारे पुर्जे अलग कर दिए, यह जानने के लिए कि यह काम कैसे करती है; इसके बाद उसने स्कूल जाने और खाना खाने तक से इनकार कर दिया, जब तक कि उसने फिर से घड़ी को जोड़-जाड़ कर चालू नहीं कर दिया; शायद वह इसमें कामयाब भी हुआ।

कृष्णा और उससे तीन साल छोटे भाई नित्यानंद (नित्या) का आपस में विशेष जुड़ाव था। स्कूल में नित्या जितना कुशाग्र और तेज़ था, कृष्णा उतना ही अनिश्चित; उसे पढ़ाना मुश्किल काम था और जैसे-जैसे दोनों बड़े होते गए, कृष्णा अपने छोटे

भाई पर ज़्यादा-से-ज़्यादा निर्भर रहने लगा।

सन् 1904 में कृष्णा की सबसे बड़ी बहन की मृत्यु हुई। बीस वर्ष की यह लड़की बहुत ही आध्यात्मिक स्वभाव की थी। बहन की मृत्यु के बाद कृष्णा ने पहली बार अपनी अतीन्द्रिय क्षमता का परिचय दिया : उस मृत लड़की को उसने और मां ने बगीचे में एक विशेष स्थान पर अक्सर देखा। अगले वर्ष कृष्णा जब साढ़े दस साल का था, परिवार के ऊपर एक और अधिक भयानक विपत्ति टूटी—स्वयं संजीवम्मा का देहान्त हो गया। मृत्यु के बाद कृष्णा ने अपनी मां को पहले से भी अधिक स्पष्ट रूप से देखा; नारायणय्या ने इस तथ्य की पुष्टि की है।*

सन् 1907 में बावन साल की आयु में नारायणय्या अनिवार्यतः सेवानिवृत्त कर दिए गए। पेंशन के रूप में पहले मिल रहे वेतन का आधा भर स्वीकृत हुआ; तब उन्होंने किसी भी रूप में अपनी सेवाएं देने के लिए अड्यार में श्रीमती बेसेंट को लिखा। (हालांकि वह रूढ़िवादी ब्राह्मण थे, सन् 1882 से ही सोसायटी के सदस्य थे; थियोसोफी में सभी धर्मों का समावेश था।) उन्होंने लिखा कि वह एक विधुर हैं, उनके पांच से पंद्रह साल के चार पुत्र हैं, और अपनी एकमात्र पुत्री के विवाह के बाद अपने पुत्रों की देखभाल करने के लिए वह अकेले ही हैं। (कृष्णा आठवां बच्चा था, दो छोटे भाई और एक बहन जीवित थी; इसका मतलब है कि बीस साल की लड़की के अलावा चार बच्चे और मर चुके थे।) श्रीमती बेसेंट ने उनके प्रस्ताव को इस आधार पर अस्वीकार कर दिया कि एक तो निकटतम स्कूल तीन मील के फासले पर है और फिर बच्चे परिसर के शांत वातावरण में बाधा बन सकते हैं। सौभाग्यवश नारायणय्या अपने आग्रह पर डटे रहे और आखिरकार सन् 1908 के अंत में उन्हें असिस्टेंट सेक्रेटरी की नौकरी दे दी गयी। 23 जनवरी 1909 को वह अपने बच्चों के साथ अड्यार आ गये। परिसर में कोई आवास उपलब्ध न होने के कारण बाहर एक खस्ताहाल कॉटेज में उन्हें रहना पड़ा जिसके भीतर सफाई का कोई प्रबंध नहीं था। बच्चे जब वहां पहुंचे तो उनकी शारीरिक दशा बेहद खराब थी।

कुछ समय के लिए नारायणय्या की बहन भी अपने पति से झगड़ कर घर की देखभाल के लिए आ गयी; ऐसा लगता है वह एक फूहड़ स्त्री थी, जो खाना बनाना भी ठीक से नहीं जानती थी। सबसे बड़े लड़के शिवराम की इच्छा डॉक्टर बनने की थी, उसने मद्रास के प्रेसीडेंसी कॉलेज में अपना नाम लिखा लिया था। चौदह साल से कम के कृष्णा और ग्यारह साल से कम के नित्या को रोज़ाना छः मील पैदल चलना पड़ता था – मायलापुर स्थित पेन्नातूर सुब्रह्मण्यम हाई स्कूल जाने-आने में। अपनी मूढ़ता के लिए कृष्णा को वहां लगभग रोज़ बेंत खानी पड़ती थी। पांच साल का छोटा सदानंद शारीरिक और मानसिक तौर पर इस लायक नहीं था कि स्कूल जा सके; शेष जीवन भी वह इसी हालत में रहा।

1906 में छप्पन साल की आयु में चार्ल्स लेडबीटर सेक्स से जुड़े एक विवाद में फंस गए, जिसने पूरे विश्व में थियोसोफिकल सोसायटी को दो हिस्सों में बांट दिया।

शिक्षक के रूप में ख्याति अर्जित करने के बाद लेडबीटर 1900 से 1905 के बीच व्याख्यान संबंधी लंबे दौरों पर अमेरिका, कनाडा और ऑस्ट्रेलिया जाया करते थे—लोगों को थियोसोफी में दीक्षित करने और किशोर बालकों को विशिष्ट निर्देशन देने। तभी शिकागो के दो लड़कों ने अपने अभिभावकों के सामने, ज़ाहिर है बिना किसी साज़िश के तहत, यह स्वीकार किया कि लेडबीटर उन्हें हस्तमैथुन के लिए प्रोत्साहित करते रहे हैं। यह वह समय था जब समलैंगिकता को ही घृणा की दृष्टि से नहीं देखा जाता था, बल्कि हस्तमैथुन के बारे में तो यह धारणा थी कि वह दिमागी असंतुलन और अंधेपन की ओर ले जाता है।* श्रीमती बेसेंट को जब यह खबर मिली तो उन्होंने बहुत व्यथित होकर लेडबीटर को लिखा कि यौन-शुचिता, दीक्षा की सबसे प्राथमिक ज़रूरतों में से एक है। लेडबीटर ने जवाब दिया कि किन्हीं विशेष परिस्थितियों में उन्होंने यदि हस्तमैथुन की सलाह दी भी है तो यह समझते हुए कि यौन-विचारों से ग्लानिपूर्ण ढंग से आक्रान्त होने की अपेक्षा इसमें कहीं कम बुराई है; इसके बावजूद उन्होंने वचन दिया कि थियोसोफिकल सोसायटी के भीतर वह फिर कभी इसकी वकालत नहीं करेंगे—लेकिन श्रीमती बेसेंट की ख़ातिर, न कि इसलिए कि वह इसमें विश्वास नहीं करते।

इन आरोपों का जवाब देने के लिए लेडबीटर को लन्दन के ग्रोसनर होटल में एक काउन्सिल मीटिंग में 16 मई, 1906 को उपस्थित होना पड़ा। ऐसा करने से पहले उन्होंने अपना इस्तीफा सोसायटी को सौंप दिया। चर्चाओं से बचने के लिए भारत में सोसायटी के अध्यक्ष कर्नल ऑलकॉट ने वह इस्तीफा मंजूर कर लिया—इससे उन बहुत से सदस्यों को भारी रोष हुआ जो सुनवाई के समय अपनी सफाई न देने वाले लेडबीटर को सोसायटी से निष्कासित करने के पक्ष में थे। इस पूरे प्रकरण के बाद लेडबीटर शांत होकर करीब तीन साल तक इंग्लैंड या जर्सी के देहातों में रहे। इस दौरान सोसायटी के पुराने मित्रों ने उनकी आर्थिक सहायता की; कभी-कभार वह यूरोप का चक्कर लगा लेते थे और निजी तौर पर पढ़ाते भी थे। अधिकांश पुराने शिष्यों ने उनकी शुचिता में पूर्ण विश्वास जताया। जून 1907 में श्रीमती बेसेंट भारी बहुमत के साथ सोसायटी की अध्यक्ष चुनी गयीं। एक तीव्र अभियान के बाद 1908 के आखिर में वह लेडबीटर को फिर से सोसायटी में लाने में कामयाब रहीं—हालांकि लेडबीटर ने फिर कभी कोई औपचारिक पद ग्रहण नहीं किया। श्रीमती बेसेंट ने उनको भारत आने का बुलावा भेजा, 10 फरवरी 1904 को वे अड्यार पहुंचे; तब तक नारायणय्या को वहां आए तीन सप्ताह भी नहीं हुए थे।

हैडक्वार्टर की इमारत के नज़दीक एक छोटे से ऑक्टेगन रिवर बंगले में लेडबीटर रहने लगे। पूरे विश्व से आने वाली डाक को संभालना उनका मुख्य काम था। अपने साथ सेक्रेटरी के रूप में एक युवा डचमैन योहान वान मानन को वह साथ ले आए थे। आशुलिपि के जानकार एक युवा अंग्रेज़ अर्नेस्ट वुड से भी उन्हें सचिवीय कामों में मदद मिलती थी – यह अंग्रेज़ तीन माह से अड्यार में था और

मासिक पत्रिका 'द थियोसोफिस्ट' के लिए काम कर रहा था। वुड एक साधारण से आवास में रहता था और उसके बराबर के कमरे में सुब्रह्मण्यम अय्यर नाम का एक भारतीय नौजवान रहता था जो नारायणय्या का मित्र भी था। ये दोनों पड़ोसी कृष्णा और नित्या से मिल चुके थे और दोनों ही बच्चों के होमवर्क में मदद किया करते थे।

रोज़ाना शाम को समुद्र तट पर जाकर नहाना वान मानन, वुड और सुब्रह्मण्यम की आदत बन चुकी थी—यहीं पर कृष्णा और नित्या अन्य बच्चों के साथ पानी में खेलते हुए अक्सर दिख जाते थे। वान मानन ने एक दिन लेडबीटर को अपने साथ चलने की सलाह दी क्योंकि उसे ऐसा विश्वास था कि एक लड़के में लेडबीटर की दिलचस्पी हो सकती है। लेडबीटर साथ गए और वहां पहुंचते ही कृष्णा पर फौरन उनकी दृष्टि जम गयी—जैसा कि उन्होंने कहा, उसके जैसा अद्‌भुत आभा-मण्डल उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था, स्वार्थ का उसमें एक कण तक नहीं था। लेडबीटर ने वुड के सामने भविष्यवाणी की : एक दिन यह बालक महान आध्यात्मिक शिक्षक होगा। वुड को आश्चर्य हुआ क्योंकि होमवर्क कराते समय उसकी दृष्टि में कृष्णा की छवि एक मूर्ख बालक की बन गयी थी।

कृष्णा को समुद्र तट पर देखे ज़्यादा वक्त नहीं गुज़रा होगा कि लेडबीटर ने नारायणय्या को अपने लड़के को स्कूल की छुट्‌टी वाले दिन अपने बंगले पर लाने के लिए कहा। नारायणय्या ने ऐसा ही किया। लेडबीटर ने कृष्णा को अपने पास बैठाया और उसके सिर पर हाथ रखा—फिर वह उसके पिछले जीवन के बारे में बताने लगे। इसके बाद हर शनिवार और इतवार को यह क्रम चलने लगा—शुरू में नारायणय्या हमेशा उपस्थित रहते थे और खुद ही पिछले जन्मों का विवरण नोट करते जाते थे, बाद में वुड यह कार्य शॉर्टहैंड में करने लगे। सभी जन्मों में कृष्णा को अलक्योनी (Alcyone) का नाम दिया गया (बाद में 'द थियोसोफिस्ट' में 'द लाइव्ज़ ऑव अलक्योनी' क्रमशः प्रकाशित हुआ था)। कृष्णा के साथ लेडबीटर की पहली मुलाकात की तारीख निश्चित नहीं है, पर चूंकि श्रीमती बेसेंट बिना इस सबकी जानकारी के अमेरिका के व्याख्यान दौरे के सिलसिले में 22 अप्रैल, 1909 को अड्‌यार छोड़ चुकी थीं, इसलिए इतना तो अनुमान लगाया जा सकता है कि यह सब इसके बाद ही हुआ होगा।

लेडबीटर की समलैंगिक प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए इस बात पर ज़ोर देना ज़रूरी है कि यह कृष्णा का बाहरी रूप नहीं हो सकता जिसने लेडबीटर को आकर्षित किया हो। यदि कृष्णा की अद्‌भुत आंखों को छोड़ दें तो उस समय उसका चेहरा-मोहरा ऐसा कतई नहीं था जो किसी को आकर्षित या प्रभावित कर सके। बहुत ही दुबला-पतला, कुपोषण का शिकार, मच्छरों के दंश से ढंका, टेढ़े-मेढ़े दांत, भौंहों में भी जूं रेंगती हुई, घुटा हुआ सिर और लटकती चोटी। इसके अतिरिक्त उसकी भाव-भंगिमा इतनी खोई-खोई सी थी कि वह दिखने में करीब-करीब बौड़म ही लगता था। उस समय के जानकार लोगों का कहना था कि कृष्णा और सदानंद

के बीच चुनाव करने में बहुत फर्क नहीं पड़ता। वुड के मुताबिक शारीरिक रूप से वह इतना कमज़ोर था कि उसके पिता इस बात को कई बार बोल चुके थे कि उसका मरना तय है। (कृष्णा ने खुद आगे चलकर कहा कि उसकी मृत्यु निश्चित तौर पर हो जाती अगर लेडबीटर ने उन्हें 'खोज' नहीं लिया होता।)

लेडबीटर के साथ अपनी मुलाकात का विवरण कुछ सालों बाद कृष्णा ने अपने शब्दों में लिखा :

> जब मैं पहली बार उनके कमरे में गया तो मैं बहुत डरा हुआ था, जैसा कि अधिकांश भारतीय बच्चे विदेशियों के पास जाने से डरते हैं। मुझे नहीं मालूम कि इस तरह का भय क्यों पैदा होता है—रंग का फर्क निश्चय ही एक कारण हो सकता है, किंतु इसके अलावा उस समय, जबकि मैं बच्चा ही था, राजनीतिक आंदोलन बहुत ज़ोरों पर था और इधर-उधर की बातों से हमारी कल्पनाओं में हलचल मची हुई थी। मैं यह भी ज़रूर स्वीकार करूंगा कि भारत में रहने वाले यूरोपियन कतई भी हमारे प्रति सामान्य सहृदयता तक नहीं दिखाते थे तथा अक्सर निर्दयता के ऐसे कई दृश्य मैं देखा करता था जिनसे मेरी कड़वाहट और बढ़ जाती थी। इसलिए एक ऐसे अंग्रेज़ से मिलना, जो इतना भिन्न था और साथ ही थियोसोफिस्ट भी था, हमारे लिए अचरज से कम नहीं था।[5]

ऑक्टेगन बंगले में इन बैठकों के शुरू होने के कुछ समय बाद ही लेडबीटर ने वुड को बताया कि इस बालक को लॉर्ड मैत्रेय का माध्यम बनना है (अथवा 'वर्ल्ड टीचर'—जैसा कि उन्हें ज़्यादातर पुकारा गया) और उन्हें, यानी लेडबीटर को, मास्टर कुथुमी ने इस बात के लिए निर्देशित किया है कि वह बालक को उस नियति के लिए प्रशिक्षित करें।[6]

लगता है लेडबीटर उस तथ्य को या तो भूल चुके थे या उसे उन्होंने दरकिनार कर दिया था कि वह पहले भी एक 'माध्यम' का चुनाव कर चुके थे—चौदह साल के खूबसूरत से दिखने वाले एक बालक ह्यूबर्ट के रूप में। वह शिकागो के डॉ. वेलर वान हुक का बेटा था, जो यौन प्रकरण के समय उनके निष्ठावान समर्थक भी रहे थे। अमेरिका की यात्रा के समय शिकागो में श्रीमती बेसेंट ने 'भावी शिक्षक' पर एक सार्वजनिक व्याख्यान में घोषणा की थी कि 'इस बार हम पश्चिमी जगत में उनके आगमन की राह देख रहे हैं—पूरब में नहीं जहां ईसा का आगमन दो हज़ार साल पहले हुआ था।' ग्यारह साल की उम्र में ह्यूबर्ट को लेडबीटर ने शिकागो में चुना था; श्रीमती बेसेंट 1907 में उससे मिल चुकी थीं और अब दोबारा 1909 में मिलने पर उन्होंने उसकी मां को समझा-बुझाकर अड्यार आने के लिए राज़ी कर लिया था ताकि लेडबीटर ह्यूबर्ट को प्रशिक्षित कर सकें। मां और बेटे को वहां नवंबर के मध्य में पहुंचना था, बिना किसी अंदेशे के कि ह्यूबर्ट का स्थान कोई और

ले चुका है।*

इससे बहुत पहले लेडबीटर ने नारायणय्या को इस बात के लिए राज़ी कर लिया था कि कृष्णा और नित्या को स्कूल से निकालकर उनकी देखरेख में शिक्षित किया जाए (नित्या के बिना कृष्णा कुछ भी करने के लिए राज़ी नहीं था)। चार निजी अध्यापक उन दोनों के लिए लगाए गए : अर्नेस्ट वुड, सुब्रह्मण्यम अय्यर, डॉन फेब्रीजिओ रुस्पॉली (जो इटैलियन नेवी से इस्तीफा दे कर थियोसोफिस्ट बने थे) और डिक क्लार्क जो अड्यार में नये-नये आए थे और इंजीनियर रह चुके थे। साथ में स्वयं लेडबीटर भी थे जो बच्चों को इतिहास पढ़ाते थे। किंतु पढ़ाए जाने वाला सबसे महत्त्व का विषय अंग्रेज़ी भाषा थी, ताकि लड़के इस लायक हो जाएं कि जब श्रीमती बेसेंट अड्यार लौटें तो वे उनसे बात कर सकें। लड़के पहले से थोड़ी-बहुत अंग्रेज़ी जानते थे, इस विषय में उन्हें कठिनाई नहीं हुई—जल्दी ही वे अपनी मातृभाषा तेलुगु भूल गए और दुर्भाग्य से उनको किसी और भारतीय भाषा का ज्ञान नहीं कराया गया।

कृष्णा और नित्या को साफ-सुथरा बनाने की ज़िम्मेदारी भी डिक क्लार्क को सौंपी गयी थी। हर सुबह उनकी जुंएं साफ की जातीं और उन्हें स्वच्छ कपड़े पहनाए जाते। उनके आगे के बाल बढ़ने दिए गए और कंधे तक लटके पीछे के बाल काट दिए गए। कृष्णा के दांतों को संवारने के लिए प्लेट फिट की गयी, हर दिन क्लार्क को उसे कसना पड़ता था। इस सबके अलावा अड्यार में रह रहे एक ऑस्ट्रियन जॉन कोर्ड्स को उन दोनों को शारीरिक रूप से मज़बूत बनाने की ज़िम्मेदारी सौंपी गयी। लेडबीटर की देख-रेख में उन्हें नहलाया-धुलाया जाता और यह सुनिश्चित किया जाता कि जांघों के बीच सफाई हो गई है या नहीं। धोती या लुंगी बांध कर नहाने के हिंदुओं के पारंपरिक तरीके पर उनको सख्त ऐतराज़ था। पुष्टिदायक आहार पर तो ध्यान दिया ही जाता था, साथ में व्यायाम, लंबी दूरी तक साइकिल चलाना, तैरना, टेनिस, जिमनास्टिक भी अनिवार्य थे। कृष्णा को इन बाहरी गतिविधियों में मज़ा आता, वह स्वभावतः व्यायामप्रिय था, पर अपनी पढ़ाई में उसकी हालत अब भी निराशाजनक थी। पढ़ने की बजाय वह खुली खिड़की के करीब खड़ा रहता, मुंह बाए, और बिना किसी खास चीज़ पर निगाह टिकाए वह न जाने क्या देखा करता! बार-बार लेडबीटर उसे मुंह बन्द रखने का निर्देश देते—आदेश मानकर वह मुंह बंद कर भी लेता, पर कुछ क्षणों बाद वह फिर अपने आप खुल जाता। आख़िरकार लेडबीटर इतने तंग आ गए कि उन्होंने एक दिन तो कृष्णा की ठुड्डी पर तमाचा जड़ दिया। इस घटना ने उनके बीच के संबंध को समाप्त कर दिया, जैसा कि कृष्णा ने बाद में कहा। उसका मुंह तो बंद हो गया, पर फिर कभी उसने लेडबीटर के प्रति पहले जैसी भावनाएं महसूस नहीं कीं।

शारीरिक देखभाल से भी ज्यादा लेडबीटर का ध्यान लड़कों को गुह्य विद्याओं में प्रशिक्षित करना था। पहली अगस्त की रात को सोते समय वह उन्हें सूक्ष्म शरीरों में

मास्टर कुथुमी के घर ले गए। मास्टर ने उन्हें परीक्षण अवधि के लिए रख लिया और अगले पांच महीनों तक, जब तक कि कृष्णा को स्वीकार नहीं कर लिया गया, लेडबीटर उन्हें सूक्ष्म शरीर में मास्टर के पास पंद्रह मिनट के दिशा-निर्देश के लिए ले जाया करते थे, जिसके आखिर में मास्टर अपनी बात कुछ सरल वाक्यों में समेट देते थे। अगली सुबह ऑक्टेगन बंगले में कृष्णा को जो कुछ भी याद है उसे मास्टर के शब्दों में ही लिख देना पड़ता था। डिक क्लार्क और अड्यार में रहने वाली एक महिला ने इस बात की पुष्टि की थी कि ये नोट्स खुद कृष्णा ने बहुत परिश्रम से लिखे थे—सिवाय वर्तनी और व्याकरण में कुछ सहयोग पाने के। इन्हीं नोट्स को बाद में एक छोटी सी पुस्तक 'एट द फीट ऑव द मास्टर' के रूप में छापा गया, जिसके लेखक का नाम 'अलक्योनी' दिया गया। इस पुस्तिका का सत्ताइस भाषाओं में अनुवाद हो चुका है और यह अब भी छप रही है। अलक्योनी ने प्रस्तावना में लिखा : 'ये शब्द मेरे नहीं हैं, ये मास्टर के शब्द हैं जिन्होंने मुझे शिक्षित किया'।

श्रीमती बेसेंट 17 नवम्बर, 1909 को भारत लौटीं और कृष्णा से पहली बार मिलीं। यह उन दोनों के बीच कभी न खत्म होने वाले स्नेह की शुरुआत थी। अलक्योनी के जन्मों के संबंध में अपने अनुसंधान के बारे में लेडबीटर श्रीमती बेसेंट को तभी लिख चुके थे जब वह यूरोप से वापस लौट रही थीं लेकिन उस बालक को लेकर लेडबीटर की अपेक्षाओं के बारे में उन्हें अड्यार पहुंचने पर ही पता चला। बनारस में होने वाले 'थियोसोफिकल कन्वेंशन'* में जाने से पूर्व वह तीन सप्ताह अड्यार में रुकीं—इस दौरान प्रतिदिन दोनों बालक उनके कमरे में उपस्थित होते और वह उन्हें पढ़ने का अभ्यास करातीं। नारायणय्या और लेडबीटर के बीच बढ़ते तनाव को कम करने में भी वह अपनी भूमिका निभा रही थीं; पिता को इस बात से आपत्ति थी कि बेटों को उनसे लगातार दूर किया जा रहा है। नारायणय्या की सहमति से श्रीमती बेसेंट ने ऐसी व्यवस्था कर दी कि जब तक वह बनारस में रहेंगी तब तक लड़के उन्हीं के कमरे में रहेंगे।

31 दिसंबर को लेडबीटर ने श्रीमती बेसेंट को यह लिखते हुए तार भेजा कि मास्टर कुथुमी ने सूचित किया है कि वह आज रात कृष्णा को अपने शिष्य के रूप में स्वीकार करने जा रहे हैं और वह (श्रीमती बेसेंट) कृपया वहां उपस्थित रहें।[7] रात्रि में जो अनुष्ठान सम्पन्न हुआ उसकी स्मृति के बारे में लिखते हुए अगले दिन श्रीमती बेसेंट ने लेडबीटर से पूछा कि क्या यह सत्य है कि लॉर्ड मैत्रेय ने कृष्णा का दायित्व हम दोनों को सौंपा है। लेडबीटर ने जवाब दिया, "यह सत्य है कि लॉर्ड मैत्रेय ने विधिवत् हमें उनका दायित्व 'ब्रदरहुड' की तरफ से सौंपा है। कृष्णा बहुत गहराई से प्रभावित हुआ है और तब से वह बदल गया है।"

किंतु शीघ्र ही एक बहुत ही दिलचस्प घटना की शुरूआत होनी थी। 1910 की 8 जनवरी को आश्चर्यजनक रूप से दोनों के बीच तार का आदान-प्रदान हुआ। लेडबीटर ने बनारस में श्रीमती बेसेंट को तार भेजा : 'ग्यारह तारीख के लिए दीक्षा

का आदेश हुआ। सूर्य ('द लाइव्ज़ ऑव अलक्योनी' में मैत्रेय का छद्म नाम) स्वयं अनुष्ठान संपन्न कराएंगे। इसके बाद 'शंबाला'* जाने का आदेश है। छत्तीस घंटों के लिए एकांतवास आवश्यक होगा।' जवाब तुरंत आया : 'आवश्यकता के अनुसार सीढ़ियों के दरवाज़े पर ताला लगाकर 'श्राइन' (पावनकक्ष) और मेरे बरामदे के रास्ते को बंद कर दें। ज़रूरत पड़े तो मेरे, मेरे सेक्रेटरी के और मिसेज़ ल्यूबक** के कमरे का प्रयोग करें। प्रत्येक चीज़ के लिए आपको मेरा अधिकार प्राप्त है।'

10 जनवरी सोमवार की शाम से 12 की सुबह तक कृष्णा और लेडबीटर श्रीमती बेसेंट के कमरे में बंद रहे; नित्या और डिक क्लार्क बाहर लगातार पहरा देते रहे। क्लार्क ने दर्ज किया कि लेडबीटर और कृष्णा दो रात और एक दिन के दौरान शुभ मुहूर्त में अपनी काया से बाहर रहे—बीच में कभी-कभी और फिर एकाध बार पर्याप्त पोषाहार (प्रायः गरम दूध) ग्रहण करने के लिए वे वापस आते थे, जिसकी व्यवस्था हम उनके बिस्तर के सिरहाने कर देते थे। कृष्णा श्रीमती बेसेंट के पलंग पर और लेडबीटर फर्श पर लेटे होते थे।[8]

लेडबीटर द्वारा श्रीमती बेसेंट को लिखे एक पत्र के अनुसार 11 जनवरी को प्रातः कृष्णा यह चिल्लाते हुए उठा कि 'मुझे याद है! मुझे याद है!'। लेडबीटर ने कृष्णा से जो कुछ याद है वह बताने के लिए कहा और वे स्मृतियां 12 जनवरी को एक बड़े लंबे पत्र में श्रीमती बेसेंट को लिखी गयीं। लेडबीटर ने श्रीमती बेसेंट को विश्वास दिलाया कि ये स्मृतियां कृष्णा ने अपने शब्दों में लिखी हैं, सिवाय व्याकरण संबंधी कुछ सहयोग और एकाध शब्दों को यहां-वहां रख देने के। कृष्णा ने लिखा कि मास्टर कुथुमी के घर मास्टर मौर्य थे और साथ में श्रीमती बेसेंट और लेडबीटर भी, वे सभी एक साथ लॉर्ड मैत्रेय के घर पर गए, जहां और भी कई मास्टर उपस्थित थे। कृष्णा अपने प्रायोजकों श्रीमती बेसेंट और लेडबीटर के साथ लॉर्ड मैत्रेय के सामने लाए गए, तथा लॉर्ड द्वारा पूछे गए प्रश्नों का सही-सही उत्तर देने के बाद कृष्णा को 'ग्रेट व्हाइट ब्रदरहुड' में शामिल कर लिया गया। अगली रात कृष्णा को विश्व सम्राट ('द किंग ऑव द वर्ल्ड') से मिलाने ले जाया गया जो कि, जैसा कृष्णा ने लिखा, 'एक अत्यंत अद्‌भुत अनुभव था क्योंकि वह एक बालक हैं जो मुझसे अधिक बड़े नहीं हैं, पर असाधारण रूप से सुंदर, प्रभावशाली और वैभवपूर्ण हैं और जब 'वह' मुस्कराते हैं तो सूर्य के प्रकाश के सदृश लगते हैं। 'वह' सागर की तरह शक्तिशाली हैं, इसलिए 'उनके' विरुद्ध कुछ भी नहीं टिक सकता, इस पर भी 'वह' और कुछ नहीं बस प्रेम हैं, इसलिए मैं 'उनसे' ज़रा भी भयभीत नहीं हुआ।'[9]

श्रीमती बेसेंट के कमरे से जब कृष्णा बाहर निकला तो बाहर प्रतीक्षारत लोगों ने उसे साष्टांग प्रणाम किया। इसके तुरंत बाद खींचे गए फोटोग्राफ से निश्चय ही ऐसा दिखता है कि वह किसी बड़े अद्‌भुत अनुभव से होकर गुज़रा हो। बाद के वर्षों में उसे इसके बारे में कुछ भी याद नहीं रहा—औरों द्वारा बतायी गई बातों के सिवा।

मार्च में नारायणय्या कानूनी तौर पर दोनों लड़कों के संरक्षण का दायित्व श्रीमती बेसेंट को सौंपने के लिए तैयार हो गए। अपने कमरे से लगे एक कमरे में वे उन दोनों को ले आयीं, और साथ ही ऑक्टेगन बंगले में उनकी पढ़ाई भी चलती रही। सितंबर में वह उन्हें बनारस ले गयीं, जहां वे उनके साथ उनके घर 'शान्तिकुंज' में ठहरे। श्रीमती बेसेंट के अनुयायियों के विशिष्ट समूह में से कृष्णा ने पांच लोगों को चुना और पूछा कि क्या वह उन्हें शिष्यत्व की योग्यताओं की सीख दे सकता है जिनके बारे में उसे मास्टर कुथुमी ने शिक्षित किया था। उन पांच में से सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज, बनारस के बत्तीस वर्षीय प्राचार्य जॉर्ज अरुंडेल और अंग्रेज़ी के प्रोफेसर ई. ए. वुडहाउस (पी. जी. वुडहाउस के बड़े भाई) भी थे। कृष्णा के ऐसे निवेदन पर हर्षित होते हुए श्रीमती बेसेंट ने लेडबीटर को लिखा : 'उसे खिलता हुआ देखकर बड़ी प्रसन्नता होती है, उसे आशीर्वाद दें... वह बड़ी तीव्रता से विकसित हो रहा है, संकोच या भीरुता का कोई लक्षण नहीं दर्शा रहा है बल्कि एक शालीन और सुरुचिपूर्ण गरिमा... बड़ी विलक्षणता से उसने जॉर्ज (अरुंडेल) का उत्तरदायित्व ग्रहण किया है।' मास्टर की शिक्षाओं के जो नोट्स उसने बनाए थे उन्हें भेज देने के लिए कृष्णा ने स्वयं लेडबीटर को कहा।[*]

कृष्णा के इस काल के बारे में वुडहाउस ने लिखा :

> विशेषकर जिस बात ने हमें प्रभावित किया था वह थी उनकी सहजता ... किसी प्रकार के पक्षपात या कृत्रिमता का उनमें लेशमात्र भी संकेत नहीं था। वह तब भी शांत स्वभाव के थे, बड़ों के प्रति शालीन और आदर से युक्त, और सबके प्रति विनयशील। इसके अतिरिक्त जिन्हें वह पसंद करते थे उनके प्रति उनमें एक प्रकार का अनुराग भी दिखता था जो अत्यंत मनोहारी होता था। ऐसा लगता था कि वह अपनी 'गुह्य' स्थिति से अनभिज्ञ हैं। उन्होंने कभी परोक्ष रूप से भी इस ओर संकेत नहीं किया—एक क्षण के लिए भी, कभी, अपनी वाणी और व्यवहार से इस स्थिति का ज़रा भी भान नहीं होने दिया... दूसरी विशेषता थी उनकी प्रशांत निःस्वार्थता। वह अपने को लेकर ज़रा भी व्यग्र नहीं दिखते थे... हम कोई अंध-श्रद्धालु नहीं थे जो उनमें पूर्णता के अतिरिक्त और कुछ भी देखने को तैयार न हों। हम लोग शिक्षाविद् थे, एक उम्र पार कर चुके थे, और युवावस्था का भी कुछ अनुभव हमें था ही। दंभ या कृत्रिमता का, अपने को 'पवित्र बालक' दिखाने के आडंबर का, यदि उनमें लेशमात्र भी होता तो निस्संदेह हम एक प्रतिकूल निर्णय ले चुके होते।[10]

कृष्णा का जीवन भर जैसा स्वभाव रहा, उसके साथ वुडहाउस का यह विवरण वस्तुतः मेल खाता है।

* इन पत्रों को 'महात्मा लैटर्स' कहा गया, जिनमें से कुछ ब्रिटिश लाइब्रेरी में सुरक्षित हैं।

* कृष्णा के जन्म और बचपन की घटनाओं का ब्यौरा नारायणय्या ने 1911 में एक अंग्रेज़ थियोसोफिस्ट को अड्यार में लिखवाया था और दो भरोसेमंद गवाहों की मौजूदगी में उस पर हस्ताक्षर किये थे।

* The World Through Blunted Sight, Patrick Trevor-Roper, P. 155 (Thames & Hudson, 1988)

* ह्यूबर्ट और उसकी माँ अड्यार में पांच वर्ष रहे। बाद में वह ऑक्सफोर्ड चला गया, विवाह किया और शिकागो में एटॉर्नी बन गया। लेडबीटर के प्रति वह कड़वाहट से भरा हुआ था।

The Last Four Lives of Annie Besant, A.H. Nethercote, p.193n. (Hart-Davis. 1961)

* हर साल बारी-बारी से अड्यार और बनारस में थियोसोफी के अधिवेशन होते थे। सोसायटी की भारतीय शाखा का मुख्यालय बनारस में था, श्रीमती बेसेंट का एक आवास भी यहीं था।

* 'गोबी' नाम के मरुस्थल में एक मरुद्यान (नखलिस्तान) जहाँ गुह्य परंपरा के राजा, हिन्दू धर्मग्रंथों में वर्णित, सनत्कुमार रहते थे।

** पुस्तकालय में काम करने वाली एक अधेड़ महिला जिसका कमरा श्रीमती बेसेंट की बैठक के बगल में था। लेडबीटर की नज़र में उसकी उपस्थिति वहां 'अनिष्टकारी' थी; उसको वहाँ से स्थायी रूप से हटाने तथा उस कमरे की साफ-सफाई कराने का एक बहुत बढ़िया मौका लेडबीटर को मिल गया।

* भेजने से पूर्व लेडबीटर ने नोट्स को टाइप कर लिया था (अब ये नोट्स लुप्त हो चुके हैं); टाइप किया हुआ यह दस्तावेज़ ही 'एट द फीट ऑव द मास्टर' के नाम से प्रकाशित हुआ।

2

एक प्रचंड शक्ति

1911 के आरंभ में इंटरनेशनल ऑर्डर ऑव द स्टार इन द ईस्ट की स्थापना हुई, कृष्णा इसके अध्यक्ष बने, श्रीमती बेसेंट और लेडबीटर इसके संरक्षक। ऑर्डर का उद्देश्य था उन सभी लोगों को एक साथ जुटाना जो निकट भविष्य में 'विश्व शिक्षक' के आगमन में आस्था रखते थे, और साथ ही उसे ग्रहण करने के लिए जनमत तैयार करना। जॉर्ज अरुंडेल को अध्यक्ष का सेक्रेटरी बनाया गया। हेरल्ड ऑव द स्टार नाम की एक त्रैमासिक पत्रिका भी अड्यार से छपनी शुरू हो गयी।

इसी साल की फरवरी में श्रीमती बेसेंट इन बालकों को बर्मा के दौरे पर ले गईं। बुद्ध की इतनी सारी अद्भुत प्रतिमाओं ने कृष्णा को अभिभूत कर दिया, बुद्ध के प्रति उनमें ऐसी श्रद्धा जगी जो कभी नहीं खोई। अड्यार वापस पहुंचने पर लेडबीटर ने श्रीमती बेसेंट को बताया कि मास्टर की ऐसी इच्छा है कि लड़के इंग्लैंड जाएं। इस तरह 22 मार्च को श्रीमती बेसेंट लड़कों के साथ बंबई के लिए रवाना हो गईं। रास्ते में वह बनारस रुकीं, दोनों के लिए यूरोपीय कपड़े खरीदे गए और बचपन के छिदे हुए कानों को एक डॉक्टर की मदद से बड़ी तकलीफदेह स्थिति में सिलवाया गया। (कृष्णा के कानों पर से हल्के घाव के निशान कभी नहीं छूटे।) हिंदू कॉलेज से कुछ महीनों की छुट्टी लेकर अरुंडेल भी उनके साथ हो लिए।

22 अप्रैल को बंबई से वे लोग जहाज़ पर रवाना हुए। लेडबीटर को श्रीमती बेसेंट हर सप्ताह पत्र लिखतीं। पहले पत्र में उन्होंने सूचित किया कि लड़के यूरोपीय कपड़ों को बहुत सलीके से पहन रहे हैं, बस जूते पहनने पर उन्हें 'बंधा-बंधा' सा लगता है, और कृष्णा बहुत खुश है क्योंकि कप्तान ने उसे जहाज़ की कार्य-प्रणाली, विशेषकर 'मारकोनी उपकरण' को देखने की इजाज़त दे दी है।

थियोसोफी के अंग्रेज़ अनुयायियों ने ज़बरदस्त उत्साह के साथ 5 मई को चेरिंग क्रॉस स्टेशन पर श्रीमती बेसेंट और उनके द्वारा संरक्षित लड़कों का स्वागत किया। जिस भव्य नियति को कृष्णा की प्रतीक्षा थी उसे गुप्त नहीं रखा गया था। उसी भीड़ में छत्तीस वर्षीय लेडी एमिली लट्यंस थीं, जिनका जीवन आगे के बीस सालों तक कृष्णा के इर्द-गिर्द ही

घूमना था। श्रीमती बेसेंट लड़कों को लेकर इंग्लैंड की अपनी एक निकटतम मित्र मिस ईस्थर ब्राइट और उनकी विधवा मां के साथ रहने 82, ड्रेटन गार्डन्स चली गईं। बॉण्ड स्ट्रीट में थियोसोफी के मुख्यालय में 8 मई को एक बैठक हुई जिसमें श्रीमती बेसेंट ने ऑर्डर ऑव द स्टार इन द ईस्ट के गठन की घोषणा की और कहा जो इसके सदस्य बनने के इच्छुक हों वे अपना नाम जॉर्ज अरुंडेल के पास दर्ज करा दें। लेडी एमिली ऐसा करने वालों में पहली थीं और इसके कुछ ही समय बाद श्रीमती बेसेंट ने उनसे इंग्लैंड में ऑर्डर की राष्ट्रीय प्रतिनिधि बन जाने का आग्रह किया। लेडी एमिली द्वारा थियोसोफी में लायी गयी दो महिलाएं और थीं जिन्होंने नामांकन भरा : मिस मेरी डॉज और देलावार की काउंटेस म्यूरेल। म्यूरेल लेडी एमिली की दोस्त थीं और उन्हीं के साथ सेंट जेम्स के एक भव्य घर 'वारविक हाउस' में रहती थीं। मिस डॉज एक अमेरिकन थीं और इंग्लैंड में बीस साल से रह रही थीं, गठिया के रोग ने उन्हें अब व्हील चेयर पकड़ने के लिए मजबूर कर दिया था। अपने दादा विलियम अर्ल डॉज से उनके कॉपर, रियल एस्टेट और रेलमार्ग के कारोबार से जुटायी धन-संपदा उन्हें उत्तराधिकार के रूप में मिली थी। इंग्लैंड में श्रीमती बेसेंट के लिए उन्होंने एक कार का प्रबंध कर दिया था। लंदन के सभी दर्शनीय स्थलों पर लड़कों को ले जाया गया, किंतु जो चीज़ उन्हें सबसे अधिक भायी वह था थिएटर। यूरोपियन जूते उनके लिए एक यंत्रणा थे इसलिए पैदल चलने से उन्हें नफरत होती। इंग्लैंड और स्कॉटलैंड में होने वाली थियोसोफी की बैठकों में श्रीमती बेसेंट उन्हें साथ ले जातीं। लेडी एमिली को मई का वह दिन नहीं भूलता जब वे उनके साथ ऑक्सफर्ड गई थीं और एक गार्डन पार्टी में दो छोटे हिंदुस्तानी लड़कों को कड़कड़ाती सर्दी में कांपते हुए इतना असहाय देख कर उनकी उत्कट इच्छा हो रही थी कि वे उन्हें अपनी बांहों में समेट उन पर मातृस्नेह की सारी ऊष्मा उड़ेल दें। वे उन दोनों को, अपने पांच में से दो सबसे बड़े बच्चों के साथ, 22 जून को जार्ज पंचम की ताजपोशी का जुलूस दिखाने ले गईं।

बाद में श्रीमती बेसेंट ने लंदन के क्वींस हॉल में 'विश्व शिक्षक का आगमन' विषय पर तीन व्याख्यान दिए। लोगों की दिलचस्पी का अंदाज़ इसी से लगाया जा सकता था कि हॉल के खचाखच भर जाने के कारण सैकड़ों लोगों को वापस लौट जाना पड़ा। लाक्षणिक शैली का प्रयोग करते हुए भी वह एक शानदार वक्ता थीं। 1912 में इसी हॉल में, इसी विषय पर बोलते हुए देखने के बाद लेखिका एनिड बैगनोल्ड ने अपनी आत्मकथा में श्रीमती बेसेंट को याद करते हुए लिखा : "जब वह मंच पर आयीं तो वह जैसे सुलग रही थीं। उनका रुतबा हर कोने में जगमगारहा था।"

अगस्त में श्रीमती बेसेंट और लड़के ब्राइट बंधुओं के साथ सरी में इशर नाम की जगह पर ठहरे। यहां उनकी एक कॉटेज थी। लेडी एमिली अक्सर यहां उनसे मिलने के लिए आतीं। उन्हें याद है जब कृष्णा को भयानक बदहज़मी का शिकार होना पड़ा था जिसका कारण था कि लेडबीटर ने उसके लिए एक बँधी खुराक निर्धारित कर रखी थी, ज़ाहिरा तौर पर मास्टर कुथुमी के आदेशानुसार : "दिन भर में दूध के अनगिनत गिलास निगलने हैं तथा नाश्ते में दलिया और अंडे। मैं देख रही हूँ, कष्ट में बीती निद्राविहीन रात के बाद

अब कृष्णा श्रीमती बेसेंट की सख्त निगरानी में अपना निर्धारित नाश्ता निगलने के लिए संघर्ष कर रहा है। मैं कितना चाह रही थी कि उसके हाथों से प्लेट छीन लूं, आंतों को थोड़ा सुस्ता लेने दूं। लगभग 1916 तक तीखे दर्द के साथ पाचन की गड़बड़ी उसके साथ रही।"[11] कृष्णा की अपेक्षा कम संकोची नित्या ने मिस ब्राइट से खाने में मसाला न होने की शिकायत की।

लेडबीटर के मुताबिक मास्टर चाहते थे कि लड़कों की शिक्षा इंग्लैंड में हो और दोनों ऑक्सफर्ड जाएं; इसलिए अगस्त में उनके नाम न्यू कॉलेज के लिए लिखवा दिये गये। कृष्णा को वहां रहने के लिए अक्टूबर, 1914 में जाना था।

जैसा कि कहा जाता है भारत वापस लौटने पर, जहां लेडबीटर भी आ गए थे, बनारस में 28 दिसम्बर को थियोसोफिकल कन्वेंशन में पहली बार कृष्णा के भीतर मैत्रेय का प्रकटीकरण हुआ। इस घटना का वर्णन लेडबीटर ने रुसपोली को अड्यार भेजे एक पत्र में किया। आर्डर ऑव द स्टार इन द ईस्ट के नये सदस्यों को कृष्णा खड़े होकर प्रमाणपत्र बांट रहे थे तभी एकाएक लेडबीटर को 'कृष्णा के भीतर से एक प्रचंड शक्ति प्रवहमान होती' दिखी और जो आने वाले सदस्य सामने से होकर गुज़र रहे थे, कृष्णा के पैरों में गिर पड़े, उनमें से कुछ के आंसू बहने लगे। अगले दिन एसोटेरिक सेक्शन की बैठक में पहली बार श्रीमती बेसेंट ने सार्वजनिक तौर पर कहा, "उन लोगों ने जो देखा और महसूस किया, इसके बाद इस तथ्य को छिपा सकने की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती कि कृष्णा के शरीर को बोधिसत्त्व (मैत्रेय) द्वारा चुना गया था और उसको अब भी उसी के साथ समंजित किया जा रहा है।"

1912 की जनवरी में श्रीमती बेसेंट को नारायणय्या का एक पत्र मिला, इस चेतावनी के साथ कि वह अपने पुत्रों के संरक्षण के दायित्व को वापस लेने के लिए उनके ख़िलाफ अदालत में जाएंगे। नारायणय्या को लेडबीटर से सख्त नफरत थी और वह नहीं चाहते थे कि लड़कों से उनका कोई संबंध रहे और श्रीमती बेसेंट से इस बात का वचन लेने के बाद ही वह लड़कों की पढ़ाई इंग्लैंड में किये जाने के लिए राज़ी थे। नारायणय्या के अनुसार श्रीमती बेसेंट ने ऐसा वचन दे भी दिया। किंतु उधर लेडबीटर अब एक ऐसी एकांत जगह की तलाश में लगे थे जहां वह कृष्णा को द्वितीय दीक्षा के लिए तैयार कर सकें। लेडबीटर ने नीलगिरी हिल जाने का इरादा भी कर लिया था, लेकिन नारायणय्या के साफ इनकार के बाद वह भारत से चुपचाप अनुकूल जगह की तलाश में यूरोप निकल गए। जबकि इधर श्रीमती बेसेंट यह कह कर कि वे 10 फरवरी को बम्बई से रवाना होंगी, वास्तव में 3 को ही रवाना हो गयीं। नारायणय्या को तुरंत अड्यार छोड़ देने के लिए भी उन्होंने लिख दिया।

इस बार डिक क्लार्क और सी. जिनराजदास (राजा) भी उनके साथ गये। जिनराजदास थियोसोफिकल सोसाइटी के एक प्रमुख नेता थे जो कृष्णा को 'खोज लिए जाने' के समय व्याख्यान यात्रा पर विदेश गए हुए थे। 25 मार्च को लड़के सिर्फ क्लार्क और राजा के साथ टाओर्मिना, सिसली के लिए निकल पड़े, जहां लेडबीटर होटल

नौमेकिया के एक पूरे तल पर पहले से जमे हुए थे; अरुंडेल भी वहां पहुंच गए। वे लोग करीब चार माह तक वहां रहे। श्रीमती बेसेंट मई से जुलाई तक उनके साथ रहीं। इस दौरान, लेडबीटर के मुताबिक, कृष्णा और राजा ने द्वितीय दीक्षा प्राप्त की, और नित्या तथा अरुंडेल ने अपनी पहली दीक्षा।

अरुंडेल जुलाई में भारत वापस हो लिए, जबकि श्रीमती बेसेंट राजा और लड़कों को लेकर इंग्लैंड लौट गयीं और लेडबीटर थोड़े समय के लिए जैनीवा चले गए। इसके बाद लेडबीटर का इंग्लैंड जाना कभी नहीं हुआ। इधर श्रीमती बेसेंट को नारायणय्या का ख़त मिला कि वह अगस्त के अंत तक लड़कों को वापस सौंप दें। पत्र चेन्नई के अखबार द हिंदू में प्रकाशित हुआ था, जिसने श्रीमती बेसेंट, लेडबीटर और थियोसोफिकल सोसाइटी के खिलाफ एक मुहिम छेड़ दी थी। संपादक व्यक्तिगत तौर पर श्रीमती बेसेंट के खिलाफ था और श्रीमती बेसेंट और लेडबीटर दोनों को ही ऐसा विश्वास था कि उसी ने ही नारायणय्या को अपनी पकड़ में लेकर उकसाया था और वही मुकदमे का खर्चा भी उठाने जा रहा था। अब श्रीमती बेसेंट को भय था कि कहीं संपादक लड़कों के अपहरण का प्रयास न करे, इसलिए उन्होंने भारत लौटने से पूर्व लड़कों को इंग्लैंड में महफ़ूज़ जगह रखने का पक्का इंतज़ाम कर दिया। इसके लिए लेडी दे ला वार ने 'एशडाउन फॉरेस्ट' के 'ओल्ड लॉज' वाले घर को इस्तेमाल के लिए उपलब्ध करा दिया। लड़के वहां छह महीने तक रहे—साथ में राजा और डिक क्लार्क उनके निजी शिक्षकों के रूप में, और लेडबीटर के दो भूतपूर्व शिष्य अंगरक्षक के रूप में रहे। घर-गृहस्थी की ज़िम्मेदारी मिसेज़ ब्राइट और मिस ब्राइट पर थी। लेडी एमिली इनसे मिलने के लिए आती रहीं। कृष्णा और उनके बीच का अनुराग गहराता जा रहा था।

श्रीमती बेसेंट के ख़िलाफ चेन्नई हाईकोर्ट में जो मुकदमा दायर हुआ उसमें नारायणय्या का संक्षेप में दावा यह था कि श्रीमती बेसेंट को ऐसा कोई अधिकार नहीं है कि वे लड़कों के संरक्षण का दायित्व, जिसे नारायणय्या ने उन्हें प्रदान किया है, एक ऐसे व्यक्ति को सौंप दें जिससे वह सख्त घृणा करते हैं। नारायणय्या का यह भी आरोप था कि बड़े लड़के के साथ लेडबीटर का 'अप्राकृतिक साहचर्य' रहा है। अपने बचाव में पैरवी करते हुए श्रीमती बेसेंट मुकदमा हार गयीं हालांकि जो सबसे नुकसान पहुंचाने वाला, अप्रतिष्ठाजनक आरोप था, कृष्णा के साथ लेडबीटर के अप्राकृतिक साहचर्य का, उसे ख़ारिज कर दिया गया। लड़कों को उनके पिता को सौंप देने का आदेश हो गया। श्रीमती बेसेंट ने तुरंत अपील की जो नामंज़ूर हो गई। तब उन्होंने इंग्लैंड की प्रिवी-काउंसिल में अपील की और वहां मय-मुआवज़ा फैसला उनके हक में हुआ। अपील मंज़ूरी का आधार यह था कि न तो लड़कों से उनकी इच्छाओं के बारे में राय ली गयी थी और न ही उन्हें अदालत में पेश किया गया था। चूंकि लड़कों की इच्छा भारत वापस लौटने की नहीं थी, इसलिए मद्रास हाइकोर्ट के आदेश का पालन बिना उनकी सहमति के नहीं किया जा सकता था। 1914 की 25 मई तक कृष्णा अठारह वर्ष का हो चुका था, जिसका मतलब था कि भारतीय कानून के अनुसार वह वयस्क हो गया था और तब तक अदालत अपना

फैसला नहीं सुना पायी थी।[12]

इस निर्णय को सुनने के बाद कृष्णा ने श्रीमती बेसेंट को भारत पत्र लिखा। चेन्नई में पहली बार मिलने से लेकर अब तक जो उन्होंने स्नेहिल संरक्षण दिया था, उस सबके प्रति आभार प्रकट करते हुए उसमें लिखा था : “मैं जानता हूँ आप सिर्फ यही चाहती हैं कि जिस तरह आपने मेरी मदद की, वैसे ही मैं औरों की करूं, और मैं यह सदा याद रखूंगा कि अब मैं वयस्क हो चुका हूँ और अभिभावक की आपकी भूमिका के बिना अपना निर्णय खुद लेने के लिए स्वतंत्र हूँ।” कृष्णा श्रीमती बेसेंट को प्यार भरे पत्र लिखने से कभी नहीं चूकता था, पर उनसे कृष्णा के मन की वास्तविक दशा का शायद ही कुछ आभास मिल पाता था।

3

उन्होंने मुझे क्यों चुना?

अदालत की सुनवाइयां चल रही थीं, इधर दोनों लड़कों को एक जगह से दूसरी जगह ले जाया जाता रहा। 1913 की गर्मियों में वे नार्मंडी के तट के किनारे वरौंझविल में थे जहां पर एम. मैलेट[*] से उन्हें एक घर किराए पर मिल गया था। अरुंडेल ने सेंट्रल हिंदू कॉलेज से इस्तीफा देकर लड़कों के शिक्षण की ज़िम्मेदारी संभाल ली थी। लेडबीटर के माध्यम से मास्टर का ऐसा निर्देश आया था कि कृष्णा को बिना दो दीक्षा-प्राप्त शिष्यों के संग-साथ के बाहर बिलकुल नहीं निकलने दिया जाए, जिसका अर्थ था कि बिना अरुंडेल और राजा के वह बाहर नहीं जा सकता था। अरुंडेल की तुलना में राजा बहुत अधिक अनुशासनप्रिय था, इसलिए लड़के उससे अप्रसन्न रहते थे।

उसी समय लेडी एमिली भी वरौंझविल में थीं—अपने पांचों बच्चों के साथ एक अलग घर में। दोपहर में टेनिस और राउंडर खेला जाता था। लेकिन बातचीत का मुख्य मुद्दा होता था इंग्लैंड से लेडी एमिली के संपादन में हर महीने हेरल्ड ऑव द स्टार का एक नया परिवर्धित संस्करण निकालने की कार्य योजना। इस समय तक लेडी एमिली का 'संपूर्ण जीवन' कृष्णा में सिमट आया था; उनके 'पति, बच्चे और घर-बार, सब पृष्ठभूमि में चले गये थे'। कृष्णा को वह अपने 'बेटे और शिक्षक' दोनों के रूप में देखने लगी थीं,[13] और वह भी अगले कुछ सालों तक उनके प्रति लगभग समान भाव से समर्पित रहा।

इसी साल के अक्टूबर महीने में मिस डॉज ने क्रमशः 500 और 300 पाउंड सालाना कृष्णा और नित्या के नाम जीवन भर के लिए बांध दिए। लगता है इसी आय ने कृष्णा को यह साहस दिया कि वह पहली मर्तबा लेडबीटर को अपनी स्वाधीनता की बात दृढ़तापूर्वक लिख पाया। राजा के बारे में उसने लिखा कि उसे 'कार्यमुक्त' कर दिया जाए, क्योंकि उसे मालूम है कि राजा के बिना वह जॉर्ज अरुंडेल को और बेहतर ढंग से संभाल सकता है और उसका मार्गदर्शन कर सकता है। “मैं समझता हूँ यही वह समय है कि मैं अपने मामलात अपने हाथों में ले लूं...मुझे अपनी ज़िम्मेदारियों को महसूस करने का कभी कोई मौका नहीं दिया गया है और मेरे साथ एक दुधमुँहे बच्चे-सा बर्ताव किया गया है।” राजा को वापस तो बुला लिया गया, लेकिन इस सारे प्रकरण को अच्छा नहीं माना

गया। इससे पहले तक लेडबीटर ने कृष्णा में किसी भी तरह का प्रतिरोध नहीं देखा था।

अपहरण की आशंकाएं फिर से उठने लगी थीं—अरुंडेल को जनवरी 1914 में कहा गया कि लड़कों को लेकर वह दोबारा टाओर्मिना चले जाएं। इस बार लेडी एमिली भी साथ गयीं और उन्हें श्रीमती बेसेंट का सख्त नाराज़गी से भरा पत्र मिला कि वह अपने बच्चों की ज़िम्मेदारियों से मुंह मोड़कर कृष्णा के पीछे जा रही हैं (जो कि उनकी ज़िम्मेदारी नहीं है)। लड़कों का अगला पड़ाव था वाइट द्वीप में शैंकलीन नाम की जगह जहां कृष्णा ने गोल्फ खेलना सीखा। शिक्षक के कार्य हेतु राजा की जगह, ई. ए. वुडहाउस को बनारस से भेजा गया। घर संभालने की ज़िम्मेदारी अरुंडेल की चाची मिस फ्रांसेस्का अरुंडेल को सौंपी गई (श्रीमती बेसेंट से कृष्णा को 125 पाउंड माहवार खर्चे के लिए मिल रहे थे)। मैडम ब्लावत्स्की की शिष्या रह चुकीं मिस अरुंडेल कड़े स्वभाव की महिला थीं। लेडी एमिली अक्सर मिलने के लिए आतीं। उनके साथ जंगल में टहलते हुए कृष्णा को छोटे-छोटे अलौकिक प्राणी दिखाई पड़ते और कृष्णा को हैरानी होती कि लेडी एमिली उन्हें क्यों नहीं देख पा रही हैं। उन्हें याद है कि उन दिनों कृष्णा सिर्फ कविताओं में रमा हुआ था, ख़ासकर शैली और कीट्स की। 'ओल्ड टेस्टामेंट' में भी उसकी बड़ी रुचि थी, जिसे लेडी एमिली ऊंचे स्वर में पढ़ कर सुनाती थीं। सौंग ऑव सॉलोमन उसे लगभग ज़बानी याद हो गया था।

अब तक जॉर्ज अरुंडेल लेडी एमिली के प्रति काफी ईर्ष्या महसूस करने लगे थे और श्रीमती बेसेंट को लेडी एमिली के कारण कृष्णा को पहुंच रही बाधाओं की ख़बरें भेज रहे थे। मई में प्रिवी काउंसिल का केस जीतने के बाद लड़के अपने निजी शिक्षकों सहित कॉर्नवॉल के एक तटीय कस्बे ब्यूड में चले गये। लेडी एमिली का यहां आना अरुंडेल ने यह कहकर प्रतिबंधित कर दिया कि वह कृष्णा की उच्च प्रवृत्तियों की जगह निम्न प्रवृत्तियों को बढ़ावा देकर मास्टर के कार्य में बाधक बन रही हैं, तथा कृष्णा की वास्तविक अवस्था के बारे में उन्हें बहुत कम ज्ञान है। कृष्णा से अरुंडेल बार-बार आग्रह करते कि सूक्ष्म-तल के घटनाक्रमों का ब्यौरा वह याद करके लिखे, लेकिन कृष्णा ऐसा कोई ब्यौरा देने को तैयार नहीं था जिसके बारे में वह आश्वस्त न हो कि वैसा सचमुच घटित हो रहा है।

लेडी एमिली से मिलने न देने के एवज़ में कृष्णा को ब्यूड में एक मोटर साइकिल उपलब्ध कराई गई। खूब जमकर पॉलिश करने और इंजिन के साथ खेलने में कृष्णा को मज़ा आता। डिक क्लार्क के अनुसार वह एक पैदायशी मेकैनिक था। एक मंजे हुए पेशेवर खिलाड़ी के साथ अभ्यास करते-करते वह एक बहुत बढ़िया गोल्फ का खिलाड़ी भी बन गया। (पांच साल बाद उसने म्युअरफील्ड की चैम्पियनशिप भी जीती, जिसे बाद में चलकर उसने अपने जीवन का सर्वाधिक गौरवशाली क्षण कहा।)

ब्यूड में कृष्णा को संस्कृत पढ़ाने के लिए श्रीमती बेसेंट ने जुलाई में भारत से बी. शिवा राव को भेजा। शिवा राव लड़कों को अड्यार से ही जानता था; द लाइव्ज़ ऑफ अल्क्योनी के संकलन में उसने लेडबीटर की मदद भी की थी। उत्साह से भरे इस युवक को जल्द ही वापस बुला लिया गया, क्योंकि 4 अगस्त 1914 को महायुद्ध शुरू हो गया

था। ब्यूड की उबाऊ और नीरस ज़िन्दगी में युद्ध से भी कोई फर्क नहीं पड़ा। कृष्णा और अकेला पड़ गया जब नित्या एक ट्यूटर के साथ पढ़ाई के लिए ऑक्सफर्ड चला गया। एक सामान्य ज़िन्दगी के लिए कृष्णा तड़प रहा था, उसने लेडी एमिली को लिखा : 'उन्होंने मुझे क्यों चुना?' कोई हमउम्र नहीं था, जिसके साथ वह हँस-बोल सके—लेडी एमिली से मिलने पर पाबंदी के बाद अब केवल शुष्क स्वभाव की मिस अरुंडेल ही बची थी।

कृष्णा की उदासी और अकेलेपन का कुछ पता श्रीमती बेसेंट को था कि नहीं, यह पूरे विश्वास के साथ नहीं कहा जा सकता। अब तक वह पूरी तरह भारतीय होमरूल आंदोलन में डूब चुकी थीं, यहां तक कि 1917 में उन्हें ऊटकमंड में तीन महीने के लिए नज़रबंद कर दिया गया। उधर लेडबीटर एक लंबे व्याख्यान दौरे पर रहे, जब तक कि 1915 में आस्ट्रेलिया में वह जम नहीं गए; वहां उन्होंने एक कम्यूनिटी भी स्थापित कर ली। ऐसा लगता है कृष्णा को उन्होंने विस्मृत कर दिया था। हालांकि थियोसोफी की पत्रिकाओं में विश्व शिक्षक के आगमन के बारे में वे अलंकृत शैली में लेख अब भी लिख रहे थे।

उधर ऑक्सफर्ड में नित्या भी उदासी और अकेलेपन से घिरा हुआ था; अपने ट्यूटर के साथ अत्यधिक श्रम के कारण उसने अपनी आंखों को काफी नुकसान पहुंचा लिया था—मार्च 1915 के आखिर में वह फ्रेंच रेड क्रॉस का डिसपैच राइडर बनकर फ्रांस निकल गया। नित्या के साथ निकलने की कृष्णा की भी बड़ी इच्छा थी और श्रीमती बेसेंट की स्वीकृति का तार पाकर वह बेहद रोमांचित हो उठा। लंदन भागकर उसने जल्दी से एक वरदी का आर्डर दिया, लेकिन आखिरकार घोर निराशा ही उसके हाथ लगी—अकस्मात ही स्वीकृति को वापस ले लिया गया, और कृष्णा को ब्यूड वापस लौटना पड़ा। साथ के नाम पर अब सिर्फ वुडहाउस ही रह गए थे, और अब तो रहना-खाना और भी नीरस हो गया था—युद्ध के चलते श्रीमती बेसेंट नियमित पैसे भेजने में असमर्थता महसूस कर रही थीं। बहरहाल एक चमचमाती वर्दी में अरुंडेल महोदय ज़रूर एंग्लो-फ्रेंच रेड क्रॉस के वास्ते काम करने लंदन के एक अस्पताल में जा पहुंचे। इसके बाद वह और कृष्णा कभी घनिष्ठ रूप से साथ नहीं हुए। नित्या को फ्रांस से वापस ब्यूड बुला लिया गया।

अब दोनों ही भाई एक-दूसरे के ज़्यादा करीब आ गए और वे एक साथ बड़े खुश भी थे—अरुंडेल के चले जाने से कृष्णा फिर से लेडी एमिली से मिल सकता था, बिना किसी रुकावट के, और उधर नित्या रेड क्रॉस से दो स्वर्ण पदक जीत लाया था। कृष्णा को उम्मीद थी कि खूब मेहनत करके अक्टूबर 1916 तक वह आक्सफर्ड की परीक्षा पास कर लेगा—यानी पहले जो सोचा था उसके दो साल बाद। इसका मतलब था कि ऑक्सफर्ड में नित्या पहले पहुंच जायेगा।

वुडहाउस के भी स्कॉट्स गार्ड्स में भर्ती हो जाने के बाद अप्रैल 1916 के ख़त्म होते-होते लड़कों ने ब्यूड से सदा के लिए अलविदा कह दिया। दो महीने उन्होंने लंदन में बिताए, मिस डॉज और लेडी दे ला वार के साझा बड़े-से बंगले 'वेस्ट साइड हाउस' में; एक खूबसूरत बगीचे वाला यह घर विंबलडन कॉमन में स्थित था। विलासिता के जीवन

का पहला अनुभव उन्हें इस अतिकुलीन, वैभवसंपन्न घर में हुआ। एक रिटायर्ड बैरिस्टर हेरौल्ड बेली-वीवर का प्रभाव भी उन लड़कों पर पड़ा। विवाह से और थियोसोफी में आने से पूर्व बैरिस्टर महोदय एक ठाठदार ज़िंदगी बिता चुके थे; और अब भी वह जीवन के आनंद से भरपूर और सजे-धजे रहते थे। लड़कों के संपर्क में आने वाले वह पहले 'दुनियावी आदमी' थे। उन्हें वह अपने दर्जी के पास ले गए, अच्छे-बढ़िया कपड़ों की पहचान करना और जूतों पर पॉलिश करना तक उन्हें सिखाया। अब तो वे नाप देकर सिले गए सूट, कमीज़ें, और सिलेटी रंग की स्पैट्स के साथ जूते पहनने लगे, साथ में सिर पर सिलेटी रंग के होमबर्ग हैट और हाथों में सुनहरी मूंठ की छड़ियां (यह सब कुछ मिस डॉज से मिलने वाली सालाना आय से संभव हो पाया था)। इसके बाद तो कृष्णा ने अच्छे कपड़ों में अपनी दिलचस्पी को कभी नहीं छोड़ा।

वेस्ट साइड हाउस का प्रवास-काल लड़कों के लिए सुखद ही रहा। टेनिस खेलने के लिए दो कोर्ट थे। सुबह-सुबह ड्रेसिंग गाउन पहने यूं ही घूमना, जब इच्छा हो सिनेमा जाना, और लेडी एमिली के यहां होकर आना। लेडी एमिली का घर उन्हें अपने घर जैसा लगता, छोटे बच्चे उन्हें घरेलू सदस्य की तरह मानते। वेस्ट साइड हाउस के साथ बस एक ही दिक्कत थी कि लड़कों को एकदम सलीके से रहना पड़ता था, ज़रा भी कोई चूक हुई नहीं कि लेडी दे ला वार उसकी खबर श्रीमती बेसेंट तक फौरन पहुंचा देतीं। मिस डॉज की साधु प्रकृति के विपरीत वह एक छोटे कद की चिड़चिड़े स्वभाव वाली महिला थी।

लेकिन इनकी पढ़ाई जल्दी फिर से शुरू होने वाली थी। बेली-वीवर ने कोच के तौर पर रेवरंड जॉन संगर का पता लगाया, जो कि रोचेस्टर के पास केंट में अपनी पत्नी के साथ रहते थे। उनके पास तीन विद्यार्थी और थे। रेवरंड संगर कृष्णा को बहुत-ही बढ़िया शिक्षक लगे, लेकिन कृष्णा को तब बहुत निराशा हुई जब उन्होंने उसे बताया कि मार्च 1917 से पहले उसके ऑक्सफर्ड की प्रवेश-परीक्षाओं को पास कर सकने की कोई उम्मीद नहीं है। दरअसल परीक्षा ही एकमात्र समस्या नहीं थी। मुकदमे के दौरान न्यू कॉलेज ने लड़कों के नाम काट दिए थे। बेली-वीवर अब क्राइस्ट चर्च या बेलिऑल कॉलेज में नाम लिखाने की कोशिश कर रहे थे।

एक बार लंदन से होकर संगर के यहां लौटने के बाद कृष्णा ने लेडी एमिली को एक पत्र लिखा; कृष्णा का उनके प्रति प्रेम कैसा था, इस बात की झलक इस पत्र में मिलती है (अरुंडेल ने बिलावजह ही झंझट खड़ी की थी) :

> प्यारी मम्मी, इस जीवन में जाने कितने बिछोहों का सामना करना पड़ेगा और यदि प्रसन्न रहना है तो इन्हें चुपचाप स्वीकार करते जाना होगा। सच में उसके लिए तो जीवन एक अंतहीन विरह ही है जो किसी से अत्यधिक और विशुद्ध प्रेम करता हो। हमें यह जो जीवन मिला है वह औरों के लिए है, अपने लिए नहीं है—हमें स्वार्थी नहीं होना है। मां, तुम नहीं जानतीं तुमने मेरी कितनी मदद की है; तुम्हीं हो जिसने मेरे अंदर कुछ करने की, 'मास्टर' के कार्यों को पूरा करने की चाहत भरी है। तुम्हीं हो जिसने मुझे निष्कलुष जीवन जीने की और साफ-सुथरी बातों को

> सोचने की प्रेरणा दी है, और मुझे उन विचारों से दूर रहना सिखाया है जो कितनों को परेशान कर डालते हैं। मेरी पावन मां, तुमने मेरी मदद की है, भले ही तुम यह अक्सर सोच बैठती हो कि तुम मेरे लिए एक बाधा रही हो।

कृष्णा का विकास हालांकि देरी से हुआ था, फिर भी वह एक पूर्णतया सामान्य नवयुवक था; लेकिन यह बात उसके भीतर बैठा दी गई थी कि एक दीक्षाप्राप्त व्यक्ति के लिए पूर्ण शुद्धता परम आवश्यक है, इसलिए अक्सर वह अपने 'बुरे स्वप्नों' से, जो उसे 'पाशविक' लगते थे, आतंकित रहता था। वह इन्हें समझ नहीं पा रहा था क्योंकि उसे मालूम था कि जागते समय तो उसके विचार एकदम दोषरहित रहते थे। लेडी एमिली उसे विश्वास दिलातीं कि यह और कुछ नहीं, बस एक प्राकृतिक सेफ्टीवाल्व है।

1917 की शुरुआत में ही लड़कों को ऑक्सफर्ड में भर्ती करवा पाने की सारी आशाएं छोड़ दी गयीं। कोई भी कॉलेज उन्हें लेने को तैयार नहीं था—कारण, एक तो मुकदमा और दूसरे कृष्णा की 'मसीहा' के रूप में ख्याति। तब संगर साहब ने उन्हें केम्ब्रिज के अपने पुराने कॉलेज में भर्ती करवाने का एक असफल प्रयास किया। जून तक यह पक्का हो गया कि अब कोई चारा नहीं है सिवाय लंदन यूनिवर्सिटी में एक बार प्रयास करने के, जिसका अर्थ था केम्ब्रिज से भी अधिक कड़ी परीक्षा।

कृष्णा कितना आजिज़ आ गया होगा उन विषयों को दुहराते-दुहराते जिनमें उसकी कोई दिलचस्पी नहीं थी। कभी-कभी लगता है यह सब उसने अपने लिए उतना नहीं जितना कि श्रीमती बेसेंट की खुशी के लिए करना स्वीकार किया। इस बीच उसकी कुछ अपनी अंतर्निहित शक्तियां भी विकसित होने लगी थीं। 11 नवंबर को उसने राजा को लिखा : 'तुम्हें यह जानकर खुशी होगी कि मैं नित्या की आंखों पर प्रयोग कर रहा हूँ। उनमें बहुत अधिक सुधार आ गया है और वह अपनी बायीं आंख से देखने लगा है (अब तक उस आंख की ज्योति वह लगभग खो चुका था)...यहां (संगर साहब के घर पर) जिस किसी को सिर में या दांत में दर्द होता है वह सीधे मेरे पास आता है, तो तुम समझ सकते हो मैं यहां कितना लोकप्रिय हो गया हूँ।' और कुछ हफ्तों बाद उसने श्रीमती बेसेंट को लिखा :

> आपके बारे में मैं कितना सोचता रहा हूँ, आपका स्नेहिल चेहरा देखने के लिए मैं तरस रहा हूँ। कितनी अजीब दुनिया है यह! मुझे कितनी पीड़ा हो रही है यह जानकर कि आप कमज़ोरी महसूस कर रही हैं, और मुझे पता है आप पहले ही की तरह अत्यधिक काम कर रही होंगी। मैं कितना चाह रहा हूँ कि काश आपकी देखभाल के लिए मैं वहां होता और मुझे विश्वास है कि मैं आपको ठीक कर देता। लोगों के इलाज की शक्ति मुझमें विकसित हो रही है; नित्या की आंखों पर मैं रोज़ प्रयोग कर रहा हूँ और वे अब पहले से बहुत बेहतर हैं।

जनवरी 1918 में 'वे लड़के' (जैसा कि हम अब भी उन्हें बुलाते थे, जबकि कृष्णा तेईस साल का और नित्या बीस साल का हो चुका था) लंदन पहुंचे, चार दिवसीय मैट्रिक की परीक्षा में बैठने के लिए। कृष्णा को लगा उसने अच्छा किया है, अपने सबसे कमज़ोर

विषयों यानी गणित और लेटिन में भी। पर मार्च में उन्हें पता चला कि नित्या तो ऑनर्स के साथ पास हुआ और कृष्णा फेल हो गया। नित्या लंदन में ही कानून की पढ़ाई के लिए रुक गया, जबकि कृष्णा को वापस संगर साहब के पास जाना पड़ा। संगर साहब को कृष्णा के लिए बड़ी निराशा झेलनी पड़ी। उन्होंने एक रोचक अभिमत प्रकट किया कि नित्या की बुद्धि तो कुशाग्र है पर कृष्णा की बुद्धि अधिक व्यापक है; किसी विषय की उसके विस्तार में ग्रहणशीलता तो कृष्णा में है लेकिन विचारों को तत्परता से अभिव्यक्त न कर पाने के कारण वह असहाय है।[14]

मई में कृष्णा ने संगर साहब को अलविदा कह दिया और अपनी अधिकतर गर्मियां वेस्ट साइड हाउस में बिताईं। सितंबर में वह फिर बड़ी उम्मीद के साथ मैट्रिक के लिए बैठा लेकिन इस बार वह केवल गणित और लेटिन में फेल हुआ। उस सर्दी में उसे रोज़ बस में विंबलडन से लंदन यूनिवर्सिटी जाना पड़ता, उन लेक्चरों को सुनने के लिए जिनमें उसकी कोई रुचि नहीं थी। 1919 के आरंभ में वह नित्या के साथ लंदन में ही रहने आ गया। उन्हें रॉबर्ट स्ट्रीट, एडेल्फ़ी में एक फ्लैट मिल गया था। हर रोज़ लंदन यूनीवर्सिटी जाना उसका जारी रहा, जबकि नित्या कानून की पढ़ाई करता रहा। उनका बहुत सारा समय हमारे घर में ही बीता। हमारा स्कूल से वापस आना और मेज़ पर उनके सिलेटी रंग के हैट और सुनहरी मूठ की छड़ियों को पड़ा देखना एक रोमांच से कम नहीं होता था। पी.जी. वुडहाउस और स्टीफन लीकॉक कृष्णा के हाथ लग गए थे, और ड्रॉइंग रूम के बुक केस के सहारे खड़े होकर (खाने के अलावा वह शायद ही कभी बैठता था) वह हमें 'पिकेडिली जिम' और 'नॉन्सेन्स नॉवेल्स' पढ़कर सुनाता, इतना अधिक हँसते हुए कि शब्द बमुश्किल मुंह से निकल पाते। उसकी वह ज़बरदस्त संक्रामक हँसी हमेशा उसके साथ रही। पूरे घर में हम लोग लुका-छुपी का खेल खेलते; हर हफ्ते सिनेमा देखने जाते। मैं उनमें एक अनूठा लुभावनापन महसूस करती; वे लोग जहां भी जाते अपने चारों ओर एक आभा बिखेर देते। अंग्रेज़ों की तुलना में वे बिल्कुल अलग दिखाई देते थे; उनका अंग्रेज़ी बोलने का लहज़ा, उनकी हँसी भी अलग थी, उनके पैर भी उसी तरह पतले-पतले थे, जिनमें रेडीमेड जूता कोई आता ही नहीं था; अपनी उंगलियों के पहले जोड़ों को बिना दूसरे जोड़ों को झुकाए मोड़ देने की उनमें अजीब दक्षता थी; उनके चमकदार काले बालों में से बढ़िया खुशबू आती। इसके अलावा वे इतने साफ-सुथरे रहते और इतने बढ़िया कपड़े पहनते, जिसकी कोई मिसाल ही मुझे नहीं मिलती। वे दोनों एक-ही सूट नहीं पहन सकते थे क्योंकि नित्या अपने भाई से कद में छोटा था। पर कमीज़ों, टाइयों, मोज़ों, अन्तःवस्त्रों और रूमालों की अदला-बदली ज़रूर हो जाती थी—उन सभी पर उनके नाम के शुरुआती अक्षर 'जे के एन' लिखे होते थे।

1919 की जून में श्रीमती बेसेंट इंग्लैंड आईं। दोनों भाइयों (जैसा कि उन्हें अब पुकारा जाना चाहिए) को वे अब साढ़े चार साल बाद देख रही थीं। उनकी उपस्थिति में कृष्णा ने 'स्टार' की एक बैठक की अध्यक्षता की, उनकी पिछली यात्रा के बाद यह ऐसा पहला मौका था। थियोसोफी और ऑर्डर ऑव द स्टार में अपनी रुचि खो चुकने के बारे में

कृष्णा ने श्रीमती बेसेंट से कभी बात नहीं की थी। तीसरी बार मैट्रिक में असफल होने की स्थिति में फ्रांस जाकर फ्रांसीसी सीखने की अनुमति श्रीमती बेसेंट से उसने ज़रूर मांगी—उस समय जबकि वह भारत लौटने की तैयारी कर रही थीं। लंदन यूनिवर्सिटी में दाखिले की कोई उम्मीद न देखकर वह उसे फ्रांस भेजने के लिए तैयार हो गईं। जनवरी 1920 में नित्या ने कानून की परीक्षा पास कर ली, जबकि उसी महीने कृष्णा मैट्रिक के लिए तीसरी बार बैठा, लेकिन इस एहसास के चलते कि पास होने की अब भी कोई संभावना नहीं है, उसने पर्चा खाली ही छोड़ दिया। चार दिन बाद वह पेरिस में था।

---

* एडविन लट्यंस द्वारा 'ले कम्यून' के नाम से मैलेट परिवार के लिए बनाया गया यह दूसरा घर था।

4

क्या मेरा सपना कभी पूरा होगा?

पेरिस पहुंचने पर कृष्णा शुरू में मैडम ब्लेच और उनकी बहन के साथ रहा, दोनों ही थियोसोफी और स्टार की सदस्य थीं। अब तक अपनी भूमिका को लेकर उसका मोहभंग चरम उदासी की सीमा तक पहुंच चुका था—लेडी एमिली से मिलने के लिए वह व्याकुल हो उठा। एक फरवरी को उसने लेडी एमिली को पत्र लिखा : 'क्या मेरा सपना कभी पूरा होगा? यह सपना जितना अद्‌भुत है उतना ही अधिक उदासी भरा और अटल है। आपको तो मालूम है मां, मेरा सपना है कभी भी आपसे जुदा न होना। पर मैं प्रकृति की एक विलक्षण कृति हूँ, प्रकृति को तो अपनी हट कर रची गयी कृति में सुख मिलता है, जबकि उस कृति को पीड़ा भुगतनी पड़ती है।' और दस दिन बाद उसने लिखा : 'ओह मां! अभी मेरी उम्र ही क्या है? क्या दुख ही मेरा चिरंतन साथी बना रहेगा और उसी के साथ मुझे बूढ़ा हो जाना पड़ेगा? आपने तो अपने यौवन और अपनी खुशियों को देखा है, जिया है; आपके पास वह चीज़ भी रही है जो मनुष्य और ईश्वर दे सकते हैं : एक घर!'

पहला व्यक्ति जो कृष्णा को पेरिस में मिला वह था फब्रीत्सिओ रुसपोली। युद्ध के छिड़ जाने पर रुसपोली फिर नेवी में आ गया था; पेरिस में वह 'पीस कॉन्फ्रेन्स' की 'इटैलियन नेवल डेलीगेशन' के प्रमुख की हैसियत से था। 11 फरवरी के अपने पत्र में कृष्णा ने लेडी एमिली को बताया :

> एक छोटे-से रेस्टोरेंट में मैंने और रुसपोली ने खाना खाया। हम दोनों देर तक बातें करते रहे। मेरी तरह वह भी बहुत दुखी है। बेचारा बूढ़ा रुसपोली... बयालीस साल की उम्र में वह अपने को बेघरबार महसूस कर रहा है, सी.डब्ल्यू.एल. (लेडबीटर) या श्रीमती बेसेंट की कही किसी भी बात में उसका भरोसा नहीं है। उसे समझ नहीं आ रहा कि वह क्या करे, न ही उसमें कुछ करने की आकांक्षा बची है। वास्तव में हम दोनों एक ही अभागी नैया पर सवार हैं... वह भी वही सोचता है और महसूस करता है जो मैं, लेकिन जैसा कि वह कहता है कि किया ही क्या जा सकता है। हम दोनों ही की हालत बड़ी दयनीय हो गयी है।

किंतु शीघ्र ही कृष्णा एक ऐसे परिवार के संपर्क में आया जिसने उसका जीवन हर्षोल्लास से भर दिया। यह परिवार था डी मेंज़िअर्ली का जो ब्लेच बहनों के निकट ही

रहता था। मैडम डी मेंज़िअर्ली एक छोटी-सी सुंदर और गहन-गंभीर महिला थीं; रूसी थीं लेकिन विवाह एक फ्रांसीसी से किया था—अपनी तीनों बेटियों और एक बेटे को उन्होंने 'स्टार' का सदस्य बनवा दिया था। फिलहाल पेरिस में इनकी दो छोटी लड़कियां ही रह गयी थीं—मार्सेल जो उन्नीस साल की थी और योलांद जो पन्द्रह साल की (घर में बुलाने का नाम मार और यो था)। मार जो कि एक बढ़िया पियानोवादक और संगीतकार थी, कृष्णा की खास दोस्त बन गयी। कृष्णा को मैडम फ्रांसीसी सिखातीं, प्रदर्शनियों में, फ्रेंच कॉमेडी और रशियन बैले दिखाने ले जातीं, लेकिन कृष्णा पिकनिक पर जाना कहीं ज़्यादा पसंद करता जहां लड़कियां चंचलता और सम्मान की मिलीजुली भावना के साथ उससे व्यवहार करतीं। हालांकि कृष्णा को तब बड़ी उलझन का सामना करना पड़ता जब परिवारजन और उनके मित्रगण उसे 'प्रेरणा का स्रोत' या 'ज्योतिपुंज' जैसा कुछ कहते या मानते। इन लोगों ने मास्टरों को देखने की इच्छा व्यक्त की, जब कि कृष्णा ने लेडी एमिली को बताया, 'आपको तो पता है मुझे इसमें रत्ती-भर भी दिलचस्पी नहीं है।' यह एक अलग बात है कि कृष्णा वास्तव में एक रहस्यात्मक अनुभव से गुज़रा, जिसकी चर्चा उसने लेडी एमिली से की :

> जब वह (मैडम डी मेंज़िअर्ली) बात कर रही थीं एकाएक मेरी आँखों से हर चीज़, कमरा और खुद वह भी ओझल हो गयीं। एक पल के लिए जैसे मुझे मूर्च्छा छा गई, मैं भूल गया कि मैं क्या बात कर रहा था, मैंने उनसे मेरी अपनी ही बात को दुहराने के लिए कहा। मां, मैं इसका बिल्कुल वर्णन नहीं कर सकता। मुझे ऐसा लगा जैसे क्षण भर के लिए मेरी आत्मा और चेतना को मुझसे दूर कर दिया गया हो और सच मानिए, यह बेहद अजीबोगरीब एहसास था। मैडम डी मेंज़िअर्ली लगातार मुझपर निगाहें जमाए रहीं, मैंने कहा मुझे बहुत अजीब लग रहा है और फिर मैंने संभलकर कहा 'ओह, कमरे में कितनी ज़बरदस्त गर्मी है?' क्योंकि मैं नहीं चाहता था कि वह कुछ ऐसा सोचें कि मैं 'प्रेरित' या ऐसा कुछ महसूस कर रहा हूँ। फिर भी सचाई तो यही है कि मैंने अपने-आप को बहुत ही प्रेरित और अद्‌भुत महसूस किया...मुझे उठ खड़ा होना पड़ा और कुछ देर खड़े रहकर अपने विचारों को समेटना पड़ा। सच में मां, यह अत्यंत अद्‌भुत था, समझ से परे। तुम्हें तो मैं बता ही सकता हूँ, एकदम अनहोनी बात थी। थियोसोफी की भाषा में कहें तो वहां कोई मौजूद था—किंतु इसकी चर्चा मैंने मैडम से नहीं की।

1920 की फरवरी में नित्या कृष्णा से मिलने पेरिस पहुँचा। कुछ ही समय में नित्या और मैडम डी मेंज़िअर्ली एक-दूसरे को बहुत पसंद करने लगे। नित्या यह महसूस किए बिना नहीं रह सका कि कोई तो है जो उसका खयाल सिर्फ कृष्णा का भाई होने की वजह से नहीं बल्कि उसी की वजह से रख रहा है। फरवरी में मैडम डी मेंज़िअर्ली के पति का देहांत हो गया; उसके बाद वह पूरी तरह कृष्णा की देखभाल में रम गयीं, तब कृष्णा एक अटारी में अकेले रह रहा था। जुलाई में मेंज़िअर्ली परिवार के साथ दो महीने के लिए वह ऐंफिऑन, जिनेवा झील पर गया। यहां उन्होंने एक घर ले लिया था। यहां वह लड़कियों

को द बुद्धाज़ वे ऑव वर्च्यू पढ़कर सुनाता; इसने उसमें पुरानी श्रद्धा को फिर से कुछ जाग्रत कर दिया। जिस उद्धरण ने उसे सबसे अधिक प्रभावित किया वह था : 'मैं पूर्णतः अपराजित और सर्वज्ञ हूँ, अनासक्त, निष्कलंक, निर्बंध और तृष्णा का विनाश कर सर्वथा मुक्त। मैं किसे अपना गुरु कहूं? अपना पथ मैंने स्वयं ही खोजा।'

ऐंफिऑन में बिताए फुर्सत के ये क्षण संभवतः कृष्णा के जीवन के सर्वाधिक सुखद क्षण थे। उसे बस इस बात का दुख था कि लेडी एमिली वहां नहीं थीं। "बचपने से भरा हर्षोल्लास का यह परिवेश आपको कितना अच्छा लगता," उसने लिखा। विशेषकर शामोनी की चढ़ाई में उसने उन्हें बहुत याद किया : "वे पर्वत कितने शांत और गरिमामय लग रहे थे... मैंने आपको बेहद याद किया कि काश आप उन्हें देख पातीं जो मुझे साक्षात ईश्वर का रूप दिखाई पड़ रहे थे।" पर्वतों के प्रति उसके अनुराग और सम्मान का यह पहला बोध था, जिसने उसका साथ फिर कभी नहीं छोड़ा।

उन दिनों कृष्णा को मालूम हुआ कि राजा फिर इंग्लैंड में है, और अपने साथ लेडबीटर के एक भूतपूर्व शिष्य राजगोपालाचार्य (राजगोपाल) को केम्ब्रिज में भर्ती कराने के लिए लाया है। ऐसा कहा जाता था कि बीस वर्षीय वह युवक पूर्वजन्म में संत बर्नार्ड था—और अब एक सुनहरा भविष्य उसकी प्रतीक्षा में था। कृष्णा ने सोचा (जैसा कि उसने लेडी एमिली को बताया) कि राजा के आने से फिर उन्हीं गूढ़ व रहस्यमयी बातों का सिलसिला चालू हो जाएगा। उसे किसी ने बताया कि राजा थियोसोफिकल सोसायटी में किसी प्रकार का अनुष्ठान आरम्भ करना चाहता है। कृष्णा ने लेडी एमिली को लिखा : 'मैं राजा को लिखकर यह बताने जा रहा हूँ कि जब तक वह अपने बे-सिरपैर के अनुष्ठानों को 'स्टार' में लागू नहीं करता तब तक मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता...मुझे लगता है कि लेडी दे ला वार हमारे बारे में और हमारे ऋणों के बारे में जो कुछ कहती हैं, वह उस सबमें विश्वास करता है...यदि वह कहता है कि मुझे "शिक्षित" (?) करने में उन लोगों ने इतना खर्च किया है और इसके बदले में मुझे थियोसोफिकल सोसायटी को सेवाएं लौटानी चाहिए तो मैं उसे स्पष्ट कह दूंगा कि मैंने तो उन लोगों से ऐसा नहीं कहा था कि वे मुझे भारत से बाहर ले जाएं... कुछ भी हो यह सब निरी बकवास है और इससे मैं पूरी तरह ऊब चुका हूँ।'

कृष्णा तब और अधिक परेशान हो गया जब राजा की तरफ से उसे 'द डिसाइपल' की एक प्रति मिली, 'एसोटेरिक सेक्शन'(गुह्यविद्या विभाग) से निकलने वाली एक नयी पत्रिका। लेडी एमिली को उसने लिखा :

> मेरे तो रोंगटे खड़े हो गए हैं, आपको तो पता है कि मैं सचमुच मास्टर इत्यादि में विश्वास करता हूँ, और मैं यह कतई नहीं चाहता कि इसे एक हास्यास्पद विषय बना दिया जाए...'डिसाइपल' इस कदर ओछेपन और हेरफेर से भरा है...आप कल्पना कर सकती हैं मैं इस वक्त किस कदर विद्रोह की मनःस्थिति में हूँ। व्यक्तिगत रूप से मैं ऐसी किसी भी चीज़ से जुड़ना पसंद नहीं करूंगा जिसके लिए मुझे शर्मिंदगी महसूस हो, यदि (चार-बार रेखांकित) थियोसोफिकल सोसायटी में मुझे नेतृत्व की

भूमिका निभानी है तो ऐसा इसलिए हो पाएगा क्योंकि मैं वह नहीं हूँ जो अन्य लोग मेरे बारे में सोचते हैं या जो मेरा एक मुकाम उन्होंने गढ़ रखा है।

फिर भी उसने श्रीमती बेसेंट के सामने अपना यह विद्रोहात्मक मनोभाव प्रकट नहीं किया—उनके लिए उसमें जो श्रद्धा थी, वह कभी भी कम नहीं हुई। सितंबर में उनके तिहत्तरवें जन्म दिन पर उसने उन्हें जो पत्र भेजा, उसमें उसने यह बात पूरे हृदय से प्रकट की है। इस पत्र में उसने इस बात का भी ज़िक्र किया कि वह अब फ्रांसीसी पढ़-समझ सकता है और उसकी इच्छा सोरबोन में जाकर दर्शनशास्त्र की पढ़ाई करने की है।

सितंबर के अंत में कृष्णा हफ्ते भर के लिए नित्या के पास रहने आया। नित्या ने एडेल्फी में ही एक दूसरा फ्लैट ले लिया था। राजा से उसकी खूब मुलाकातें हुईं। राजगोपाल से मिलकर उसे ऐसा लगा जैसे वह एक 'बड़े अच्छे लड़के' से मिल रहा हो। पेरिस लौटने से पहले लंदन के उन दिनों में कृष्णा की रुचि 'स्टार' में फिर जाग्रत हो गई थी—स्पष्ट रूप से राजा के प्रभाव के कारण। द हेरल्ड पत्रिका अभी लेडी एमिली के ही संपादन में निकल रही थी, जिसकी संपादकीय टिप्पणियों को लिखने का जिम्मा कृष्णा ने ले लिया था। ये टिप्पणियां उसके लिए भारी तनाव का कारण बन गयीं और इनका खौफ उसके लिए बढ़ता गया, लेकिन इनसे पत्रिका की बिक्री में काफी फर्क पड़ा जो कि आर्थिक कठिनाइयों से गुज़र रही थी। जब लेडी एमिली का पुत्र रॉबर्ट, जो अब प्रोफेशनल पत्रकार था, इसका संपादक हुआ तो पत्रिका फ़ायदे में चलने लगी।

पेरिस पहुंचने पर कृष्णा सोरबोन चला गया। लेडी एमिली के सुझाव पर वक्तृत्व कला का अभ्यास भी उसने किया और महीने के अंत में थियोसोफिकल सोसायटी की एक बैठक को स्वेच्छा से संबोधित किया। जैसा कि उसने बताया, मंच पर पहुंचने से पूर्व उसकी 'कंपकपी' छूट रही थी, पर एक बार वहां पहुंचते ही वह एक अनुभवी वक्ता की तरह सुस्थिर और शांत हो गया..."लोगों के चेहरे खिल उठे और उन्होंने तालियां बजायीं... अब मैं बोलता रहूंगा क्योंकि यह मुझे पसंद है और वैसे भी एक-न-एक दिन मुझे इस भूमिका में आना ही है।" कृष्णा के विकास में यह एक महत्त्वपूर्ण कदम था।

जनवरी 1921 में कृष्णा ने श्रीमती बेसेंट को लिखा कि उसकी फ्रेंच परिष्कृत हो रही है और अब उसने संस्कृत सीखना आरंभ कर दिया है जो कि भारत में उपयोगी सिद्ध होगी। उसने यह भी जोड़ा—"जीवन में मेरी यह अभिलाषा है कि आपके लिए और थियोसोफी के लिए काम करूं। मेरा यह मनोरथ सफल होगा। राजा ने आपको बता दिया होगा कि मैं भारत आकर अपने हिस्से के काम की ज़िम्मेदारी लेना चाहता हूँ।" कृष्णा की संस्कृत की पढ़ाई नहीं हो पाई, और न ही वह सोरबोन में अधिक समय तक टिका। फरवरी में ब्रोंकाइटिस से उसकी हालत बड़ी खराब हो गई; वह एक सस्ते से होटल में टिका हुआ था, जहां से मैडम डी मेंज़िअर्ली उसे अपने घर रू मार्बफ ले आईं। यहां उन्होंने और उनकी बेटियों ने उसकी देखभाल की। उधर नित्या भी लंदन में चेचक की चपेट में आ गया। जब दोनों भाइयों की हालत कुछ सुधरी तो पूरी तरह तंदुरुस्त होने के लिए बस वे दोनों एक साथ तीन महीने के लिए एंटीबे चले गये। कृष्णा को यहां अपने भीतर गहराई

से झांकने का अवकाश मिला। मार्च में लेडी एमिली को उसने लिखा :

> ऑर्डर और थियोसोफिकल सोसायटी के बारे में मैंने काफी सोच-विचार किया। मुझे लगता है कि पहले मुझे स्वयं को जान लेना चाहिए क्योंकि 'केवल' तभी मैं औरों की मदद कर सकूंगा। वास्तव में मुझे इस 'ओल्ड जेंटलमैन' (अहम् या उच्चतर स्व के लिए रुसपोली की अभिव्यक्ति) को नीचे उतारकर कुछ ज़िम्मेदारियां सौंप देनी चाहिए। मन और शरीर पर्याप्त रूप से आध्यात्मिक नहीं हैं और अब मुझे 'उसके' निवास की व्यवस्था के लिए इन्हें जगाना होगा। यदि मुझे औरों के काम आना है तो सहानुभूति और पूर्ण समझ और खासकर अथाह प्रेम का मुझमें होना बेहद ज़रूरी है। मैं पुराने, घिसे-पिटे शब्दों का इस्तेमाल कर रहा हूँ, फिर भी ये मेरे लिए नये हैं।

कृष्णा जब पेरिस लौटा तो वह अभी भी पूरी तरह ठीक नहीं हुआ था। मैडम डी मेंज़िअर्ली उसे अपने एक 'प्रकृतिवादी' दोस्त डॉ. पॉल कार्टन के पास ले गईं। कृष्णा के लिए एक कड़ी खुराक बांध दी गई, जिसका उसने बड़ी श्रद्धा से पालन किया। वैसे कृष्णा हमेशा शाकाहारी बना रहा, और कभी मदिरा, चाय या कॉफी तक को उसने हाथ नहीं लगाया, फिर भी नयी-नयी तरह की खुराक के साथ प्रयोग करने में वह कभी पीछे नहीं रहा। अपनी वृद्धावस्था में उसके पास सेहतमंद खुराकों और विटामिनों की अच्छी-खासी दुकान लगी रहती थी।

दोनों भाइयों की ज़िंदगी में अब एक निर्णायक दौर आया। मई में पता चला कि नित्या के फेफड़े में एक धब्बा है। कृष्णा को जैसे ही यह ख़बर मिली, नित्या को उसने पेरिस बुला लिया, डॉ कार्टन से इलाज कराने के लिए। डॉ. कार्टन ने साफ कर दिया कि नित्या के इलाज का सिर्फ एक ही तरीका है कि उसे तपेदिक की अंतिम अवस्था में माना जाए। इस पर मैडम डी. मेंज़िअर्ली ने उसके पूरे आराम की व्यवस्था पेरिस के पास बुआसी-सेंट-लिजेर में कर दी। इसी के साथ बैरिस्टर बनने की उसकी सारी ख़्वाहिश का भी अंत हो गया।

थियोसोफी के अंतरराष्ट्रीय कन्वेंशन में शामिल होने के लिए श्रीमती बेसेंट जुलाई में पेरिस पहुंचीं। इसके बाद ही ऑर्डर ऑव द स्टार इन द ईस्ट की पहली कांग्रेस होनी थी जिसमें नित्या को भाग लेने की इजाज़त मिल गयी थी। उस वक्त ऑर्डर में तीस हज़ार सदस्य थे, जिनमें से दो हज़ार ने इस कांग्रेस में हिस्सा लिया। श्रीमती बेसेंट और कृष्णा ने मिलकर फ्रेंच में कांग्रेस का उद्घाटन किया। इसके बाद कृष्णा ने सारा इंतज़ाम अपने हाथों में ले लिया। जिस कुशलता से उसने सब कुछ संभाला, उसे देखकर श्रीमती बेसेंट और नित्या दोनों ही चकित रह गए। 'थियोसोफिस्ट' के सितंबर अंक में श्रीमती बेसेंट ने लिखा : 'चर्चाओं और गोष्ठियों को जिस दृढ़ आत्मविश्वास के साथ वह संभाल रहे थे और सामने आ रहे प्रश्नों को जितनी गहराई से पकड़ रहे थे यह देखकर सभी लोग हैरान थे... लेकिन सबसे बड़ी बात थी उनका यह गहरा विश्वास कि हर मनुष्य में सर्वशक्तिमान ईश्वर के रूप में एक वास्तविक सत्ता मौजूद है और, उनके अनुसार, उस ईश्वरत्व की मौजूदगी

के सुनिश्चित परिणाम हैं।'

दोनों भाइयों का अगस्त महीना बॉसी-सेंट-लिजेर में मैडम डी. मेंज़िअर्ली, मार और यो के साथ बीता। यहीं पर एक अलग घर में लेडी एमिली मुझे और मेरी बहन बेट्टी को लेकर आ गईं। इस वक्त मैं पंद्रह साल की थी और मेरी बहन तेरह साल की। राजगोपाल के अलावा जॉन कोर्ड्स भी हमारे साथ ही ठहरा था—यह वही जॉन कोर्ड्स था जिसकी देखरेख में कृष्णा को अड्यार में शारीरिक व्यायाम कराया जाता था। नित्या की हालत खराब थी, उसे बुखार चढ़ा रहता था। हम बाकी लोग दोपहर को राउंडर खेलते और शाम को बगीचे में ब्लाइंड मैन्स बफ, स्टैच्यूज़ और रशिअन विस्परिंग जैसे तरह-तरह के बच्चों के खेल खेलते और धमा-चौकड़ी मचाते। कृष्णा तो इन खेलों में इस तरह तल्लीन हो जाता था जैसे उसे किसी और बात की परवाह ही न हो। बचपने की मौज-मस्तियों से उसे अब तक दूर रखा गया था और अब जैसे उस कमी को पूरा करने के लिए वह जी-जान से जुट गया था।

श्रीमती बेसेंट के भारत लौटने से पहले ही यह तय हो गया था कि दोनों भाई सर्दियों में उनके पास पहुंच जाएंगे जिससे कि कृष्णा अपने मिशन की शुरुआत कर सके। लेकिन सितंबर तक नित्या की हालत और बिगड़ गई। कृष्णा उसे लेकर स्विस आल्प्स में विलर्स नाम की जगह पर चला गया, साथ में कोर्ड्स भी था। महीने के बीच में नित्या को कोर्ड्स के साथ छोड़कर कृष्णा डेवेंटर के पास हॉलैंड में बैरन वान पैलेंड के यहां रहने चला गया। बैरन अपना अठारहवीं सदी का पुश्तैनी घर कासल अर्ड और 5000 एकड़ के जंगलात कानूनी तौर पर कृष्णा को सौंपना चाहते थे। रास्ते में कृष्णा एम्सटर्डम में रुका। यहां उसकी मुलाकात सत्रह साल की एक खूबसूरत अमेरिकी लड़की हेलन नोथ से हुई। अपनी थियोसोफिस्ट डच चाची के यहां रहकर वह वॉयलिन की पढ़ाई कर रही थी। ज़िंदगी में पहली बार कृष्णा को किसी से प्यार हुआ था।

कृष्णा के विलर्स लौटने के कुछ ही समय बाद यह तय किया गया कि यदि नित्या की हालत संभली रहती है तो दोनों भाई मार्सेई से 19 नवंबर को बंबई के लिए रवाना हो जायेंगे। नित्या की हालत वास्तव में सुधरी भी। अक्टूबर के अंत में मैडम डी मेंज़िअर्ली उसे लेसिन ले गईं, डा. रोलीर नाम के एक प्रसिद्ध फेफड़े-विशेषज्ञ से सलाह लेने। दुर्भाग्य से डॉक्टर ने हामी भी भर दी कि वह भारत तक का सफर करने लायक है। इस बीच में कृष्णा ने दो हफ्ते लंदन में बिताए, सभी लोगों से विदा लेते हुए और एक हफ्ते के लिए वह हॉलैंड भी गया, थियोसोफी और 'स्टार' के सम्मेलन में भाग लेने के लिए। वहां उसकी हेलन से दुबारा मुलाकात हुई, प्रेम और ज़्यादा गहराया। पेरिस से मार्सेई के लिए रवाना होने के एक दिन पहले कृष्णा ने लेडी एमिली को लिखा :

> मेरी हालत बहुत खराब है। एक लंबे अंतराल के लिए आपसे और हेलन से बिछुड़ना पड़ रहा है। मैं किस कदर प्यार में हूँ बता नहीं सकता, और मेरे लिए यह एक बहुत बड़ी कुर्बानी है, लेकिन इसके अलावा कुछ किया भी नहीं जा सकता। ऐसा लगता है मेरे भीतर एक गहरा घाव हो गया है...मुझे लगता है, मुझे यह मालूम

> है कि वह भी इसे महसूस कर रही है, लेकिन वह भी क्या कर सकती है...आपको नहीं पता मेरी हालत क्या है। यह सब पहले मैंने कभी महसूस नहीं किया और इस सबका मतलब क्या है...बहुत हो गई ख़ाम-खयाली, कैसे यह वक्त को चुरा ले जाती है पता ही नहीं चलता! हालत कैसी खराब है!! ईश्वर आपका भला करे!

भारत पहुंचने पर पहले बंबई और फिर अड्यार में दोनों भाइयों का भव्य स्वागत हुआ। अड्यार में हेडक्वार्टर से जुड़े हुए अपने भवन के ऊपर ही श्रीमती बेसेंट ने उन दोनों के लिए एक अलग से बरामदा लगा हुआ कमरा बनवा दिया। सागर में मिलती हुई अड्यार नदी का नज़ारा सबसे खूबसूरत यहीं से दिखता था। दोनों को ही अड्यार बेहद खूबसूरत जगह लगती थी। कृष्णा को सबसे अधिक आनंद आता सूर्यास्त के वक्त नारियल के बगीचों में टहलते हुए सागर के तट पर पहुंचने में। बंबई पहुंचते ही वे लोग भारतीय पहनावे में आ गये थे। (अलग नज़र आने से जितना हो सके बचने के लिए कृष्णा हमेशा भारत में भारतीय और विदेशों में विदेशी पहनावा पहनने लगा। पर कभी-कभार शाम के वक्त वह यूरोप में भी भारतीय कपड़े पहन लेता)

अड्यार पहुंचने के कुछ ही दिनों के भीतर दोनों भाई अपने पिता से मिलने मद्रास गये। आदर्श भारतीय लड़कों की तरह उन्होंने पिता को दंडवत प्रणाम किया। वृद्ध पिता इतने खुश थे अपने बच्चों को देखकर कि आंसुओं के कारण उनके बोल नहीं निकल रहे थे।*

भारत में दोनों भाई केवल साढ़े तीन महीने ठहरे। इस दौरान वे श्रीमती बेसेंट के साथ देश के तमाम हिस्सों का दौरा करते रहे। बनारस में कृष्णा ने एक कन्वेंशन लेक्चर भी दिया। (न इस बार और न आगे कभी ज़िंदगी में कृष्णा ने अपनी वार्ताओं के लिए लिखे हुए नोट्स का इस्तेमाल किया।) बनारस में उसकी जॉर्ज अरुंडेल से फिर मुलाकात हुई। जॉर्ज ने अभी हाल में रुक्मिणी देवी नाम की एक सुंदर ब्राह्मण युवती से विवाह कर लिया था, जिससे एक अच्छा-खासा बावेला भी उठ खड़ा हुआ था। कृष्णा ने अड्यार में भी एक वार्ता दी, 'भावी शिक्षक' पर। इसमें उसके भविष्य की साफ-सुथरी तस्वीर नज़र आ जाती है : 'हम जो पसंद करते हैं वह उसकी शिक्षा देने नहीं जा रहा है, न ही वह हमारी भावनाओं पर मलहम लगाने जा रहा है जैसा कि हम सभी चाहते हैं; बल्कि वह तो हम सबको जगाने जा रहा है, भले ही हम इसे पसंद करें या नापसंद।'[15]

अड्यार में श्रीमती बेसेंट से कृष्णा की बातचीत कम ही हो पाती थी, कारण उनका दिन का समय मद्रास से निकलने वाले दैनिक 'न्यू इंडिया' के कार्यालय में बीतता था जिसका संपादन वह 1915 से कर रही थीं। हेलन की याद में खिन्न और बेचैन कृष्णा तब और अधिक परेशान हो गया जब उसे अड्यार परिसर में ईर्ष्या से प्रेरित गुटबंदियों का पता चला। वह रोज़ाना अपने कमरे पर टी-पार्टी देता जिससे कि लोग आपस में घुलमिल सकें और उनके 'संकीर्णता के घेरे टूटें'। लेडी एमिली को उसने लिखा : 'हर कोई मुझसे मिलने, बात करने और मेरी सलाह लेने के लिए बेताब है। भगवान ही जाने क्यों। मैं तो

नहीं ज़ानता। पर, मां, आप फिक्र न करें, मेरा दिमाग इन बातों से खराब नहीं होने वाला।'

दोनों भाइयों के भारत में उतरते ही यह तकरीबन तय हो गया था कि वे दोनों अप्रेल 1922 में होने जा रहे एक थियोसोफिकल कन्वेंशन में हिस्सा लेने सिडनी जाएंगे। एक समुदाय के प्रमुख के रूप में लेडबीटर वहां अब भी रह रहे थे। राजा के साथ वे दोनों कोलम्बो से पानी के जहाज़ में रवाना हुए। वहां की सीलन से भरी गरमी ने नित्या की खांसी और कफ को फिर से जगा दिया और पूरे सफर के दौरान उसकी हालत खराब रही। फ्रीमेंटल में पर्थ के लोगों की तरफ से कृष्णा को टेलीग्राम मिला : 'स्टार के भाईबंधु आपका स्वागत करते हैं।' लेडी एमिली को उन्होंने लिखा : "मेरे पूरे शरीर में सिहरन दौड़ जाती है। क्या आपने कभी ऐसा सुना है? लोग मेरे स्वागत की प्रतीक्षा में हैं – मेरे स्वागत की! काश मैं कहीं भी होता पर यहां नहीं होता...जीवन भर यही सब होता रहेगा। हे भगवान! मैंने किया क्या है....ओह! मुझे यह सब कितना नापसंद है।" फिर भी 'हेरल्ड' के जुलाई अंक के संपादकीय में उसने एडिलेड से पर्थ की यात्रा का और एक नये मुल्क में होने के रोमांच का ऐसा कवित्वपूर्ण विवरण दिया है कि किसी को उसकी भीतरी मनोदशा का आभास तक नहीं हो सकता था।

पर्थ में दो बार बोलने की 'यंत्रणा' से गुज़रना पड़ा कृष्णा को। "बोलने की मेरी कतई इच्छा नहीं थी—फिर भी मैंने जो बोला उससे लोग बहुत ही खुश हुए और उन्होंने मुझे धन्यवाद दिया। लोगों का मुझसे मिलने के लिए आना, बैठकें, श्रद्धा-निष्ठा से भरी वे सारी बातें, आपको नहीं पता मुझे इस सबसे कैसी ऊब होती है। यह सब मेरी प्रकृति के विपरीत है। मैं इस काम के लिए उपयुक्त नहीं हूँ।" उसने यह भी लिखा कि 'टी. एस. के लोग' उसे आकर्षित नहीं करते, वह अपने को उनके दायरे से जुड़ा महसूस नहीं करता, हालांकि उसके बाहर वह 'आला दर्जे का झक्की' समझा जाएगा।

सिडनी के बंदरगाह पर लेडबीटर उन लोगों से मिले। उन्हें देखकर वह उतने ही खुश लगे जितने खुश वे दोनों उन्हें करीब दस साल बाद देखकर हुए। नित्या ने रुसपोली को लिखा : 'वास्तव में वह एक शानदार वृद्ध हैं। सिवाय सौम्यता के बढ़ने के उनमें ज़रा भी बदलाव नहीं आया है...बिल्कुल वैसे ही, जैसे कि अड्यार में हर चीज़ पर वह विश्वास कर लेते थे, बिना संदेह-सवाल के, बिना इस बात की परवाह के कि कोई दूसरा व्यक्ति तो संदेह कर सकता है।' एक बड़ा परिवर्तन यह हुआ था कि अब वह लिबरल कैथोलिक चर्च के बिशप थे। यह चर्च ओल्ड कैथोलिक जेन्सेनिस्ट) चर्च की शाखा थी, जिसका विश्वास था कि येशु द्वारा प्रवर्तित धर्मप्रचार की परंपरा का निर्वाह वे लोग उनके समय से ही करते आए हैं। एक लंबा लाल रंग का चोगा, सीने पर क्रॉस और बिशप वाली अंगूठी, यह उनका पहनावा था और उनका अधिकतर समय धार्मिक क्रियाकलाप करते हुए बीतता था जिन्हें कृष्णा सख्त नापसंद करता था। शिष्टता के नाते वह उनके एक धार्मिक आयोजन में शामिल भी हुआ और ऊब के कारण बेहोश होते-होते बचा।

सिडनी में नित्या को डॉक्टर के पास ले जाया गया। एक्स-रे से पता चला कि बायां फेफड़ा ही रोगग्रस्त नहीं है बल्कि अब दाहिना फेफड़ा भी उससे प्रभावित हो गया है।

तुरंत स्विट्ज़रलैंड लौटकर इलाज करवाने की उसे हिदायत दी गई। भारत के रास्ते से होकर जाने का मतलब था काफी अधिक गरमी का सामना करना; इसलिए दोनों ने तय किया कि वे सैन फ्रैंसिस्को होकर जाएंगे और ओहाय वैली में पड़ाव डालेंगे। अमेरिका की थियोसोफिकल सोसायटी के जनरल सेक्रेटरी ए.पी. वॉरिंग्टन जो कि सिडनी के कन्वेंशन में आए हुए थे, उनके साथ यात्रा करेंगे। उनकी एक थियोसोफिकल मित्र श्रीमती मैरी ग्रे उन दोनों को तीन-चार महीने के लिए एक कॉटेज देने को तैयार थीं। 1500 फुट की ऊँचाई पर सांता बार्बरा के पास की इस वैली का मौसम टी.बी. रोगियों के लिए बहुत-सी फ़ायदेमंद माना जाता था। सिडनी छोड़ने से पहले कृष्णा को लेडबीटर की तरफ से मास्टर कुथुमी का एक संदेश मिला। इसकी एक नकल उसने लेडी एमिली को भेजी :

> तुमको लेकर भी हममें बहुत ऊंची आशाएं हैं। स्वयं को सुस्थिर एवं विस्तृत करो, तथा मन और मस्तिष्क को भीतर के सच्चे 'स्व' की अधीनता में लाने की अधिक-से-अधिक कोशिश करो। मतों और विधियों की भिन्नताओं के प्रति सहनशील बनो, क्योंकि सामान्यतः हरएक में सत्य का अंश अंतर्निहित है, यद्यपि प्रायः इसे इतना विकृत कर दिया जाता है कि पहचान में ही नहीं आ पाता। अज्ञान के भयानक अंधकार में डूबे हर मस्तिष्क में प्रकाश की हल्की-से-हल्की झलक को खोज लो, क्योंकि उसे पहचान कर और संरक्षण देकर तुम अपने किसी छोटे भाई की मदद कर सकोगे।

कृष्णा ने इस पर टिप्पणी की : 'मुझे बस इसी की ज़रूरत थी, क्योंकि मेरा रुझान असहनशीलता का है, बिना उस भाई की परवाह किए'।

कैलिफोर्निया देखकर कृष्णा और नित्या मंत्रमुग्ध हो गए। बर्कले विश्वविद्यालय को देखने के बाद कृष्णा ने लेडी एमिली को लिखा :

> जाति और रंग का घमंड वहां देखने को नहीं मिलता...मैं इतना रोमांचित था कि उस जगह की भौतिक सुंदरता को अपने साथ भारत ले जाना चाहता था, क्योंकि ये केवल भारतीय हैं जो जानते हैं कि किस तरह विद्वत्ता का एक उचित वातावरण तैयार किया जाता है। यहां उस तरह के परिवेश की कमी है; हम भारतीयों की तरह वे गरिमायुक्त नहीं हैं... आह, कितना अच्छा हो अगर ऐसी विद्यापीठ को भारत में स्थानांतरित कर दिया जाए जहां हमारे वे आचार्य हों जिनके लिए धर्म, ज़्यादा न सही, कम-से-कम उतना महत्त्वपूर्ण तो है जितनी कि शिक्षा।

ओहाय में दोनों भाई अकेले एक छोटी-सी पाइन कॉटेज में रह रहे थे। यहां वे 6 जुलाई को पहुंचे थे। घाटी का यह पश्चिमी किनारा था, जो संतरे और एवोकाडो के बगीचों से घिरा हुआ था। नाश्ता और दोपहर का खाना तैयार करने के लिए एक नौकरानी आ जाती थी। रात का खाना बनाने में वे खुद ही माहिर हो गये थे; अंडों की भुर्जी और आलू के चिप्स, साथ में 'हेंज़' बड़ा काम आ रहा था। पास ही एक दूसरी कॉटेज में मिस्टर वॉरिंग्टन थे। शुरू के कुछ हफ्तों तक सब कुछ ठीक-ठाक चलता रहा। वे लोग पहाड़ियों पर चढ़े, झरनों में नहाए, किसी भी तरह की रोक-टोक के बगैर उन्होंने उस मुक्त हवा में

सांस ली जो उन्हें अभी तक नसीब नहीं हुई थी। इसके बाद नित्या को फिर बुखार रहने लगा, और खांसी भी बुरी तरह चालू हो गई। कृष्णा अकेले घबरा जाता था, खासकर तब जब वह नित्या को आराम दिलाने की कोशिश करता और उसके बदले नित्या बुरी तरह झल्ला उठता। ऐसे समय में रोज़ालिंड विलियम्स का उनकी ज़िन्दगी में आना एक वरदान की तरह था। श्रीमती ग्रे के साथ रह रही उन्नीस साल की उजले केशों वाली यह सुंदर स्त्री, ऐसा लगता था जैसे, जन्मजात नर्स हो। दोनों भाइयों ने उसे हाथों-हाथ लिया। लेडी एमिली को कृष्णा ने लिखा : “वह बड़ी हँसमुख और खुशमिज़ाज है, नित्या को अच्छी मनोदशा में रखती है जो कि बहुत आवश्यक है। उसकी बहन थियोसोफी से जुड़ी हुई है, इसलिए इस सब के बारे में वह जानती है; और इस सबके बावजूद वह बहुत अच्छी है।” नित्या की देखभाल करने के लिए रोज़ालिंड ने अपनी मां से इजाज़त ले ली ताकि वह श्रीमती ग्रे के साथ और आगे भी ठहर सके। शुरू से ही यह समझ में आता था कि वह कृष्णा की बजाय नित्या की दोस्त अधिक थी। कृष्णा का हेलन को प्रेम-पत्र लिखना अब भी जारी था।

उसी समय किसी डॉ. अल्बर्ट एब्रेम्स ने एक इलैक्ट्रिक मशीन ईजाद की थी और उनका दावा था कि खून की कुछ बूंदों से ही वह टी.बी. सहित कई रोगों का पता लगाकर इलाज कर सकते हैं। कई लोगों ने नित्या को इस विधि से इलाज कराने की सलाह दी। दोनों भाइयों ने तय किया कि वे इसे आज़माएंगे। लॉस एंजिलिस में डॉ. एब्रेम्स के एक शिष्य थे। नित्या के खून की कुछ बूंदों को ब्लॉटिंग पेपर पर लेकर वहां भिजवा दिया गया। नाम के अलावा सब कुछ गुप्त रखा गया। दो दिन बाद रिपोर्ट आई : बाएं फेफड़े, गुर्दों और तिल्ली (स्प्लीन) में टी.बी. है। मिस्टर वॉरिंगटन ने किसी तरह ऑसीलोक्लास्ट नाम की उस दुर्लभ मशीन की व्यवस्था कर दी। प्रभावित हिस्सों पर बिजली के तारों से जुड़ी प्लेटें लगा दी जाती थीं और नित्या को इस तरह कई घंटों बैठे रहना पड़ता था। इस दौरान कृष्णा ओ. हेनरी और ओल्ड टेस्टामेंट पढ़कर सुनाता जाता। काले रंग की पेटीनुमा उस मशीन में क्या भरा था, इसे बड़ा गोपनीय रखा गया था। मशीन में से घड़ी की टिक-टिक की तेज़ आवाज़ आती थी, पर और कुछ महसूस नहीं होता था।

---

* फरवरी 1924 में नारायणय्या की मृत्यु हुई। उनका सबसे बड़ा बेटा शिवाराम डॉक्टर बन गया था और उसकी मृत्यु 1952 में हुई; उसके चार बेटे और चार बेटियां थीं। कृष्णा का सबसे छोटा भाई सदानंद 1948 में अपनी मृत्यु तक शिवाराम के साथ ही रहा; मानसिक तौर पर अविकसित होने के कारण घर में हँसते-खेलते वक्त गुज़रता था उसका, भतीजे-भतीजियां सब उसे बहुत प्यार करते थे। (शिवाराम के सबसे बड़े बेटे गिड्डू नारायण की सूचनानुसार)।

5

ईश्वर-अभिभूत

सिडनी में मिले मास्टर के संदेश ने कृष्णा को बहुत प्रभावित किया। 12 अगस्त को उसने लेडी एमिली को लिखा कि पिछले दो हफ्तों से वह हर सुबह और सोने से पहले इस पर आधा घंटा ध्यान करता रहा है; "मास्टर के साथ अपने पुराने संपर्क को मैं पुनर्जीवित करने जा रहा हूँ—आख़िरकार यही एक चीज़ है जो जीवन में महत्त्व रखती है।" यह लिखने के पांच दिन बाद, यानी 17 अगस्त को वह एक तीन-दिवसीय अनुभव से गुज़रा जिसने उसके जीवन को पूर्णतया बदल दिया। नित्या द्वारा लिखा इसका एक विवरण श्रीमती बेसेंट और लेडबीटर को दो सप्ताह बाद ही भेजा जा सका :

> हमारी कॉटेज घाटी के ऊपरी छोर पर है और पास में मिस्टर वॉरिंग्टन के अलावा कोई नहीं रहता है। कुछ सौ गज़ की दूरी पर उनकी अपनी एक पूरी कॉटेज है। कृष्णा, मिस्टर वॉरिंग्टन और मैं पिछले करीब आठ सप्ताह से यहां विश्राम करते हुए स्वास्थ्यलाभ ले रहे हैं। कभी-कभार मिलने वालों में एक मिस्टर वॉल्टन हैं जो कि अमेरिका की लिबरल कैथलिक चर्च के विकार-जनरल हैं। उनका घर घाटी में है। दूसरी एक अमेरिकी तरुणी रोज़ालिंड है जो एक-दो सप्ताह से पास ही में ठहरी हुई है, और अपना वक्त हमारे साथ बिताती है। करीब दो सप्ताह पहले यह घटना घटी जिसका वर्णन मैं करने जा रहा हूँ। संयोग से हम पांचों उस समय साथ में थे।
>
> जो कुछ हुआ उसका सही और वास्तविक अर्थ एवं महत्त्व तो आप ही बता सकेंगे यदि आप चाहेंगे—लेकिन हमें यहां ऐसा महसूस हुआ जैसे हम उस दुनिया में ले जाए गए जहां देवतागण मानो फिर से कुछ अंतराल के लिए हम मनुष्यों के बीच चले और इसने हम सबको इतना बदल दिया कि हमें लगने लगा जैसे हमारे दिशासूचक ने अपना ध्रुवतारा पा लिया हो। मुझे लगता है कि इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी यदि मैं कहूं कि जो कुछ हुआ उससे हमारे जीवन गहनता से प्रभावित हुए।
>
> देखा जाए तो कृष्णा को स्वयं सारी घटना का ब्यौरा देना चाहिए क्योंकि हम सब लोग दर्शक मात्र थे, आवश्यकता पड़ने पर मदद के लिए तैयार। लेकिन जो

कुछ हुआ उसके विस्तृत ब्यौरे की स्मृति उसे नहीं है क्योंकि ज़्यादातर समय वह अपने शरीर से बाहर था। और चूंकि हम सारे समय उसे बड़े ध्यान से देखते रहे—इस एहसास के साथ कि उसके शरीर की ज़िम्मेदारी कुछ हद तक हमें सौंपी गयी है—हमारी याददाश्त में हर चीज़ साफ-साफ है। मिस्टर वॉरिंग्टन पूरी तरह स्वस्थ नहीं हैं और मुझे भी अभी तक इसकी इजाज़त नहीं मिली है कि मैं इधर-उधर ज़्यादा घूम सकूं, इसलिए यह रोज़ालिंड का सौभाग्य था कि उसने कृष्णा की देखभाल की और और मुझे लगता है इसका उसे पुरस्कार भी मिल चुका है (उसे 'प्रोबेशन' के लिए स्वीकार कर लिया गया है)।

गुरुवार सत्रह की शाम को कृष्णा ने हल्की थकावट और बेचैनी महसूस की और हमने देखा कि गरदन के पिछले हिस्से के मध्य में एक बड़े कंचे के बराबर सिकुड़ गयीं पेशियों जैसी एक कष्टकारी गांठ निकल आयी है। अगली सुबह नाश्ते तक तो वह ठीक लगा; जब वह आराम करने के लिए लेटा, रोज़ालिंड और मैं बाहर बैठे हुए थे, वॉरिंग्टन और कृष्णा अंदर थे। वॉरिंग्टन के बुलाने पर रोज़ालिंड अंदर गयी और देखा कि कृष्णा बहुत बीमार दिख रहा था, बिस्तर पर पड़े कराहते हुए करवटें बदल रहा था जैसे बहुत अधिक पीड़ा में हो। उसके पास वह बैठ गयी और पता लगाने की कोशिश करने लगी कि उसे क्या हो रहा है, लेकिन कृष्णा कुछ भी स्पष्ट जवाब न दे सका। वह फिर कराहने लगा और कंपकपी व सिहरन का एक दौरा आया, और उसने दांतों को भींच लिया, हाथों को कसकर आपस में बांध लिया जिससे कंपकपाहट दूर हो सके। यह बिल्कुल एक मलेरिया के मरीज़ का बर्ताव था, पर कृष्णा बता रहा था कि उसे भयानक गर्मी लग रही है। रोज़ालिंड पकड़कर उसे कुछ देर के लिए शांत रखती, लेकिन मलेरिया के बुखार की तरह फिर वही कंपकपी शुरू हो जाती। तब वह उसे दूर हटाने की कोशिश करता, भीषण गर्मी की शिकायत करते हुए। रोज़ालिंड तब तक उसके पास बैठी रहती जब तक कि वह फिर शांत नहीं हो जाता—उसका हाथ पकड़े हुए, जैसे एक मां अपने बच्चे को शांत करती है। कमरे के दूसरे सिरे पर वॉरिंग्टन बैठे थे, और बाद में उन्होंने मुझे बताया जैसा कि उन्होंने महसूस किया कि कृष्णा के शरीर के भीतर कुछ ऐसी प्रक्रिया चल रही थी जो भौतिक तल से इतर किसी दूसरे तल से निर्देशित प्रभावों का परिणाम थी। शुरू में बहुत चिंतित बेचारी रोज़ालिंड की आंखें प्रश्नाकुल हो उठीं तो वॉरिंग्टन ने विश्वास दिलाया कि सब ठीक हो जाएगा। पर सुबह हालत और बिगड़ गयी और जब मैं कृष्णा के पास आकर बैठा तो उसने फिर भीषण गर्मी की शिकायत की, और कहा कि हम सभी बुरी तरह घबराए हुए हैं और उसे थका रहे हैं; कुछ मिनटों के बाद ही वह बिस्तर में चौंक कर उठ बैठता और हमें दूर हटाने लगता। कंपकपाहट फिर शुरू हो जाती। इस सब के दौरान वह केवल अर्द्धचेतना में होता, क्योंकि वह अड्यार और वहां के लोगों की बात इस तरह कह रहा था जैसे वे यहां उपस्थित हों। इसके बाद फिर वह थोड़ी देर के लिए

चुप पड़ जाता था जब तक कि कहीं पर्दे की सरसराहट, खिड़की की हलचल या दूर कहीं खेत में चलते हुए हल की आवाज़ उसे फिर से नहीं जगा देती, और फिर कराहता कि आवाज़ न करें, शांत रहें। हर कुछ मिनट पर गर्मी लगने पर वह रोज़ालिंड को दूर हटाने की कोशिश करता, लेकिन इसके बाद फिर वह रोज़ालिंड को अपने निकट चाहता।

मैं पास बैठ गया, लेकिन बहुत पास नहीं। हमने इसका पूरा प्रयास किया कि घर में कोई आवाज़ न हो और रोशनी न हो, लेकिन उन बहुत हल्की आवाज़ों को नहीं रोका जा सकता था जिनकी ओर शायद ही किसी का ध्यान जाता हो, और कृष्णा की संवेदनशीलता इतनी बढ़ गयी थी कि हल्की-से-हल्की ध्वनि भी उसे परेशान करने के लिए काफी थी।

बाद में जब दोपहर का खाना आया तो वह शांत हो गया और बिल्कुल ठीक-ठाक व चेतन हालत में दिखने लगा। रोज़ालिंड उसका खाना ले आयी जिसे उसने खा लिया। इसके बाद जब हम खाना खाते रहे वह चुपचाप लेटा रहा। तभी कुछ समय बाद फिर उसका कराहना शुरू हो गया, और अब उस बेचारे के लिए खाये हुए खाने को भीतर रहने देना भी मुश्किल हो गया। पूरी दोपहर ऐसे ही चलता रहा—कांपना, कराहना, बेचैनी, अर्द्धचेतना की हालत और हर क्षण जैसे पीड़ा में। आश्चर्य, जब हमारे खाने का वक्त हुआ तो वह शांत हो गया, हालांकि स्वयं उसने कुछ भी नहीं खाया और रोज़ालिंड भी अपने खाने के दौरान उसे अकेला छोड़ सकी, और सोने के वक्त वह इतना शांत हो चुका था कि रात भर आराम से सो सका।

अगले दिन शनिवार को नहाने के बाद यह सिलसिला फिर शुरू हो गया; ऐसा लग रहा था कि वह पिछले दिन से और कम चेतन अवस्था में है। पूरे दिन यह जारी रहा, पर नियमित मध्यांतरों के साथ, जिसमें उसे थोड़ा आराम मिल सके और रोज़ालिंड खाना खा सके।

लेकिन रविवार का दिन सबसे खराब रहा। और रविवार को ही हमने वह भव्य चरमोत्कर्ष भी देखा। इन तीन दिनों में हम सबने अपने-अपने मन और भावनाओं को अनुद्विग्न और शांत रखने का प्रयास किया, और रोज़ालिंड तो तीनों दिन कृष्णा के पास रही—वह उसकी इच्छानुसार तैयार रहती और जब भी वह चाहता उसे अकेला छोड़ देती। कितना अच्छा लग रहा था कृष्णा के साथ उसे देखना, यह देखना कि कैसे वह निःस्वार्थ और पूर्णतया अवैयक्तिक भाव से अपना प्यार उंड़ेल रही थी। इससे पहले भी उसका यह महान गुण हमारी नज़र में आया था और हालांकि उस समय हम कुछ आशंकित भी थे कि क्या किसी महिला को उस समय वहां होना चाहिए, लेकिन जैसा कि घटनाक्रम रहा उससे संभवतः यही ज़ाहिर होता है कि कृष्णा और हम सबकी मदद के लिए उसी समय वह यहां विशेष तौर पर लायी गयी थी। वैसे तो वह केवल उन्नीस साल की है और थियोसोफी के बारे में

कुछ खास नहीं जानती है, लेकिन इन तीन दिनों में उसने एक महान मां की भूमिका निभाई।

जैसा कि मैंने कहा रविवार को कृष्णा की हालत ज़्यादा खराब थी, उसे अत्यधिक कष्ट से गुज़रना पड़ा; कांपना, गर्मी का बुरी तरह बढ़ना, और चेतना का बीच में अवरुद्ध होना। जब वह अपने शरीर को नियंत्रण में पाता, तब वह सारे समय अड्यार की, ए. बी. (एनी बेसेंट) की और 'पर्पल ऑर्डर' (अड्यार में श्रीमती बेसेंट द्वारा बनाया गया एक अंदरूनी समूह जिसके सदस्य बैंगनी रंग की शाल ओढ़ते थे) के सदस्यों की बात करता; और वह लगातार यह मान रहा था कि वह अड्यार में है। फिर वह कहता—'मैं भारत जाना चाहता हूँ। वे मुझे यहां क्यों ले आए? मुझे नहीं पता मैं कहां हूँ'। अगर कोई घर में हरकत करता तो वह लगभग बिस्तर से उछल पड़ता और हर बार उसके कमरे में घुसने से पहले हमें चेतावनी देनी पड़ती थी। छः बजे जब हम शाम के खाने के लिए बैठे तो वह शांत रहा जब तक कि हमने खाना खत्म नहीं कर लिया। उसके तुरंत बाद ही अचानक जैसे पूरा घर प्रचंड शक्ति से भर गया और लगा कि कृष्णा जैसे किसी से आविष्ट हो। वह हममें से किसी को अपने पास नहीं चाह रहा था। वह बुरी तरह गर्द-धूल की शिकायत करने लगा, बिस्तर की गर्द-धूल, घर की असहनीय गर्द-धूल, और उसके आस-पास के लोगों की गर्द-धूल, और बहुत ही पीड़ा-भरी आवाज़ में उसने जंगल में जाने की इच्छा व्यक्त की। अब वह ज़ोर-ज़ोर से सिसकियां भर रहा था। हमारी हिम्मत नहीं हुई उसे छूने की, हमें समझ में नहीं आ रहा था कि हम क्या करें। उसने अपना बिस्तर छोड़ दिया था और कमरे के अंधेरे कोने में फर्श पर बैठ गया था और ज़ोर-ज़ोर से सिसकियां भरते हुए भारत के जंगलों में जाने की बात कह रहा था। एकाएक उसने घोषणा की कि उसकी इच्छा अकेले घूमने जाने की है, लेकिन अबकी बार हमने उसे किसी तरह रोक लिया, क्योंकि हमें नहीं लगता था कि वह इस हालत में था कि रात्रिभ्रमण कर सके। फिर जब उसने एकांत की इच्छा प्रकट की तो हम उसे छोड़कर बाहर बरामदे में आ गये। कुछ मिनट बाद वह भी हाथ में एक तकिया लिए आ गया और हम लोगों से जितना दूर संभव था वहां जा कर बैठ गया। बाहर निकल आने के लिए पर्याप्त शक्ति और चेतना रही उसमें, परंतु फिर वहां वह जैसे हमसे ओझल हो गया, और उसका शरीर असंबद्ध बातें बुदबुदाता हुआ वहीं ड्योढ़ी पर रह गया।

एक विचित्र समूह के रूप में हम उस बरामदे में बैठे हुए थे— रोज़ालिंड और मैं कुर्सी पर, वॉरिंग्टन और वॉल्टन सामने बेंच पर। कृष्णा हमारे दाहिने कुछ दूरी पर था। एक घंटे पहले सूरज डूब चुका था। दूर सामने पहाड़ियां थीं, पीले आसमान की पृष्ठभूमि में बैंगनी रंगत लिये हुए। धुंधलका गहरा रहा था, ध्वनियां मद्धम हो रही थीं और तभी सन्निकट चरमोत्कर्ष का एहसास हमारे भीतर उतरा। किसी महान घटना की विचित्र शांतिमय अपेक्षा के साथ हमारे विचार और

भावनाएं गहन हो गयीं।

तभी वॉरिंग्टन को एक दैवी प्रेरणा हुई। घर के सामने कुछ फुट की दूरी पर एक छोटा 'पेपर' वृक्ष था, कोमल हरी पत्तियों के साथ, सुगंधित मंजरियों से भरा हुआ और दिनभर छोटे-छोटे पक्षियों के कलरव से गुंजायमान, मानो मधुमक्खियां भिनभिना रही हों। उन्होंने आहिस्ता से कृष्णा को पेड़ के नीचे जाने के लिए कहा। पहले वह नहीं गया, फिर अपने-आप चला गया।

अब हम तारों की छटा में अंधेरे में थे। कृष्णा उन कोमल पत्तियों की छत के नीचे बैठा था जो रात में काली दिख रही थीं। वह अब भी अचेतन हालत में कुछ बुदबुदा रहा था। पर अब जैसे ही उसने पुकारा, 'ओह, मुझे पहले यहां क्यों नहीं भेजा?' हमने राहत की सांस ली। इसके बाद एक छोटी-सी ख़ामोशी।

अब उसने श्लोक-स्तुतिगान शुरू कर दिया। तीन दिन से उसके होठों से होकर कुछ नहीं गुज़रा था और उसका शरीर बेहद तनाव के कारण थककर चूर हो गया था। यह एक बड़ी धीमी क्लांत आवाज़ थी। अड्यार के 'श्राइन रूम' में प्रत्येक रात्रि को गाये जाने वाला यह वही मंत्रोच्चार था। इसके बाद फिर मौन।

बहुत पहले टाओर्मिना में जब भिक्षु की वेशभूषा में लॉर्ड गौतम बुद्ध के एक सुंदर चित्र को कृष्णा ने ध्यानस्थ आंखों से देखा था, तब हमने उस महान आत्मा की दैवी उपस्थिति को कुछ अत्यंत सुखद क्षणों के लिए अनुभव किया था जबकि उन्होंने एक संदेश भेजने की अनुकंपा की थी।

आज फिर इस रात्रि में कृष्णा ने जब उस 'पेपर' वृक्ष के नीचे बैठे हुए अपने स्तुतिगान को समाप्त किया तो मुझे बोधिवृक्ष के नीचे बैठे तथागत (बुद्ध) की स्मृति हो आयी, और मैंने पुनः इस शांत घाटी में भव्यता की उस तरंग को फैलता हुआ महसूस किया, जैसे फिर 'उन्होंने' कृष्णा को अपना आशीष प्रदान किया हो।

हम लोग एकटक उस पेड़ पर आंखें टिकाए बैठे थे, हैरान हो रहे थे कि क्या सब ठीक है, क्योंकि अब पूर्णतया मौन व्याप्त था। एक क्षण के लिए एकाएक मुझे एक बड़ा 'तारा' पेड़ के ऊपर चमकता हुआ दिखा। मुझे पता था कि कृष्णा की देह उस 'महान आत्मा' के लिए तैयार हो रही थी। मैंने झुककर वॉरिंग्टन को उस 'तारे' के बारे में बताया।

वह पूरा स्थान किसी 'महान उपस्थिति' से भरा हुआ लगने लगा। मेरे भीतर एक तीक्ष्ण इच्छा पैदा हुई कि घुटनों के बल खड़ा रह कर स्तुति करूं, क्योंकि मुझे पता था कि हम सबके हृदयों के 'महान स्वामी' स्वयं आ गए हैं। यद्यपि हमने 'उन्हें' आंखों से नहीं देखा, फिर भी सबने 'उनकी' उपस्थिति की भव्यता को अनुभव किया। तभी रोज़ालिंड की आंखें खुलीं और उसने देखा। उसका चेहरा बदल गया, इस तरह किसी का चेहरा बदलते हुए मैंने कभी नहीं देखा; उस पर इतनी अनुकंपा हुई थी कि वह अपनी भौतिक आंखों से उस रात्रि का वैभव देख सके। यह कहते हुए उसके चेहरे की आकृति परिवर्तित हो गयी थी—"क्या आप

‘उसे’ देख रहे हैं, क्या आप ‘उसे’ देख रहे हैं?” उसने उन दिव्य बोधिसत्त्व मैत्रेय को देख लिया था जिनकी ऐसी झलक पाने के लिए लाखों लोग जन्म-जन्मांतर तक प्रतीक्षा करते हैं, क्योंकि उसके पास ऐसी आंखें थीं जो निष्कपट थीं और उसने हमारे प्रभु की निष्ठाभाव से सेवा की थी। और इस प्रकार देखने में असमर्थ हम लोगों ने उस रात्रि के वैभव को हर्ष से स्वर्णिम उसके चेहरे में प्रतिबिंबित होते हुए देखा। उसके चेहरे की भंगिमा को मैं कभी नहीं भूल सकूंगा। मैं जो कि नहीं देख सका था लेकिन अपने प्रभु की उपस्थिति में महिमान्वित हुआ था, मैंने महसूस किया ‘वह’ हमारी तरफ मुड़े और कुछ शब्द रोज़ालिंड को कहे; दिव्य हर्षोन्माद से दीप्त था उसका चेहरा जब उसने यह उत्तर दिया—“मैं ऐसा ही करूंगी, अवश्य ऐसा ही करूंगी”। उसके ये उच्चरित शब्द ऐसे थे जैसे हर्षातिरेक में कोई वचन दिया गया हो। मैं कभी नहीं भूल सकूंगा उसका चेहरा—मानो उसके द्वारा किया जा रहा वह दर्शन मुझे भी धन्य कर रहा था। उसका चेहरा उसके हृदय की हर्षविह्वलता को दर्शा रहा था, क्योंकि उसके अस्तित्व का अंतरतम हिस्सा ‘उनकी’ उपस्थिति से प्रज्वलित था। उसकी आंखों ने देखा और मैंने मौनभाव से प्रार्थना की कि ‘वह’ मुझे अपने सेवक के रूप में स्वीकार कर सकें; हम सबके हृदय इस प्रार्थना से भरे हुए थे। दूर हमें दिव्य मृदु संगीत सुनाई पड़ा, हम सबने सुना, हालांकि वे गंधर्वगण (ब्रह्मांडीय देवदूत जो नक्षत्रीय संगीत बजाते हैं) हमसे छिपे हुए थे। कितनी ‘विभूतियां’ मौजूद थीं जिनकी कांति और भव्यता ने करीब आधे घंटे तक वातावरण को आविष्ट रखा। रोज़ालिंड ने तो आनंदातिरेक से कांपते और लगभग सिसकते हुए यह सब देखा—“देखिए, क्या आपको दिखा?” “क्या आपको संगीत सुनाई दे रहा है?” वह अक्सर दोहराती रही। इसके बाद हमें कृष्णा के पदचाप सुनाई दिए और एक सफेद आकृति अंधेरे में आती हुई दिखाई दी; सब कुछ समाप्त हो चुका था। रोज़ालिंड चिल्लाई : आह, वह आ रहे हैं; जाओ उनसे मिलो, उनसे मिलो,” यह कहते हुए वह लगभग गश खाकर अपनी कुर्सी में गिर पड़ी। जब वह होश में आयी तो आश्चर्य, उसे कुछ भी याद नहीं था, कुछ भी! सब कुछ उसकी स्मृति से जा चुका था, सिवाय उस संगीत की ध्वनि के जो अब भी उसके कानों में थी।

अगले दिन फिर कृष्णा को, हालांकि लंबे अंतरालों पर और कुछ ही मिनटों के लिए वही कंपकपी और अर्द्धचेतन अवस्था दोबारा आती रही। दिन के सारे समय वह पेड़ के नीचे समाधि-अवस्था* में पड़ा रहा, और शाम को जब वह पिछली रात की तरह ध्यान में बैठा तो रोज़ालिंड ने फिर तीन आकृतियां उसके चारों ओर देखीं जो कृष्णा को साथ लेकर तुरंत चली गईं, उसके शरीर को पेड़ के नीचे छोड़ते हुए। तब से वह हर शाम पेड़ के नीचे ध्यान में बैठता है।

जो मैंने देखा और सुना उसका वर्णन मैंने कर दिया है। लेकिन हम सबके ऊपर इसका जो प्रभाव पड़ा है उसके बारे में मैंने व्यक्त नहीं किया है, क्योंकि मुझे

> लगता है इसमें कुछ समय लगेगा—कम-से-कम मुझे तो लगेगा ही, उस भव्यता को पूर्णतया अनुभव करने में जिसके साक्षी होने का हम सबको सौभाग्य प्राप्त हुआ। यद्यपि मैं अब महसूस करता हूँ कि जीवन बिताने का सिर्फ एक ही तरीका है और वह है प्रभु की सेवा करते हुए।

कृष्णा ने स्वयं भी इस अनुभव का विवरण लिखकर श्रीमती बेसेंट और लेडबीटर को भेजा। पर चूंकि वह अचेतन या अर्द्धचेतना की अवस्था में रहा, इसलिए इसकी उसे बहुत कम स्मृति रही। उसका विवरण इस तरह खत्म होता है :

> मैं अत्यंत आनंदित था, क्योंकि मैंने दर्शन कर लिया था। कुछ भी अब पहले जैसा नहीं रह सकेगा। जीवन-प्रवाह के उद्‌गम का स्वच्छ और शुद्ध जल मैंने पी लिया था और मेरी प्यास बुझ गयी थी। अब कभी मैं प्यासा नहीं रह सकता। अब कभी मैं घने अंधकार में नहीं रह सकता, क्योंकि मैंने 'प्रकाश' को देख लिया है। मैंने उस करुणा का स्पर्श कर लिया है जो सारी दुख-पीड़ाओं को हर लेती है; यह मेरे लिए नहीं है बल्कि विश्व के लिए है। पर्वत के शिखर पर खड़े होकर मैंने सर्वशक्तिमान 'विभूतियों' को दृष्टि भरकर देख लिया है। उस दिव्य और उपचारकारी प्रकाश को मैंने देख लिया है। 'सत्य' के स्रोत का मैंने साक्षात कर लिया है और अंधकार छंट गया है। अपनी पूरी भव्यता के साथ प्रेम ने मेरे हृदय को उन्मत्त कर दिया है। मेरा हृदय अब कभी बंद नहीं हो सकता। आनंद और शाश्वत सौंदर्य के स्रोत पर मैंने अपनी प्यास बुझाई है। मैं ईश्वरोन्मत्त हूं।

इसके पूर्व अपने विवरण में उसने लिखा था :

> पहले दिन जब मैं उस अवस्था में था तथा अपने चारों ओर की वस्तुओं के प्रति अधिक जाग्रत था, तब मैं पहली बार एक अत्यंत असाधारण अनुभव से गुज़रा। एक व्यक्ति सड़क ठीक कर रहा था; वह व्यक्ति मैं था; उसके हाथ में जो कुदाल थी वह मैं था; जिस पत्थर को वह तोड़ रहा था वह मेरा ही हिस्सा था; घास की वह कोमल पत्ती मेरा ही अंतरतम रूप थी, और उस व्यक्ति के पास का वह पेड़ भी मैं स्वयं था। सड़क ठीक करने वाले व्यक्ति की तरह मैं महसूस कर पा रहा था, सोच पा रहा था; पेड़ से होकर गुज़रती हवा को, घास की पत्ती पर उस छोटी चींटी को मैं महसूस कर पा रहा था। चिड़िया, धूल, शोरगुल—ये सब मेरे ही हिस्से थे। तभी कुछ दूरी पर एक कार जा रही थी—ड्राइवर, इंजन, टायर सब कुछ मैं ही था। जैसे-जैसे कार मुझसे दूर जा रही थी मैं अपने आप से दूर जा रहा था। प्रत्येक वस्तु में था मैं, या यूं कहें कि प्रत्येक वस्तु मुझमें थी—चेतन, अचेतन, पहाड़, कीट-पतंग, सांस लेने वाले सारे प्राणी, सभी कुछ। पूरे दिन मैं इस आनंदित अवस्था में रहा।

वॉरिंग्टन ने भी उस अनुभव का एक विवरण लिखा, अन्य दोनों की सत्यता के पक्ष में साक्ष्य देते हुए। तीनों विवरणों की प्रतियां मिस डॉज और लेडी एमिली को भेजी गईं। लेडी एमिली से यह अनुरोध किया गया कि वे किसी विश्वसनीय व्यक्ति से इसकी कुछ

प्रतियां तैयार करवा लें, क्योंकि ये विवरण अत्यंत निजी थे। उन्होंने इस कार्य के लिए राजगोपाल को चुना जो टाइप करना सीख चुका था।[16]

दो हफ्ते शांति से गुज़रे। इस दौरान प्रत्येक संध्या को पेड़ के नीचे कृष्णा का ध्यान जारी रहा। 3 सितंबर को फिर कृष्णा का उस विचित्र, अर्द्धचेतना की अवस्था में आना शुरू हो गया। लेकिन इस बार यह अवस्था नियमित शाम को 6.30 से 8.30 के बीच रहती, या नौ बजे ध्यान के बाद। अब साथ में रीढ़ की हड्डी में दर्द होना भी शुरू हो गया जिसने कुछ दिनों में यंत्रणा का रूप ले लिया। कृष्णा की अवस्था का दैनिक विवरण नित्या ने तैयार किया जिसे बाद में एक लंबे वर्णन के रूप में उसने श्रीमती बेसेंट और लेडबीटर को भेजा।[17] इसके अनुसार कृष्णा का 'स्व' इगो' उसके शरीर को 'देह-चेतना' (फिज़िकल एलीमेंटल)[*] के सुपुर्द करके बाहर चला जाता था और यही 'देह-चेतना' दर्द को सहन करती थी, इसीलिए जब कृष्णा 'वापस' आता था तो उसे दर्द की स्मृति नहीं रहती थी। इस 'देह-चेतना' ने रोज़ालिंड को गलती से कृष्णा की मां समझ लिया था, रोज़ालिंड उस दौरान रोज़ाना शाम को कॉटेज में आती थी जबकि प्रोसेस (प्रक्रिया) चल रहा होता था, जैसा कि बाद में इसे पुकारा गया।

किसी-किसी समय कृष्णा को जलने का अनुभव होता और उसकी इच्छा तुरंत सरिता में डुबकी लगाने की होती, किंतु उसे बलपूर्वक रोक लिया जाता, क्योंकि वह जहां भी होता मुंह के बल मूर्च्छित होकर गिरने और भयंकर रूप से चोट खाने की संभावना रहती। आधे प्रकाश में फर्श पर बिछे गद्दे पर उसे सुलाया जाता क्योंकि पलंग पर से उसके लुढ़क जाने का डर रहता। और वह अधिक प्रकाश भी नहीं सहन कर पाता। नित्या के अनुसार यह कुछ ऐसा था जैसे मरने की हालत तक जल चुके किसी व्यक्ति की देखभाल करना। पीड़ा, जिसने शरीर के विभिन्न हिस्सों पर कब्ज़ा कर लिया था अब लंबे-लंबे दौरों के रूप में आती। जब थोड़ी राहत मिलती तो वह कुछ अदृश्य लोगों से बातचीत करता या फिर किसी एक से, जो कि लगता था कि हर रात को इन 'शल्यक्रियाओं' के संचालन के लिए आता था। कृष्णा इन लोगों को 'वे' या 'उन्हें' कहकर ही बुलाता था। यह साफ लगता था कि उसे ये संकेत दे दिये जाते थे कि क्या होने वाला है, तभी वह कहता हुआ दिखता, "ओह, आज रात को हालत ख़राब होने जा रही है! ठीक है, कोई बात नहीं।" जब दर्द बढ़ता जाता तो वह सिसकने और छटपटाने लगता, कसकर चीखता, और कभी-कभी राहत पाने के लिए खुलकर रोता। कभी 'देह-चेतना' सिसकते हुए कहती, "ओह, नहीं, नहीं, रहम कीजिए," और तब कृष्णा की आवाज़ आती, "कोई बात नहीं। मेरा अर्थ यह नहीं था, कृपया जारी रखिए" अथवा "मैं अब तैयार हूँ, इसे जारी रखते हैं।"

नौ बजे, जब उसकी देह पर रात्रि की वे क्रियाएं हो चुकी होतीं तो वह औरों के साथ बैठता, दूध लेता (क्योंकि उस दौरान वह शाम को कुछ नहीं खाता था) और बाकी लोग उसे बीती हुई घटना के बारे में बताते। वह उन्हें इस तरह सुनता जैसे वे किसी अजनबी की बात कर रहे हों और उनमें उसकी रुचि उतनी ही तीव्र होती जितनी कि उन लोगों की।

उसके लिए यह सब नया होता क्योंकि उसकी स्मृति में कुछ नहीं बचा होता था।

एक बड़ी पीड़ादायक शाम को उसने कराहते हुए कहा, "हे मां, मुझे इसके लिए क्यों पैदा किया?" वह कुछ मिनट के लिए आराम की प्रार्थना करता, तथा अन्य लोग उसे अपनी मां से अथवा 'उनसे' बात करते हुए सुनते, जिनसे वह बहुत ही आत्मविश्वास के साथ कहता, "शरीर की ओर ध्यान नहीं दीजिए, मैं इसे रोने से नहीं रोक सकता। मैं और अधिक बर्दाश्त कर सकता हूँ", और कभी-कभी 'वे' उससे कुछ कहते और 'खुलकर हँसने' लगते। एक बार उन लोगों ने 'देह-चेतना' को यह पुकारते हुए सुना, "लौट आओ कृष्णा!" यदि कृष्णा लौट आता तो 'प्रॉसेस' रुक जाती। ऐसा प्रतीत होता कि प्रत्येक शाम को एक निर्धारित मात्रा में शरीर पर कार्य होता था और बीच में यदि कोई व्यवधान आ जाता तो उसे अंत में पूरा कर लिया जाता था।

कृष्णा की देह दिन-पर-दिन थकती और कमज़ोर होती जा रही थी। उसके कष्ट को देखना बाकी लोगों के लिए अत्यधिक तनाव का कारण बन रहा था। अक्टूबर के आरंभ में 'उन्होंने' उसकी आंखों पर काम करना शुरू किया जो कि पहले से भी अधिक घोर यंत्रणाकारी था। नित्या ने लिखा : उस रात उन लोगों ने कृष्णा को बताया कि उसकी आंखों को शुद्ध किया जा रहा है ताकि उसे 'उनके' दर्शन की इजाज़त दी जा सके। लेकिन शुद्धीकरण की यह प्रक्रिया सुनने में बड़ी वीभत्स थी। उसे यह कहते हुए हमने सुना, "जैसे मरुस्थल में दहकते हुए सूरज की तरफ मुंह करके किसी को बांध दिया गया हो और उसकी पलकें काट ली गयी हों।"

एक संध्या को जब ये क्रियाकलाप शुरू नहीं हुए थे और कृष्णा स्नान के बाद पेड़ के नीचे ध्यान के लिए बैठने ही वाला था, उसने बाकी लोगों को बताया कि इस रात एक 'महान अतिथि' आ रहे हैं। (उन लोगों ने इससे यह समझा कि यह लॉर्ड मैत्रेय नहीं हो सकते, जो कि, ऐसा समझा गया, एक-दो बार पहले आ चुके थे।) कृष्णा ने नित्या से अपने कमरे में बुद्ध की एक तस्वीर रख देने के लिए कहा—ध्यान के बाद उसी कमरे में उसे लौटना था। इस तरह नित्या को कोई संदेह नहीं रह गया कि वह 'महान आगंतुक' कौन होगा। कृष्णा की देह ने अब तक जितना बर्दाश्त किया था, उसकी तुलना में उस रात की क्रियाएं सबसे यातनाकारी रहीं। किंतु इसके साथ ही यह अगस्त की उस पहली रविवारीय रात के बाद की सबसे भव्य रात रही, क्योंकि उन सब लोगों ने महसूस किया कि वह 'महान उपस्थिति' कुछ क्षणों के लिए रही। बाद में जब नित्या और रोज़ालिंड कृष्णा के साथ उसके कमरे में थे, तो उसने कुछ अदृश्य लोगों से बात करना शुरू कर दिया। स्पष्ट था कि 'कार्य' सफल रहा और वे उसे बधाई दे रहे थे। उन लोगों ने उसे यह कहते हुए सुना, "मुझे बधाई देने की कोई बात नहीं है, आप स्वयं भी यह कर सकते थे।" जब बधाई देने वाले चले गए तो कृष्णा ने, अचेतन अवस्था में ही, कहा, "मां, अब प्रत्येक वस्तु भिन्न होगी, हममें से किसी के लिए भी अब जीवन पहले जैसा नहीं रहेगा। मैंने 'उसे' देख लिया है मां, अब कुछ भी शेष नहीं रहा।'

लेकिन यह कृष्णा के शारीरिक कष्टों का अंत नहीं था। अब 'उन्होंने' उसके सिर में

कुछ खोलना चालू किया जिससे उसे इतनी अवर्णनीय यंत्रणा हुई कि वह चीखता-चिल्लाता रहा कि “इसे बंद कर दो, ईश्वर के लिए इसे बंद कर दो।” जब कष्ट असहनीय हो गया तो ‘उन्होंने’ इसे बंद भी कर दिया, लेकिन कुछ देर बाद फिर खोल दिया, जिससे शरीर तब तक चीख-पुकार करता रहा जब तक कि वह मूर्च्छित नहीं हो गया। यह कोई चालीस मिनट तक चला। जब अंततः यह सब रुका तो सभी के लिए यह हैरानी की बात थी कि चार-पांच साल के बच्चे की आवाज़ में शरीर ने बतियाना शुरू कर दिया, अपने बचपन की घटनाओं को याद करते हुए।

कुछ दिनों को छोड़कर जबकि कृष्णा और नित्या हॉलीवुड में थे, दिसंबर के आरंभ तक ‘प्रॉसेस’ हर रात को ज्यों-की-त्यों चलती रही। और जब यह खत्म होती, हर शाम को, वह छोटा बालक घंटे-डेढ़-घंटे तक अपनी बचपन की घटनाओं के बारे में रोज़ालिंड से बात करता जिसे वह गलती से अब भी अपनी मां माने बैठा था। उसने साथ में खेलने वाले एक बातूनी लड़के के बारे में बताया, और यह कि स्कूल जाने से उसे कितनी नफ़रत थी। मां की मृत्यु के बारे में उसने बताया : ‘उसने सोचा कि वह (मां) बीमार है और जब उसने देखा कि डॉक्टर मां को दवाई दे रहा है तो उसने मां से विनती की, “इसे मत लो मां, इसे मत लो, यह कोई बुरी चीज़ है, इससे तुम्हें कोई फ़ायदा नहीं होगा, मत लो इसे, डॉक्टर कुछ नहीं जानता, वह एक गंदा आदमी है।” कुछ देर बाद डरी आवाज़ में वह बोला, “तुम इतनी चुप क्यों हो मां, क्या हो गया, पिताजी ने धोती से अपना मुंह क्यों ढंक लिया है, मां, जवाब दो, मां”।’

हर शाम को जब ‘प्रॉसेस’ का यह दौर चल रहा था, तब कृष्णा सुबह में कुछ लिख भी रहा था, जैसा कि उसने लेडी एमिली को 17 सितंबर के एक पत्र में बताया : ‘यह कुछ अजीब-सा लेख है; अब तक 23 पृष्ठ लिख चुका हूँ, बिना किसी की भी मदद के।’[18]

श्रीमती बेसेंट और लेडबीटर दोनों ने कृष्णा के 17 से 20 अगस्त तक के अनुभव को तीसरी दीक्षा की मान्यता दी, लेकिन ‘प्रॉसेस’ के बारे में वे कोई स्पष्टीकरण नहीं दे सके। कृष्णा स्वयं इससे आश्वस्त था कि लॉर्ड मैत्रेय की अगवानी के लिए उसके शरीर को तैयार किया जा रहा था, तथा इसे रोकने या कम करने के लिए कोई प्रयास नहीं होना चाहिए। केवल एक चिकित्सक डॉ. मेरी रॉक (एक अंग्रेज़ थियोसोफिस्ट और ‘स्टार’ की सदस्या) ने कृष्णा को उस अवस्था में देखा था। वे इसके कारण पर प्रकाश डालने में असमर्थ थीं। कृष्णा उन्हें अच्छी तरह जानता था और मानता था। बिना चेतना की स्थिति में लौटे वह उसकी जांच-पड़ताल नहीं कर सकती थीं। यदि किसी अजनबी डॉक्टर या मनोचिकित्सक ने उस मकान में या कमरे में प्रवेश किया होता तो कृष्णा को इसका तुरंत भान हो जाता और ‘प्रॉसेस’ निःसंदेह रुक गया होता।

तो फिर यह ‘प्रॉसेस’ क्या था? उस समय नित्या द्वारा दी गयी व्याख्या के अनुसार, जिसे औरों ने स्वीकारा भी, यह कृष्णा की कुंडलिनी का जागरण था, जिसे यदा-कदा ‘सर्पाग्नि’ (सर्पेंट फायर) भी कहा जाता है और जो मेरुदंड के आधार में केंद्रित होती है,

और जब सच्चे योग के अभ्यास से यह जाग्रत होती है तो बहुत बड़ी मात्रा में ऊर्जा विमुक्त करती है, और अतींद्रिय क्षमताएं विकसित कर देती है। लेडबीटर ने इस पर श्रीमती बेसेंट को यह लिखते हुए आपत्ति खड़ी की कि जब उनकी कुंडलिनी जाग्रत हुई थी तो उन्हें कुछ घबराहट के अलावा कुछ नहीं सहना पड़ा था। बालपन में जितनी अतींद्रिय क्षमता कृष्णा में दिखी थी, 'प्रॉसेस' के बाद उससे अधिक विकसित अवस्था उसमें नहीं दिखी। बहरहाल इससे पहले कि कुंडलिनी वाली व्याख्या मान्य हो सके, 'प्रॉसेस' काफी लंबा चलता रहा। समय-समय पर चिकित्सकों, मनोविज्ञानियों और अन्य लोगों ने सुझाया कि यह क्या हो सकता है। माइग्रेन, हिस्टीरिया, एपीलेप्सी से लेकर स्किज़ोफ्रीनिया (सभी मस्तिष्क से संबंधित बीमारियां) तक सुझाये गये। इनमें से कोई भी वस्तुस्थिति से मेल नहीं खाता। हां, यह ज़रूर है कि कई रहस्यवादियों ने दृश्य देखे हैं और ध्वनियां सुनी हैं, लेकिन क्या उन्हें इतनी भयंकर शारीरिक यातनाओं से भी गुज़रना पड़ा? क्या इसकी कोई व्याख्या है? क्या हम ऐसे निष्कर्ष पर पहुंचने पर विवश हैं जो रहस्यात्मक ही हो सकता है? एक चीज़ जो साफ दिखती है वह यह है कि अगले कुछ सालों तक कृष्णा के शरीर में जो कुछ भी घटित हुआ उससे उसमें कुछ ऐसी उच्च शक्ति या ऊर्जा के मार्ग का खुलना संभव हुआ जो उसकी आगे की शिक्षा (टीचिंग) का स्रोत बना।

---

* संस्कृत के इस शब्द की एक सरल परिभाषा है : समाधि की उत्कृष्ट प्रक्रिया मृत्यु का विनाश करती है, शाश्वत सुख-शांति की ओर ले जाती है, तथा सर्वोच्च ब्रह्मानन्द (परम सत्ता) की प्राप्ति कराती है।'

* शरीर का वह हिस्सा जो अपनी नैसर्गिक और विशुद्ध भौतिक क्रियाओं पर नियंत्रण रखता है, उस समय जबकि उच्चतर चेतना बाहर चली जाती है। यह विकास के निचले स्तर पर होता है और इसे मार्गदर्शन की ज़रूरत होती है।

6

अकेलापन

पाइन कॉटेज, इसके चारों ओर की छः एकड़ ज़मीन और साथ में एक बड़े घर को खरीदने की परिस्थितियां अगली फरवरी में बनीं। उन सारी घटनाओं के बाद यह स्थान कितना पवित्र हो गया था, इस बात की ओर संकेत करते हुए जब कृष्णा ने इस जगह को लेने की इच्छा व्यक्त की तो मिस डॉज ने आवश्यक धन मुहैया करा दिया। बड़े वाले घर को कृष्णा ने 'आर्य विहार' नाम दिया। जल्दी ही सात एकड़ ज़मीन और ख़रीद ली गयी और साथ में इस जायदाद को संभालने के लिए एक 'ब्रदर्स ट्रस्ट' की स्थापना की गयी। जीवन में जब कभी ज़रूरत पड़ी कृष्णा को दान और विरासतों के ज़रिये धन मिलता रहा और बाद में चलकर किताबों से भी धन आया। हालांकि अपने पास उसने मिस डॉज की 500 पौंड की सालाना आय के अलावा कभी कुछ नहीं रखा।

1923 की शुरुआत से कृष्णा ने कठिन परिश्रम शुरू कर दिया। ओहाय से ही दर्जनों कार्यालय संबंधी पत्रों को संभालना, 'हेरल्ड' के लिए हर महीने टिप्पणियां लिखना, कैलिफोर्निया में 'स्टार' को दोबारा व्यवस्थित करने का काम, आसपास की जगहों में वार्ताएं करना और भारत में एक स्कूल की स्थापना के लिए धन इकट्ठा करना—यह सब कार्य वह करता रहा। एब्रेम्स के इलाज से नित्या के स्वस्थ होने की बात मानकर मई में दोनों भाई यूनाइटेड स्टेट्स के दौरे पर निकल पड़े। शिकागो के थियोसोफिकल कन्वेंशन में उनका दौरा खत्म हुआ। जून में वे इंग्लैंड आए। जुलाई में विएना की थियोसोफिकल और स्टार कांग्रेस में उनके शामिल होने का इंतज़ाम किया गया था। प्लाइमाउथ में लेडी एमिली उनसे मिलीं। उन्होंने श्रीमती बेसेंट को खबर दी कि कृष्णा बाहर से थोड़ा बदला हुआ दिख रहा है, शायद ज़्यादा सुंदर, लेकिन 'हर क्षण यह प्रतीत हो रहा था कि एक विशाल घनीभूत शक्ति उसमें से प्रवाहित हो रही है।' कांग्रेस के बाद कृष्णा की हेलन नोथ से फिर मुलाकात होने वाली थी। वह एम्सटरडम में ही रह गयी थी। कृष्णा ने इच्छा ज़ाहिर की कि वह किसी शांत जगह में, जहां लोग उसे जानते न हों, कुछ दिनों के लिए 'पारिवारिक' छुट्टियां बिताना चाहेगा। जॉन कॉर्ड्स के एक मित्र ने ऑस्ट्रियन टिरोल के एक गांव अर्वाल्ड के बाहर बना एक शले (बंगला) 'विला ज़ौनब्लिक' उनके लिए खोल दिया। उसने और नित्या ने अपनी मित्र मंडली के साथ वहां सात हफ्ते गुज़ारे। इसमें

शामिल थीं लेडी एमिली, मैं और मेरी बहनें, हेलन, मार डी मेंज़िअर्ली, राजगोपाल (जो कि अब कैंब्रिज में था), कॉर्ड्स, और रूथ रॉबर्ट्स-एक अंग्रेज़ लड़की जिसके साथ कृष्णा की सिडनी में कुछ चुहलबाज़ी हुई थी—कृष्ण, नित्या, लेडी एमिली, हेलन और राजगोपाल 'ज़ौनब्लिक' में ठहरे। बाकी लोग सोते तो दूसरे शले में थे लेकिन खाना सभी लोग यहीं पर खाते थे। पहले के दो हफ्ते बहुत ही सुख में बीते। पहाड़ों पर सैर करने के लिहाज़ से यह एक आदर्श जगह थी। एक सपाट मैदान भी था जहां हम राउंडर्स खेला करते थे। जब पिकनिक पर जाते तो कृष्णा, नित्या और राजगोपाल भारतीय मंत्रों का उच्चार करते। खासकर जंगल में उन मंत्रों को सुनना बड़ा ही अच्छा लगता था।

तभी अगस्त के मध्य में 'प्रॉसेस' फिर ज़ोरों से शुरू हो गया, हर शाम वैसा होता और यह 20 सितंबर तक जारी रहा। कृष्णा की 'देह-चेतना' ने इस बार हेलन को गलती से अपनी मां समझा। लेडी एमिली ने रोज़ाना की घटनाओं का ज़िक्र करते हुए श्रीमती बेसेंट को पत्र लिखे। एक जगह उन्होंने लिखा—'उछलते-कूदते हुए इतनी मस्ती, शान और स्फूर्ति के साथ पहाड़ियों से नीचे उतरते हुए उसे देखकर इस बात पर विश्वास कर पाना बेहद मुश्किल हो रहा था कि हर रात को उसके शरीर को कितना कुछ झेलना पड़ता है।' एक शाम की यंत्रणा सहने के बाद वह चीख पड़ा—'ऐसी बुरी हालत पहले कभी नहीं रही।' नित्या ने बाद में लिखा—'अर्वाल्ड के अंतिम दिनों में उन्होंने एक प्रयोग करने की कोशिश की, खासे तेज़ दर्द के बीच कृष्णा को चेतन अवस्था में छोड़ देने का प्रयोग, लेकिन यह चेतन अवस्था एक बार में केवल 10 या 20 सेकंड तक रहती थी और जब दर्द बहुत ही तीव्र हो जाता था तो कृष्णा देह को छोड़ देता था।'

20 सितंबर की शाम को कृष्णा नित्या के लिए एक संदेश लेकर आया जिसे नित्या ने लिख लिया। ऐसा माना जाता है कि यह संदेश मास्टर कुथुमी ने भेजा था :

> नित्या, सुनो! अभी यहां यह खत्म हो रहा है। यह अंतिम रात्रि है पर यह ओहाय में जारी रहेगा। लेकिन यह सब तुम पर निर्भर करता है। तुम दोनों के पास अधिक ऊर्जा होनी चाहिए। अगले महीने जो तुम करोगे उस पर सफलता निर्भर करेगी। कोई भी रुकावट न आने पाए। यहां यह सफल रहा। लेकिन ओहाय में सब कुछ तुम पर निर्भर करेगा। अगर तुम तैयार रहते हो तो वहां यह और भी अधिक प्रबलता से जारी रहेगा।
>
> जब तुम यह स्थान छोड़ो तो तुम्हें अत्यधिक सावधान रहना होगा। यह अभी-अभी सांचे से निकले फूलदान की तरह है और कोई भी हल्का सा झटका इसे चटखा सकता है। उसका अर्थ होगा इसे फिर से ठीक करना और फिर से बनाना और यह बहुत अधिक समय लेगा। यदि तुम नाकामयाब होते हो तो इसका मतलब होगा सब कुछ फिर से आरंभ करना।

यह संदेश इस लिहाज़ से ख़ास तौर पर दिलचस्प है कि इसकी शैली न तो कृष्णा की और न ही नित्या की शैली से मिलती है।

अर्वाल्ड छोड़ने के बाद मंडली के ज़्यादातर लोग कासल अर्ड में बैरन वान पैलेंड के

साथ ठहरने हॉलैंड चले गए। इस संपत्ति को बैरन कृष्णा को सौंप रहे थे। निजी घर की तरह इसका आखिरी बार इस्तेमाल हो रहा था। एक ट्रस्ट बना, और कृष्णा को उसका अध्यक्ष बनाया गया और इस तरह अर्ड ऑर्डर ऑव द स्टार इन द ईस्ट का अंतरराष्ट्रीय मुख्यालय बन गया।

इस विश्वास के साथ कि 'प्रॉसेस' ओहाय में जारी रहेगा, नित्या ने महसूस किया कि एक दीक्षा-प्राप्त व्यक्ति का साथ होना ज़रूरी है। राजगोपाल ने (जो कि इंग्लैंड आने से पहले दीक्षित हो चुका था) केम्ब्रिज से एक साल की छुट्टी ले ली, जिससे कि वह उनके साथ जा सके। वे लोग 'आर्य विहार' में रहने गए, जबकि रोज़ालिंड अपनी मां के साथ पाइन कॉटेज में रही। (हेलन को अपने घर न्यूयॉर्क जाना पड़ा।)

वहां पहुंचते ही 'प्रॉसेस' शुरू तो हो गया, पर इस बार यह इतना पीड़ादायी था कि नित्या पहली बार चिंता में पड़ गया और उसने लेडबीटर को घबराकर लिखा और पूछा कि सब कुछ ठीक-ठाक तो है। इस बार कृष्णा को स्वयं ही पीड़ा सहन करने को तैयार किया जा रहा था और यह अधिकाधिक तीव्र होती जा रही थी। नित्या ने लेडबीटर को बताया, "इन दिनों हेलन उसके साथ नहीं है। हालांकि रोज़ालिंड बिलकुल पास ही रह रही है, पर ऐसा लगता है कि कृष्णा उसे अपने पास नहीं चाहता है। दर्द खत्म होने के बाद कृष्णा देह को छोड़ देता है और देह थकान के मारे दिल दहला देने वाले ढंग से रोती-बिलखती है। वह अपनी मां को बुलाता है और मैंने यह पाया है कि वह अपने पास हेलन को चाहता है न कि रोज़ालिंड को। कृष्णा की देह कभी-कभी जो कुछ बोलती है उसे जहां तक मैं समझ पाया हूँ वह यही है कि अभी भी देह पर बहुत सारा काम किया जाना बाकी है—शायद इसमें महीनों लग सकते हैं।"

26 नवंबर को कृष्णा की देह एक संदेश लेकर आयी जिसे नित्या ने लेडबीटर को लिखे इस पत्र में जोड़ दिया : "अब जो काम हो रहा है वह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है और अत्यंत नाज़ुक। विश्व में यह प्रयोग पहली बार किया जा रहा है। किसी भी दूसरे काम पर इस काम को तरजीह दी जाए, और किसी भी व्यक्ति की सुविधा का ख़याल न रखा जाए, यहां तक कि कृष्णा की भी।"

यह हैरानी की बात है कि लेडबीटर ने स्वयं जाकर इस विचित्र घटना का प्रत्यक्षदर्शी नहीं बनना चाहा। उन्होंने केवल श्रीमती बेसेंट को यह लिखा, "इस पूरे प्रकरण को लेकर बहुत परेशान हूँ...स्वयं मुझे जो सिखाया गया है उससे यह बिलकुल विपरीत है। मैं आशा करता हूँ कि आप मुझे आश्वस्त कर सकेंगी कि सब कुछ ठीक-ठाक है।" हालांकि श्रीमती बेसेंट ने अब तक अपनी गुह्य शक्तियों को एक ओर रख दिया था, फिर भी ऐसा लगता है कि वह लेडबीटर को आश्वस्त कर सकीं, और तभी से लेडबीटर ने कृष्णा की सारी ज़िम्मेदारी उनको सौंप दी। नित्या को उन्होंने लिखा—"हमारे प्यारे कृष्णा के साथ जो भयावह नाटक चल रहा है, उसे मैं नहीं समझ पा रहा हूँ।"

दो महीनों तक 'प्रॉसेस' के चलने के बाद 1924 के प्रारंभ में कृष्णा ने लेडी एमिली को लिखा :

> मैं चिड़चिड़ा होता जा रहा हूँ, जल्दी-जल्दी थकने लगा हूँ। काश, आप और दूसरे लोग यहां होते! अब तो कितनी ही बार मेरा रोने को मन करता है। और ऐसा तो मैं कभी नहीं रहा। यह विलक्षण है, दूसरों के लिए और मेरे लिए भी... मेरी इच्छा है कि हेलन यहां होती पर यह असंभव है और शायद 'वे' लोग भी नहीं चाहते कि कोई मेरी मदद के लिए आए। इसलिए सब कुछ मुझे अपने-आप ही करना पड़ रहा है...कितनी भी कोशिश कर लूं पर अकेलापन रहता ही है, उस निर्जन स्थान में अकेले खड़े देवदार की तरह... पिछले दस दिन सच में बड़े कठिन रहे, मेरी रीढ़ और गर्दन बहुत मज़बूत होते जा रहे हैं। और एक दिन पहले की संध्या तो सचमुच ही अद्भुत थी। यह जो भी हो, इसे उद्गम या जो कुछ भी कहें मेरी रीढ़ से होता हुआ गर्दन तक आया। फिर यह दो हिस्सों में बंटा, एक हिस्सा सिर के दाहिनी ओर गया और दूसरा हिस्सा बायीं ओर, और घूमकर दोनों हिस्से आंखों के बीच और ठीक नाक के ऊपर जाकर मिल गए। और मुझे 'लॉर्ड' और 'मास्टर' के दर्शन हुए। यह एक ज़बरदस्त रात थी, हालांकि सारा कुछ अत्यधिक पीड़ाप्रद था...मुझे उम्मीद है कि हम लोग जल्द ही छुट्टी पर जाएंगे।

कृष्णा ने इस अनुभव का ज़िक्र श्रीमती बेसेंट से भी किया, और नित्या ने भी उन्हें इसका विवरण दिया। नित्या ने इसका अर्थ तीसरी आंख के खुलने से लगाया। योग के ग्रंथों में शिव की आंख के रूप में तीसरी आंख का वर्णन अक्सर मिलता है। यह मस्तक के मध्य में होती है, और कुंडलिनी की भांति इसका संबंध अतींद्रिय दृष्टि से होता है। नित्या ने लिखा—"कृष्णा की अतींद्रिय क्षमता अभी शुरू नहीं हुई है, पर मेरा अनुमान है कि अब यह केवल कुछ ही समय की बात है। जबसे हम यहां आए हैं 'प्रॉसेस' की 110 रातें गुज़र चुकी हैं।"

कृष्णा की जांच के लिए लेडबीटर ने सिडनी से डॉ. रॉक को भेजा। मार्च के अंत में वह ओहाय पहुंचीं और दो सप्ताह तक 'प्रॉसेस' का ध्यान से अवलोकन किया। कृष्णा ने लेडी एमिली को लिखा—"इस सबको लेकर वे बुरी तरह हैरान थीं कि हम कहीं पूरी तरह विक्षिप्त तो नहीं हैं।" 11 अप्रैल को डॉ. रॉक अभी भी वहां थीं; "हम सबके लिए वह गज़ब की रात थी", जैसा कि नित्या ने श्रीमती बेसेंट को बताया जब कृष्णा यह संदेश लाया था; नित्या का विश्वास था कि इसका पहला हिस्सा स्वयं लॉर्ड मैत्रेय की तरफ से था :

> मेरे पुत्रो, मैं तुम्हारी सहनशक्ति और साहस से प्रसन्न हूँ। यह एक लंबा संघर्ष रहा और जहां तक 'हम' गये हैं वहां तक अच्छी कामयाबी रही है। हालांकि बहुत-सी कठिनाइयां आयीं पर हमने अपेक्षाकृत सरलता के साथ उन पर विजय पा ली... तुम इसमें से सफलतापूर्वक निकल आए हो, हालांकि संपूर्ण तैयारी अभी खत्म नहीं हुई है... 'हमें' खेद है इस लंबी तकलीफ के लिए, जो तुम्हें अवश्य ही अंतहीन प्रतीत हुई होगी; लेकिन एक महान गौरव तुममें से हरएक की प्रतीक्षा में है...मेरा आशीर्वाद तुम लोगों के साथ है।

हालांकि हम किसी बाद की तारीख से आरंभ करेंगे, फिर भी मैं नहीं चाहता हूँ कि बैसाख खत्म होने तक (मई महीने की पूर्णिमा का गूढ़ तांत्रिक महोत्सव, जो उस साल 18 मई को पड़ा था) जब तुम्हें मेरे दर्शन होंगे, तुम यूरोप के लिए निकलो, हालांकि तुम्हारी देह के तीन स्थानों को हमने सुरक्षित कर दिया है फिर भी दर्द तो होगा। यह एक शल्यक्रिया की तरह है; हालांकि यह पूरी हो तो जाएगी, फिर भी तुम्हें इसका असर बाद में भी महसूस होता रहेगा।

दुर्भाग्य से हमारे पास 'प्रॉसेस' के संबंध में डॉ. रॉक की कोई टिप्पणी उपलब्ध नहीं है।

दोनों भाई और राजगोपाल, न्यूयॉर्क से हेलन को साथ लेते हुए 15 जून को इंग्लैंड पहुंचे। श्रीमती बेसेंट भी इंग्लैंड में थीं। उनकी अंतहीन व्यस्तता में दोनों भाई फंस गए। व्यस्तता तब जाकर खत्म हुई जब हॉलैंड के आन्हेम में थियोसोफी और स्टार का एक कन्वेंशन और फिर ओमन का पहला कैम्प हो गया। यह कैम्प कासल अर्ड से एक मील की दूरी पर बैरन द्वारा दी गयी भूमि के एक हिस्से पर हुआ था। युद्ध से पहले तक हर साल यहां कैम्प लगता रहा।

इसके बाद जाकर कृष्णा अंततः मुक्त हुआ, अपनी चिरप्रतीक्षित 'पारिवारिक' छुट्टियां मनाने के लिए। उस साल जिस जगह का चुनाव किया गया वह ग्यारहवीं सदी का एक किलेनुमा होटल था जो डोलोमाइटस के पर्जिन नाम के गांव में एक ऊंची पहाड़ी पर बना था। अपनी मित्र-मंडली के साथ कृष्णा यहां 18 अगस्त को पहुंचा। मंडली के सारे सदस्य वही थे जो पिछले साल थे, केवल मार डी मेंज़िअर्ली को छोड़कर; साथ में एक इटैलियन महिला और कुछ भारतीय मित्र और जुड़ गए थे। हमने परकोटों की दो मीनारों पर कब्जा कर लिया और साथ में कुछ कमरे भी ले लिये। खाना हम विशाल डायनिंग हॉल के एक हिस्से में खाते थे जिसे बाकी मेहमानों वाले हिस्से से अलग कर दिया गया था; हमारा खुद का एक ऑस्ट्रियन खानसामा भी था। ठीक किले के नीचे एक सपाट मैदान था, अर्वाल्ड की तरह, जहां हम राउंडर्स खेला करते थे। लेकिन कृष्णा को एक हफ्ता भी नहीं मिल पाया कि 'प्रॉसेस' फिर शुरू हो गया। यह पहले से भी अधिक यंत्रणाकारी था, जिसकी संभावना ओहाय के अनुभव के बाद कम लगती थी। हालांकि अब हेलन मदद के लिए वहां थी।

गोल मीनार में एक छत के नीचे कृष्णा के साथ नित्या, लेडी एमिली, हेलन और राजगोपाल टिके हुए थे। जब 'प्रॉसेस' शुरू हो गया तो वे लोग रात के खाने के लिए हमारे साथ होटल में नहीं आते थे। हम बाकी बचे हुए लोगों को ऐसा जान पड़ता था कि हर शाम को कुछ हो रहा है—कुछ ऐसा कि लॉर्ड मैत्रेय के निवास के लिए कृष्णा की देह को तैयार किया जा रहा था। मुझे अगले साल ही 'प्रॉसेस' के बारे में बताया गया, तथा कृष्णा और नित्या के ओहाय अनुभवों के विवरण पढ़कर सुनाए गए।

उस साल की छुट्टियां एक निश्चित उद्देश्य के तहत थीं। यह तय किया गया था कि चार लड़कियां—हेलन, रूथ, बेट्टी और मैं कृष्णा के आग्रह के अनुसार सिडनी जाएंगी

जिससे कि उन्हें लेडबीटर द्वारा शिष्यत्व के पथ पर लाया जा सके (रोज़ालिंड वहां जून में ही जा चुकी थी जब दोनों भाई ओहाय छोड़ रहे थे)। गर्मियों में श्रीमती बेसेंट के साथ कृष्णा जहां भी सार्वजनिक वार्ताएं देने गया वहां उसने इस बात पर ज़ोर दिया कि शिष्यत्व के पथ पर चलने के लिए यह ज़रूरी है कि जोखिम उठाया जाए, ख़तरों से खेला जाए, इतना शक्तिशाली महसूस किया जाए कि हम सीमा से बाहर अज्ञात में छलांग लगा सकें और अपने को मूलभूत रूप से बदल सकें। अब पर्जिन में लेडी एमिली के सुझाव पर उसने इसी शैली में वहां इकट्ठी मंडली को संबोधित करना शुरू किया। सुबह राउंडर खेलने के बाद वह एक सेब के पेड़ के नीचे बैठ जाता और हमें कुछ वांछित गुणों की तरफ बढ़ाने का प्रयास करता। उसने लड़कियों को बताया कि शादी और घर बसाने की चाहत तो मानवीय स्वभाव है लेकिन ऐसा मुमकिन नहीं है कि उन्हें यह सब भी मिल जाए और वे 'लॉर्ड' के आगमन पर उनकी सेवा भी कर पाएं। और यदि वे दोहरी ज़िंदगी जीने की कोशिश करेंगी तो वे महज़ बुर्जुआ बनकर रह जाएंगी और एक औसत-दर्जे की ज़िंदगी से बुरा क्या हो सकता है। इसके बावजूद उन्हें कठोर नहीं होना है। प्रेम और प्रफुल्लित आनंद के साथ बढ़ना ही विकास का एकमात्र मार्ग है। पूर्ण मानसिक और कायिक विशुद्धता भी परम आवश्यक है।

ऊर्जा से भरी हम चार जवान लड़कियों को—जिनमें से मैं सबसे छोटी थी, सिर्फ सोलह साल की—यह बताया जा रहा था कि मठ में न रहते हुए भी हम साध्वियों का जीवन जिएं। हालांकि विवाह और सेक्स को लेकर कृष्णा का रवैया कुछ सालों बाद बदलने वाला था। 1922 में जब उसे यह पता चला था कि मार डी मेंज़िअर्ली की मंगनी हो चुकी है और शादी होने वाली है तो उसने यहां तक कह दिया था कि इससे अच्छा होता कि वह आत्महत्या कर लेती। (अर्वाल्ड जाने से पहले उनकी सगाई टूट चुकी थी।) पर्जिन में हम सबके साथ वह बहुत कठोरता से पेश आता था और अक्सर कटु सत्यों को बताकर हमें रुला देता था। उसने हमें बुरी तरह गूंगा, प्रतिक्रियाविहीन पाया। लेडी एमिली को उसने बताया कि हम लोगों से बात करना ढेर सारे स्पंजों से बात करने जैसा है जो सब कुछ बस सोख लेते हैं। वह चाहता कि हमें और भी 'आहत' कर सके। "तुम लोग अंधेरे कमरे में बैठे उन लोगों की तरह हो जो इस बात का इंतज़ार कर रहे हैं कि कोई आए और तुम्हारे लिए बत्ती जला दे, बजाय इसके कि तुम खुद टटोलते हुए जाओ और बत्ती जला लो।"[19] तो भी, उसकी कठोरता और रुखाई के बावजूद हमने अपने प्रति उसके भव्य प्रेम को महसूस किया; हमने उसकी इस चाहत को महसूस किया कि हम सुंदर मानव के रूप में बड़े हों और कहीं 'औसत दर्जे' के मनुष्य बनकर न रह जाएं।

24 सितंबर को 'प्रॉसेस' थमा और कृष्णा, जैसा कि उसका विश्वास था, लॉर्ड मैत्रेय का एक संदेश लेकर आया :

> मेरी सेवा करना सीखो, क्योंकि केवल 'पथ' पर ही तुम मुझे पा सकोगे। स्वयं को विस्मृत कर दो, क्योंकि केवल तभी मुझे पाया जा सकता है। महान आत्माओं की तलाश मत करो जबकि वे तुम्हारे बहुत पास हो सकती हैं।

तुम उस अंधे व्यक्ति की तरह हो जो धूप की खोज कर रहा है।
तुम उस भूखे व्यक्ति की तरह हो जिसे भोजन दिया गया है पर वह खा नहीं रहा।
जिस आनंद की तुम तलाश में हो वह दूर नहीं है—वह हर जगह, हर कंकड़-पत्थर में मौजूद है।
यदि तुम केवल देख सको तो मैं वहां मौजूद हूँ।
मैं मददगार हूँ यदि तुम मुझे मदद करने देते हो।

इस संदेश की पंक्तियां बाकी संदेशों से काफी अलग हैं और ये उन कविताओं के अंदाज़ में हैं जिन्हें कृष्णा ने जल्द ही लिखना शुरू कर दिया था।

7

एक पुराना स्वप्न खत्म हुआ

लेडी एमिली के पति ने जब सिडनी की योजना के बारे में सुना तो उन्होंने कड़ी आपत्ति की। लेकिन जब मिस डॉज ने लेडी एमिली और चारों लड़कियों का किराया देने का प्रस्ताव रखा तो उनके पास शादी टूटने का जोखिम उठाए बिना उसे रोकने का कोई तरीका नहीं था। कृष्णा को उनके विरोध का पता था या नहीं, यह निश्चित तौर पर नहीं कहा जा सकता। हालांकि कृष्णा भावी शिष्यों के विवाह के खिलाफ था, लेकिन वह किसी का घर तोड़ने वालों में से नहीं था।

कृष्णा, नित्या, लेडी एमिली और चारों लड़कियां 2 नवंबर को वेनिस से बंबई के लिए चले। (अपने अंतिम वर्ष को पूरा करने के लिए राजगोपाल केम्ब्रिज लौट आया था।) समुद्री सफर के आख़िरी दिन नित्या को अचानक खांसने के साथ खून आया। अपने अत्यंत प्रिय भाई को लेकर आगे के बारह महीने कृष्णा के लिए अत्यधिक चिंता से भरे रहे।

भारत में हमें पहले अड्यार और फिर दिल्ली में रुकना था। इसके बाद अगले साल सिडनी जाना था। अड्यार पहुंचने के तुरंत बाद कृष्णा का 'प्रॉसेस' फिर शुरू हो गया। इस बार भी मदद के लिए हेलन वहां नहीं थीं, रूथ के साथ वह सीधे सिडनी निकल गई थीं। मैडम डी मेंज़िअर्ली, मार और यो वहां पहले से थीं। नित्या से भी उसे कोई मदद नहीं मिल सकती थी क्योंकि वह खुद बहुत बीमार था और मैडम डी मेंज़िअर्ली के साथ ऊटी चला गया था। श्रीमती बेसेंट दिल्ली में थीं, कृष्णा ने जनवरी में अड्यार से उन्हें लिखा : "मैं सोचता हूँ किसी दिन यह सब रुक जाएगा। लेकिन अभी यह कुछ ज़्यादा भयावह है। मैं और कोई काम करने के काबिल नहीं हूँ। सारा दिन और सारी रात यह चलता रहता है।" लेकिन यह पहले जितना तीव्र नहीं था। इसे लिखने के कुछ समय पहले ही कृष्णा अपने जन्मस्थान मदनपल्ली होकर आया था। उसकी एक विश्वविद्यालय बनाने की ख्वाहिश थी जिसके लिए वह जगह तलाशने गया था। कस्बे से करीब दस मील की दूरी पर थिट्टू घाटी में उसने एक सुंदर सी जगह खोज निकाली; समुद्र की सतह से यह 2,500 फुट की ऊंचाई पर थी। यहां पर 300 एकड़ ज़मीन खरीदने के लिए एक ट्रस्ट की स्थापना वह अगले साल कर पाया। ऋषि कोंडा नाम की पहाड़ियों से घिरी उस जगह का

नाम बदलकर उसने 'ऋषि वैली' रखा और वहां एक विद्यालय की स्थापना की, न कि विश्वविद्यालय की। जिन आठ विद्यालयों की कृष्णा ने स्थापना की उनमें से यह पहला था।

सिडनी के थियोसोफिकल कन्वेंशन में भाग लेने के लिए दोनों भाई आमंत्रित थे, जो कि अप्रैल में होने वाला था। दोनों भाई लट्यंस परिवार के साथ वहां के लिए निकल गए। राजा भी साथ में था, नित्या की देखभाल में मदद के लिए। नित्या अब भी बहुत बीमार था। सिडनी में एक विशेषज्ञ ने राय दी कि इस बीमारी से निकलने के लिए उसे अपनी सारी शक्ति की ज़रूरत पड़ेगी और उसे तुरंत शहर छोड़ देना चाहिए। इसलिए वह ब्लू माउंटेंस में स्थित लेउरा नाम की जगह पर चला गया। वहां उसके लिए एक बड़ी लॉग केबिन ली गई। रोज़ालिंड सिडनी में ही थी, वह उसकी नर्स बनकर उसके साथ गयी और साथ ही एक विवाहित संरक्षिका भी गयी। कृष्णा ने अपना वक्त लेउरा और सिडनी के बीच बांट लिया। हालांकि लड़कियों को सिडनी पहुंचाने के लिए उसने वह सब कुछ किया जो वह कर सकता था, लेकिन एक बात साफ थी कि वहां के चर्च का वातावरण उसे घृणास्पद लगा और लेडबीटर ने उसका हृदय से स्वागत नहीं किया क्योंकि उनकी दृष्टि में उसका असर विघटनकारी था। मॉस्मन के उपनगर में स्थित 'द मैनर' के अन्य सदस्यों के साथ जब हम भीड़-भरे कमरे में बैठकर ध्यान का प्रयास करते, तो वह हमें व्यंग्य भरी मुस्कान और कनखियों से खिड़की में से देखता।[20] जिस तरह लेडबीटर पथ का प्रचार कर रहे थे और हर कोई उस पर आगे बढ़ने के लिए उत्तेजित था, उससे उनमें ईर्ष्या और दंभ पैदा हो रहे थे। यह सब देखकर कृष्णा बुरी तरह परेशान था। 'द मैनर' में कृष्णा की तुलना में वहां हर कोई फूहड़ और दूसरे दर्जे का लगता था। लेडबीटर से उसने 'प्रॉसेस' के बारे में बात करने की कोशिश की, लेकिन उनके पास कहने को कुछ ख़ास नहीं था; उनके अनुभवों से यह परे की चीज़ थी, और उनके हिसाब से निश्चय ही दीक्षा के लिए यह कोई आवश्यक चीज़ नहीं थी।

आस्ट्रेलिया के अनेक हिस्सों में ज़मीन के टुकड़े कृष्णा के कार्य के लिए अर्पित किये गए। 'द मैनर' के पास बालमोरल के बन्दरगाह के किनारे की भव्य जगह पर सफेद पत्थर का एक बड़ा-सा खुला रंगमंच (एम्फीथिएटर) बनाया गया। ऐसी उम्मीद की गई थी कि जब 'लॉर्ड' का आगमन होगा तो वे यहां से बोलेंगे। कृष्णा के अनुरोध पर ये सभी जगहें अलग-अलग ट्रस्ट संभाल रहे थे।

जून आने तक डॉक्टर ने नित्या को इस लायक मान लिया कि वह यात्रा कर सकता था। 24 जून को जब दोनों भाई सैन फ्रैंसिस्को के लिए रवाना हुए (साथ में रोज़ालिंड और एक स्वीडिश थियोसोफिस्ट डॉक्टर भी था) तो मुझे लगा कि हमेशा के लिए मेरी ज़िंदगी से रोशनी चली गई। मेरी मां पहले ही इंग्लैंड वापस जा चुकी थी। ऐसा मान लिया गया था कि उन्होंने अपनी पहली दीक्षा पार कर ली थी। 'द मैनर' में अब हेलन, रूथ, बेट्टी और मैं ही रह गए थे।

नित्या बहुत कमज़ोर होता जा रहा था, हमेशा एक डर बना हुआ था। यात्रा के अंतिम

दिनों में कृष्णा ने श्रीमती बेसेंट को लिखा : "हम सुरक्षित निकल आएंगे, नित्या फिर से ठीक हो जाएगा। यह अत्यधिक चिंताजनक समय रहा और अब भी है। लेकिन मेरी अपनी प्यारी मां, आप और मास्टर तो हैं न।" ओहाय में दो हफ्ते तक रोज़ाना एब्रेम्स के इलाज के बाद नित्या की हालत में सुधार आ गया। लेकिन यह बस कुछ दिनों के लिए रहा, आगे के तीन महीनों तक कृष्णा की सारी ऊर्जा नित्या की देखभाल में लग गई। वह इतना बीमार हो गया था कि बिस्तर से बाहर निकलना भी उसके लिए मुमकिन नहीं था। कृष्णा हताश हो गया होता अगर श्रीमती बेसेंट और लेडबीटर दोनों ने उसे यह विश्वास नहीं दिलाया होता कि मास्टर नित्या को मरने नहीं देंगे, क्योंकि उसकी ज़िंदगी बहुत कीमती है।

इस बीच श्रीमती बेसेंट शिवा राव के साथ क्वींस हॉल में व्याख्यान देने के लिए इंग्लैड चली गई थीं। जॉर्ज अरुंडेल भी अपनी पत्नी रुक्मिणी देवी के साथ विश्व-व्याख्यान के दौरे पर थे और ह्यूज़ेन (हॉलैंड) की थियोसोफिकल कम्यूनिटी में रुके हुए थे। यह जगह कासल अर्ड से ज्यादा दूर नहीं थी और इसे लिबरल कैथलिक चर्च के एक थियोसोफिकल पादरी जेम्स इंगॉल वेजवुड संचालित कर रहे थे। नॉर्वे का एक नौजवान ऑस्कर कोलरस्ट्रॉम भी वहां टिका हुआ था। सिडनी में वह लेडबीटर का शिष्य रह चुका था तथा लिबरल कैथलिक चर्च में पुरोहित था। अरुंडेल ने लंदन में श्रीमती बेसेंट को यह बताने के लिए टेलीग्राम किया कि कुछ चमत्कारिक चीज़ें घट रही हैं, ऑस्कर ने अभी अपनी तीसरी दीक्षा ली है, वेजवुड ने दूसरी और रुक्मिणी ने पहली; वेजवुड और रुक्मिणी की कुंडलिनियों को अभी जाग्रत किया गया है। (अरुंडेल पहले से ही दूसरी दीक्षा में थे। उन्होंने और ऑस्कर दोनों ने अपने पास अतींद्रिय दृष्टि होने का दावा किया था।) एक दूसरा उत्तेजनापूर्ण टेलीग्राम मिलने पर श्रीमती बेसेंट ने क्वींस हॉल के व्याख्यान रद्द कर दिए और ह्यूज़ेन चली आईं। उनके साथ ईस्थर ब्राइट, लेडी एमिली, शिवा राव और राजगोपाल भी आए।

श्रीमती बेसेंट के पहुंचने के दो दिन बाद 26 जुलाई को अरुंडेल पुरोहित बना दिये गए; मिस ब्राइट, लेडी एमिली और राजगोपाल दूसरी दीक्षा में प्रवेश कर गए; एक अगस्त की रात को अरुंडेल और वेजवुड ने तीसरी दीक्षा प्राप्त कर ली और रुक्मिणी ने दूसरी। 4 अगस्त को अरुंडेल पादरी के रूप में प्रतिष्ठित कर दिये गए। इसके लिए लेडबीटर की स्वीकृति तार से मांगी गई और जब कोई जवाब नहीं आया तो अरुंडेल ने निश्चयपूर्वक कहा कि उन्हें सूक्ष्म धरातल पर लेडबीटर की 'हार्दिक स्वीकृति' प्राप्त हो गई है। जब वे लोग समारोह से वापस आए तो श्रीमती बेसेंट को लेडबीटर का इस आशय का तार मिला कि उन्हें इस कदम पर सख्त एतराज़ है। ह्यूज़ेन की किसी भी घटना की पुष्टि लेडबीटर ने नहीं की।

अरुंडेल ने मास्टर के निर्देशों को लाना जारी रखा : कोई भी दीक्षा प्राप्त व्यक्ति किसी अदीक्षित के साथ कमरा साझा नहीं कर सकता; सभी लिबरल कैथलिक पुरोहितों को सिल्क के अन्तःवस्त्र पहनने हैं (लेडी एमिली ने नोट किया कि यह उन बेचारों के लिए

बड़ा ही कठिन था); चोगे का चुनाव सावधानीपूर्वक करना है, लेकिन हैट नहीं पहनना है (पहली बार मिस डॉज सोच में पड़ गईं जब उनसे पादरियों के लिए शानदार परिधान खरीदने के लिए कहा गया); श्रीमती बेसेंट, वेजवुड, और अरुंडेल दंपति को किसी भी रूप में अंडे का सेवन नहीं करना है। (लेडी एमिली के अनुसार इस निर्देश के प्रति केवल श्रीमती बेसेंट निष्ठावान रह सकीं और इसका नतीजा यह हुआ कि इसके बाद उन्हें हमेशा आधे-पेट रहना पड़ा।)

अरुंडेल के अनुसार 7 अगस्त की रात को कृष्णा (ओहाय में), राजा (भारत में), अरुंडेल और वेजवुड ने चौथी यानी अर्हत की दीक्षा प्राप्त कर ली थी। और इसके दो रात्रि बाद अरुंडेल दस लोगों के नाम लेकर आए जो उनके अनुसार 'लॉर्ड' के बारह धर्मप्रवर्तक शिष्यों में होंगे। ये नाम थे : श्रीमती बेसेंट, लेडबीटर, राजा, अरुंडेल, वेजवुड, रुक्मिणी, नित्या, लेडी एमिली, राजगोपाल और ऑस्कर कोलरस्ट्रॉम। कृष्णा का परामर्श इस बारे में नहीं लिया गया था और यह मान लिया गया था कि सूक्ष्म धरातल पर उसे इस सबकी जानकारी होगी।

हेरल्ड के जून अंक में अरुंडेल ने यह घोषणा कर दी थी कि नित्या की बीमारी के कारण कृष्णा उस साल के ओमन कैम्प में भाग नहीं ले सकेंगे। लेकिन श्रीमती बेसेंट और स्वयं वह वहां रहेंगे और ऐसी उम्मीद की गयी थी कि हर कोई इसमें भाग लेना अपना विशिष्ट कर्तव्य समझेगा। सिर्फ कुछ एक लोगों ने अपने नाम वापस लिये। 10 अगस्त को ह्यूज़ेन मंडली ओमन आ गई और दोपहर में कैम्प और कांग्रेस का उद्घाटन हो गया (श्रीमती बेसेंट कासल में ठहरीं)। अगले दिन अपनी वार्ता में श्रीमती बेसेंट ने सार्वजनिक घोषणा की, कि 'लॉर्ड' ने अपने धर्मप्रचारक शिष्यों का चुनाव कर लिया है, लेकिन उन्हें उनमें से केवल सात नाम बताने की अनुमति है जो कि अर्हत बन चुके हैं : वह स्वयं, लेडबीटर, राजा, अरुंडेल, कृष्णा, ऑस्कर कोलरस्ट्रॉम और रुक्मिणी, जो कि कुछ ही दिनों में अर्हत होने वाली थीं, ऐसा उसे विश्वास दिलाया गया था।[21] बाद में याद दिलाने पर श्रीमती बेसेंट को पता चला कि उन्होंने वेजवुड का नाम छोड़ दिया था और कृष्णा को स्वयं उसका एक धर्मप्रचारक शिष्य कह दिया था। 14 अगस्त की अगली वार्ता में उन्होंने इन भूलों को सुधार दिया। उसी दिन कैम्प समाप्त हो गया और ह्यूज़ेन मंडली वहां से वापस हो ली। अरुंडेल उत्तेजित हो यह कहते रहे, "मुझे पता है कुछ और घटित हुआ है पर वह असंभव लगता है।" अगली सुबह श्रीमती बेसेंट ने ईस्थर ब्राइट, लेडी एमिली, रुक्मणी और शिवा राव को अपने कमरे में बुलाया और कुछ संकोच के साथ बताया कि उन्होंने, लेडबीटर, कृष्णा, राजा, अरुंडेल, वेजवुड और ऑस्कर के साथ पाँचवीं और अंतिम दीक्षा 13 अगस्त की रात को प्राप्त कर ली है, लेकिन इस वजह से इन सबके प्रति व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं किया जाना है।

ह्यूज़ेन के बेहद उत्तेजनापूर्ण माहौल से लेडी एमिली सम्मोहित हो गईं और उन्होंने बड़े उत्साह के साथ इसके बारे में कृष्णा को लिखा। कृष्णा ने फिर तार भेजकर उनसे पूछा कि लेडबीटर ने इन घटनाओं की पुष्टि की है या नहीं। उन्होंने जवाब में तार दिया कि

स्वयं श्रीमती बेसेंट ये घोषणाएं कर रही थीं, साथ में उन्होंने यह भी लिखा कि ‘उनके प्रति अपना विश्वास रखो।’ जब लेडी एमिली लंदन लौटीं तो उन्हें कृष्णा की तरफ से एक बहुत-ही दुखद पत्र मिला, संदेहों से भरा हुआ। उसके अनुरोध पर उन्होंने उस काल के उसके सारे पत्र नष्ट कर दिये; उसे यह डर था कि ये पत्र किसी और के हाथ में पड़ सकते हैं और श्रीमती बेसेंट को इससे आघात पहुंच सकता है जो कि इस समय उससे उन सारी बातों की पुष्टि का अनुरोध कर रही थीं जिन्हें अरुंडेल लेकर आया था। उन्हें आघात न पहुंचाने की दृष्टि से उसने केवल इतना जवाब दिया कि नित्या की देखभाल में वह इतना व्यस्त था कि उसे इस सबका कुछ होश ही नहीं रहा। इससे पहले वह पूछ चुका था कि राजगोपाल को नित्या की देखभाल में मदद के लिए ओहाय भेजा जा सकता है या नहीं। इस अनुरोध को स्वीकार कर लिया गया और कैम्प शुरू होने से पहले राजगोपाल अमेरिका के लिए निकल गया।

श्रीमती बेसेंट की बड़ी इच्छा थी कि कृष्णा जाड़े में उनके साथ अड्यार चले, थियोसॉफिकल सोसाइटी की पचासवीं वर्षगांठ मनाने के लिए। नित्या को वह बिल्कुल नहीं छोड़ना चाहता था, लेकिन अक्टूबर के अंत में जब नित्या की हालत कुछ सुधरती हुई दिखी और मैडम डी मेंज़िलर्जी ने उसकी देखभाल के लिए ओहाय आने की पेशकश की, तब जाकर कृष्णा बड़ी अनिच्छा से रोज़ालिंड और राजगोपाल के साथ श्रीमती बेसेंट से मिलने इंग्लैंड आया, बस उनकी खुशी के लिए। जैसे ही वह पहुंचा लेडी एमिली की उससे लंबी बात हुई। ह्यूज़ेन और ओमन की घटनाओं को लेकर उन्होंने उसे बेहद नाखुश पाया। एक ऐसी वस्तु को सार्वजनिक तौर पर कुरूप, भद्दा और हास्यास्पद बना दिया गया था जो उसके लिए अत्यंत सुंदर, निजी और पवित्र थी। लेडी एमिली ने उससे पूछा कि वह श्रीमती बेसेंट को वह सब क्यों नहीं बता देता जो वह महसूस कर रहा है। उसने कहा कि इसका क्या फायदा होगा, वह यही कहेंगी कि काली शक्तियों ने उसे अपने वश में कर लिया है। इसके बावजूद उसने कई बार श्रीमती बेसेंट से बात करने की कोशिश की लेकिन उन्होंने इसमें दिलचस्पी नहीं दिखाई। लेडी एमिली को यह महसूस हुआ कि अरुंडेल ने श्रीमती बेसेंट को सम्मोहन में ले लिया था और वह स्वयं भी भोलेपन में बहक गई थीं।

8 नवंबर को नेपल्स से कोलंबो के लिए निकली पार्टी में ये लोग शामिल थे : श्रीमती बेसेंट, कृष्णा, लेडी एमिली, रोज़ालिंड, राजगोपाल, शिवा राव, वेजवुड, अरुंडेल और रुक्मणी। लाल लंबे चोगे पहने हुए नेपल्स में घूम रहे दो पादरियों ने कृष्णा से कहा कि नित्या की ज़िंदगी बच जाएगी अगर वह उन्हें ‘विशेषज्ञों’ और अपने चुने हुए धर्मप्रचारकों में मान ले। कृष्णा के लिए ऐसा कुछ करने का सवाल ही नहीं था—वह उन लोगों से बातचीत टालने की कोशिश करता रहा। शिवा राव को ऐसा विश्वास था कि कृष्णा ने एक क्षण के लिए भी मास्टरों की शक्ति पर संदेह नहीं किया, और उसे पूरा भरोसा रहा कि मास्टर नित्या को बचा लेंगे। 13 नवंबर की रात को जैसे ही वे सुएज कनैल में प्रवेश कर रहे थे श्रीमती बेसेंट को नित्या की मृत्यु का तार मिला। शिवा राव और कृष्णा एक ही

केबिन में थे। शिवा राव के अनुसार आगे के दस दिन कृष्णा के लिए यातनामय रहे। रात में कृष्णा सिसकता, कराहता, नित्या के लिए रोता—कभी-कभी अपनी मातृभाषा तेलुगु में जिसे वह जाग्रत अवस्था में नहीं बोल पाता था। हालांकि जिस वक्त वे कोलंबो पहुंचे तब तक कृष्णा ने अपने दुख को लगभग एक आशीष में परिवर्तित कर लिया था। नित्या के बारे उसने एक टिप्पणी भी लिखी थी जो जनवरी 1926 के हेरल्ड के संपादकीय में प्रकाशित हुई थी :

> भौतिक तल पर जो सुख-सपने मैंने और मेरे भाई ने संजोए थे वे अब खत्म हो चुके हैं... हालांकि हम अलग-अलग प्रकृति के थे फिर भी हमने जीवन का भरपूर आनंद लिया। हमने एक-दूसरे को बिना किसी प्रयास के समझा... यह एक ख़ुशनुमा ज़िंदगी थी और मैं उसकी शारीरिक उपस्थिति की कमी जीवन-भर महसूस करता रहूंगा। एक पुराना स्वप्न खत्म हुआ और एक नया जन्म ले रहा है, उसी तरह से जैसे एक फूल कठोर धरती से बाहर निकलता है... पीड़ा से उपजी एक नवीन शक्ति धमनियों में धड़क रही है, और एक नयी संवेदना और समझ उस अतीत की पीड़ा में से निकल कर आई है। एक महती आकांक्षा है कि औरों का दुख कम हो और यदि उन्हें दुखी होना ही पड़े तो इस दुख को वे गरिमा के साथ बर्दाश्त कर सकें तथा बिना बहुत से घावों के निशां छोड़े इससे बाहर निकल आएं। मैं रो चुका हूँ और मैं नहीं चाहता कि और लोग रोएं, लेकिन यदि वे रोते हैं तो मुझे अब पता चल गया है कि इसका क्या अर्थ है... भौतिक तल पर हमें जुदा किया जा सकता था, लेकिन अब हमें कतई जुदा नहीं किया जा सकता... कृष्णमूर्ति के तौर पर अब मेरे पास और अधिक उत्साह है, आस्था है, संवेदना है, प्रेम है, क्योंकि मेरे भीतर अब नित्या का भी अस्तित्व है...पहले से कहीं अधिक निश्चितता के साथ मैं अब जानता हूँ कि जीवन में एक सच्चा सौंदर्य है, एक सच्ची खुशी है जो किसी भी भौतिक घटना से बिखर नहीं सकती, एक महान शक्ति है जो कभी कमज़ोर नहीं पड़ सकती, और एक महान प्रेम है जो कि शाश्वत, अनश्वर और अजेय है।

नित्या की मृत्यु श्रीमती बेसेंट के लिए एक ज़बरदस्त आघात थी, हालांकि इससे उनकी आस्था समाप्त नहीं हुई, जबकि लेडबीटर द्वारा प्रस्तुत मास्टर के स्वरूप में कृष्णा की आस्था पूरी तरह से डगमगाती-सी लगी। हालांकि मैत्रेय में और माध्यम के तौर पर खुद की भूमिका में उसकी आस्था समाप्त नहीं हुई। अरुंडेल और वेजवुड ने इसे बिल्कुल स्पष्ट कर दिया था कि नित्या की मृत्यु इसलिए हुई कि कृष्णा ने उन्हें स्वीकृति देने से इनकार कर दिया था।

कुछ दिनों बाद लेडबीटर सत्तर लोगों के काफ़िले के साथ कोलंबो पहुँचे, जिसमें हेलन, रूथ, बेट्टी और मैं भी शामिल थी। मेलबोर्न में हमें नित्या की मृत्यु का समाचार मिल गया था। श्रीमती बेसेंट, कृष्णा और अन्य लोग, जो कि अड्यार चले गए थे हम लोगों से मिलने के लिए कोलंबो आए। कृष्णा के लिए लेडबीटर का अभिवादन था —“कम-से-कम तुम तो एक अर्हत हो।”

भारत में प्रवेश करने के बाद पूरा काफिला मद्रास तक एक विशेष ट्रेन में गया। हर स्टेशन पर भीड़ फूलमालाओं और अभिवादन के साथ खड़ी मिलती। कृष्णा मेरी बगल में बैठा था, उसे पता था कि नित्या से मुझे कितना अधिक लगाव था। मैंने अपनी डायरी में लिखा : “कृष्णा बिल्कुल अच्छा था, मुझसे नित्या के बारे में बात करता रहा। वे अब हमेशा एक-साथ हैं। ‘के’ स्वयं पहले से कितना अद्‌भुत है, कितना अधिक कोमल है।”

अड्यार में स्थिति बड़ी पीड़ादायक थी। रूथ ने खुलासा किया कि ह्यूज़ेन में दी गई किसी भी दीक्षा में लेडबीटर का विश्वास नहीं है। इस तरह दो गुट बन गए थे—अरुंडेल-वेजवुड का गुट और लेडबीटर का गुट; और इसके अलावा कृष्णा और उसके अनुयायी थे जो दोनों गुटों से बेलाग थे, और उधर श्रीमती बेसेंट थीं जिनका कृष्णा के लिए प्रेम और आदर अक्षुण्ण था—वे सबको समन्वित करने का प्रयास कर रही थीं। एक सुबह वह कृष्णा के कमरे में गईं, और उसका हाथ थामकर अपनी बैठक में ले आईं, जहां लेडबीटर, राजा, अरुंडेल और वेजवुड पहले से जमा थे। अपने और लेडबीटर के बीच सोफे पर बैठाते हुए उन्होंने उससे पूछा कि क्या वह शिष्य के रूप में सबको स्वीकार करेंगे। उसने जवाब दिया कि वह किसी को भी स्वीकार नहीं करेगा, सिवाय शायद श्रीमती बेसेंट के। (उन गिनी-चुनी घटनाओं की स्मृतियों में से यह एक है, जिसका स्मरण कृष्णा को आजीवन रहा—क्योंकि जल्दी ही कृष्णा का अतीत की करीब-करीब तमाम स्मृतियों का एहसास खोनेवाला था।)

थियोसोफिकल कन्वेंशन के समाप्त होने के बाद 28 दिसंबर को स्टार कांग्रेस शुरू हुई। बरगद के पेड़ के नीचे पहली बैठक सुबह आठ बजे हुई जिसमें 3000 से अधिक लोग उपस्थित थे। कृष्णा विश्व-शिक्षक के संबंध में संभाषण दे रहा था, तभी अंत तक पहुंचते-पहुंचते उसमें एकाएक परिवर्तन आया। वह अभी कह रहा था कि “वह केवल उनके पास आता है जो इच्छा करते हैं, जो उत्कंठित और लालायित होते हैं,” और तभी उसके चेहरे में परिवर्तन आया और उसकी आवाज़ एक असाधारण अधिकार से झनझना उठी : “और मैं उनके लिए आता हूँ जो करुणा चाहते हैं, आनंद चाहते हैं, जो मुक्ति के लिए तड़प रहे हैं। मैं आता हूँ संवारने के लिए न कि विध्वंस के लिए, मैं आता हूँ निर्माण के लिए न कि विनाश के लिए।”[22]

उन लोगों के लिए यह एक चकाचौंध कर देने वाला क्षण था जिन्होंने इस परिवर्तन को महसूस किया। (वेजवुड और अरुंडेल का कहना था कि उन्होंने समझा कि वह किसी शास्त्र का हवाला दे रहा था।) श्रीमती बेसेंट ने तो इसे निश्चित रूप से महसूस किया। स्टार कांग्रेस की आख़िरी बैठक में श्रीमती बेसेंट ने कहा : ‘...वह घटना (28 दिसंबर की) चुने गए माध्यम के दीक्षा-अभिषेक को सुनिश्चित करती है...बहुत पहले चुनी गई देह को पूर्ण रूप से स्वीकार कर लिया गया है... ‘आगमन’ की शुरुआत हो गई है।’ इसके अलावा जनवरी 1926 के थियोसोफिस्ट में उन्होंने लिखा—‘कोई उत्तेजना, कोई घबड़ाहट नहीं थी, यहां तक कि 28 दिसंबर को भी, जबकि हमारे भ्राता कृष्णजी अपना ‘संभाषण’ समाप्त कर रहे थे तभी हमारे लॉर्ड विश्व शिक्षक ने उनकी देह को धारण कर कुछ वाक्य

बोल दिए।' लेडबीटर भी कम आश्वस्त नहीं थे। सिडनी लौट जाने के बाद उन्होंने वक्तव्य दिया कि इसमें ज़रा भी संदेह नहीं कि 'जुबली कन्वेंशन में 'उसके' द्वारा माध्यम का प्रयोग एक से अधिक बार किया गया।[23]

स्वयं कृष्णा को कोई शक नहीं था। अड्यार में आर्डर ऑव द स्टार के राष्ट्रीय प्रतिनिधियों को दी गई वार्ता में उसने कहा : "28 दिसंबर की स्मृति आपके लिए ऐसी होनी चाहिए जैसे आप किसी अमूल्य रत्न की रखवाली कर रहे हों और जब भी आपकी दृष्टि उस पर जाए आप रोमांचित हो उठें। अब जब 'वह' आएंगे, और मुझे पूरा विश्वास है कि 'वह' बहुत शीघ्र फिर आएंगे, तब यह आपके लिए पहले से भी कहीं अधिक महान और सुंदर अवसर होगा।"[24] शिष्यों की एक बैठक में वह बोला, "उस दिन के बाद मैं व्यक्तिगत रूप से काफी अलग महसूस कर रहा हूँ...एक क्रिस्टल के फूलदान की तरह जिसे साफ कर दिया गया हो, और अब दुनिया का कोई भी इंसान उसमें एक सुंदर फूल रख सकता है और वह फूल हमेशा ज़िंदा रहेगा, कभी नहीं मुरझाएगा।"[25]

लेडी एमिली ने अपनी डायरी में लिखा कि कृष्णा ने उनको बताया कि वह अब एक खोल की तरह अनुभव कर रहा है, बिल्कुल निर्वैयक्तिक। उन्होंने जब उस दिन की घटना का वर्णन किया कि कैसे उसके चेहरे और आवाज़ में परिवर्तन आ गया था तो उसने विचारमग्न होकर कहा, 'काश मैं इसे देख पाता!' क्या उसे विश्वास था कि यह मैत्रेय का चेहरा था? श्रीमती बेसेंट और लेडबीटर ने उस 'चेहरे' को हमेशा जो महत्त्व दिया था उस पर 'के' अपने जीवन के लगभग आख़िरी वक्त तक ज़ोर देते रहे, पर यहां ऐसा लगता है कि वह स्वयं अपने चेहरे की सुंदरता की ओर संकेत कर रहे थे जिसे वह अपनी पूरी देह ही की तरह सदा एकदम अवैयक्तिक ही मानते रहे। ज़ाहिर है कि वह देह उन्हें देखभाल करने के लिए सौंपी गई थी। अपनी देह से पूर्णतया पृथक होने का यह भाव उनके साथ आजीवन रहा।

8

अनवरत आंतरिक बेचैनी

भारत में कृष्णा मई तक रहा। इसके बाद रोज़ालिंड और राजगोपाल के साथ वह इंग्लैंड चला गया। (मेरी मां, बेट्टी और मैं जनवरी के ख़त्म होने तक भारत छोड़ चुके थे; उसी समय हेलन और रूथ भी सिडनी वापस चली गई थीं।) यह स्वाभाविक ही प्रतीत हुआ कि नित्या के बाद राजगोपाल को स्टार का संगठन सचिव बना दिया गया। एक नये पद यानी अंतरराष्ट्रीय कोषाध्यक्ष का भार भी उसे सौंपा गया। वह एक जन्मजात संगठनकर्ता था और उसके कुशल हाथों में सारे आर्थिक मामले छोड़कर कृष्णा बहुत खुश था।

कृष्णा के अनुरोध पर राजगोपाल ने तीन सप्ताह का एक सम्मेलन 'कासल अर्ड' में आयोजित किया। 3 जुलाई से यह शुरू हुआ, उस साल के ओमन कैंप से पहले। वेस्ट साइड हाउस, विम्बल्डन से ख़ास-ख़ास मित्रों को निमंत्रण भेजा गया और साथ में उनसे 2 पौंड प्रति सप्ताह निवास व्यवस्था हेतु देने के लिए कहा गया। अलग-अलग देशों के पैंतीस लोगों ने आना स्वीकार किया। इनमें मार डी मेंज़िअर्ली, जॉन कोर्ड्स, रोज़ालिंड, राजगोपाल और लट्यंस परिवार के तीन सदस्य भी थे। ट्रस्ट ने अब उस किले में बिजली और नल-पानी का अच्छा इंतज़ाम कर दिया था (पहले तेल के लैम्प जलते थे; तहख़ाने थे जो सीधे किले की चारों तरफ की खाई में जाते थे जहां बड़ी-बड़ी मछलियां थीं जो सब कुछ निगल जाती थीं जो भी उन तक पहुंचता था); सोने के कमरों को डॉर्मेट्री (शयनागारों) में बदल दिया गया था। केवल कृष्णा के पास अपना अलग कमरा था। ब्रोन्काइटिस हो जाने के कारण पहले तीन दिन कृष्णा बिस्तर में रहा, इसके बाद वह हर सुबह एक बड़ी-सी बैठक में 'गोब्लिन' दीवारदरी के नीचे रखे सोफे पर पालथी मारकर बैठ जाता और घंटे भर तक हमसे वार्ता करता। लेडी एमिली, मार और हमने अपनी-अपनी डायरियों में नोट्स लिये और हम सभी ने अलग-अलग स्वतंत्र रूप से इस विश्वास की पुष्टि की कि 'लॉर्ड' कई बार उसके माध्यम से बोले।

मौसम बिल्कुल अच्छा था और वॉलीबॉल खेलने के लिए हमारी संख्या भी काफी थी। मैंने अपनी डायरी में लिखा—"दुनिया में इससे बढ़कर और क्या हो सकता है कि हम वाकई में शारीरिक, मानसिक और भावना के स्तर पर ख़ुद को जीवंत महसूस करें, जैसा कि हम यहां कर रहे हैं। इसका अर्थ है, जैसा कि 'के' कहते हैं, समग्र रूप से स्वस्थ होने

का बोध।" इस सम्मेलन के दौरान कृष्णा के मैं बहुत नज़दीक आ गई। लेडी एमिली ने अपनी डायरी में लिखा—"अंतिम दिन की वार्ता में कृष्णा इस तरह बोले जैसे उन्होंने पहले कभी नहीं बोला था। मुझे यह महसूस हुआ कि उनकी और 'लॉर्ड' की चेतना इतनी घुलमिल गई है कि दोनों में कोई फर्क रहा ही नहीं। उन्होंने कहा, 'मेरा अनुसरण करिए और मैं आपको आनंद के साम्राज्य का रास्ता दिखाऊंगा। आपमें से प्रत्येक को मैं वह चाबी दूंगा जिससे आप उस उपवन के द्वार खोल सकें', और कृष्णा के चेहरे में 'लॉर्ड' का चेहरा दमकने लगा।"

कृष्णा के ज़्यादातर मित्र और अनुयायी अब उन्हें कृष्णजी कहकर बुलाते थे—'जी' प्रेम और सम्मान को दर्शाता है। इस किताब में अब उनके लिए कृष्णा नाम प्रयोग करते जाना कुछ ज़्यादा ही बेतकल्लुफ होगा, और कृष्णजी कहने में कुछ ज़्यादा हिन्दुस्तानीपन आ जाएगा, जबकि कृष्णमूर्ति कहना थोड़ा श्रमसाध्य लगेगा। इसलिए आगे की पूरी किताब में हम उन्हें उसी नाम से बुलाएंगे जिससे वह ख़ुद को भी संबोधित करते थे, यानी 'के'।

24 जुलाई को जब कैंप शुरू हुआ तो 'के' को छोड़कर 'कासल अर्ड' में रुके सभी लोग टेंटों में आ गए। कासल से एक मील दूर देवदार के जंगलों में ये टेंट लगाए गए थे। कैंप का इंतज़ाम बड़ी खूबसूरती से किया गया था और करीब 2000 लोगों* ने इसमें भाग लिया। श्रीमती बेसेंट जुलाई के शुरू में जब यूरोप आईं थीं तो सीधे ह्यूज़ेन चली गईं थीं। फिर भी उन्होंने और वेजवुड ने कासल में रहते हुए कैंप में भाग लिया। कैंप के केंद्र में लकड़ी के आधे-अधूरे ढंग से कटे लट्ठों से बना एक खुला रंगमंच (एंफीथिएटर) था। जब मौसम ठीक-ठाक होता तो यहां पर बैठकें होतीं और सूर्यास्त के समय 'कैंप फायर' का आयोजन होता। 'कैंप-फायर' के समय 'के' भारतीय परिधान में होते और पंद्रह फुट ऊंचे लकड़ी के ढेर में अग्नि-देव के लिए मंत्रोच्चार करते हुए अग्नि प्रज्वलित करते। इसके बाद वे वहीं एक वार्ता देते।

27 जुलाई की शाम को 'के' को सुनने के बाद लेडी एमिली ने अपनी डायरी में लिखा कि 'कृष्णा को देखकर ऐसा लगा जैसे 'वह' ('लॉर्ड') वहां स्वयं हैं। वह इतने मज़बूत और शक्ति से भरे हुए दिख रहे थे।' एक इटैलियन महिला मिसेज़ कर्बी वहां थीं जो 'के' को 1909 (अड्यार) से जानती थीं, और पर्जिन में भी हमारे साथ थीं; उन्होंने बाद में इस वार्ता के बारे में अपने एक मित्र को लिखा कि उस शाम को उनकी उपस्थिति एक असाधारण गरिमा से आलोकित थी, उनकी आवाज़ में गहराई, पूर्णता और शक्ति समाती ही जा रही थी : "लॉर्ड' स्वयं वहां उपस्थित थे और 'वही' बोल रहे थे...जब वार्ता समाप्त हुई तो मुझे पता चला कि मैं सिर से पाँव तक काँप रही थी।" अगले दिन सुबह जब 'के' से वह मिलीं तो उन्हें वह हमेशा की तरह प्रिय और स्नेहिल लगे, और उन्होंने जब 'के' को यह बताया कि कैसे उनकी पूरी आकृति बदल गई थी तो उन्होंने कहा, "काश, मैं भी इसे

देख पाता!”...“कृष्णजी ऐसे दिख रहे थे जैसे उन्हें आराम की बेहद ज़रूरत है...बेचारे कृष्णजी, क्या जीवन है उनका। इसमें कोई संदेह नहीं कि उनका जीवन एक ‘बलिदान’ है।”[26]

उस शाम की वार्ता के कुछ अंश इस प्रकार हैं :

> मैं आपसे कहूंगा कि आप आएं और मेरी खिड़की से झांककर देखें मेरे स्वर्ग को, मेरे उपवन को और मेरे आवास को। तब आप देखेंगे कि महत्त्व इस बात का नहीं कि आप क्या करते हैं, क्या पढ़ते हैं, या कोई व्यक्ति आपके बारे में क्या कहता है, बल्कि महत्त्व इस बात का है कि आपमें उस आवास में प्रवेश करने की गहरी चाह हो जहां सत्य विराजता है... मैं चाहूंगा कि आप आएं और देखें, आएं और महसूस करें... और मुझसे यह न कहें कि ‘अरे, आप तो अलग हैं, पर्वत की चोटी पर बैठे हैं, रहस्यवादी हैं।’ आप मेरे बारे में अलग-अलग बातें करते हैं और अपने शब्दों से मेरे ‘सत्य’ को ढक देते हैं। मैं यह नहीं चाहता कि आप अपने सारे विश्वासों से नाता तोड़ लें, अपने स्वभाव को नकार दें। मैं यह नहीं चाहता कि आप वह सब करें जो आप ठीक नहीं समझते; लेकिन क्या आपमें से कोई सुखी है? क्या आपमें से किसी ने शाश्वतता का स्वाद चखा है?...मैं सभी से जुड़ा हूँ, उन सबसे जो वास्तव में प्रेम करते हैं, उन सबसे जो पीड़ा में हैं। यदि चलना है तो आपको मेरे साथ चलना होगा। यदि समझना है तो आपको मेरे चित्त के माध्यम से देखना होगा। यदि महसूस करना है तो आपको मेरे हृदय से देखना होगा। और चूंकि मैं वास्तव में प्रेम करता हूँ इसलिए मैं चाहता हूँ कि आप प्रेम करें। चूंकि मैं सच में महसूस करता हूँ, मैं चाहता हूँ आप भी महसूस करें। चूंकि मैं हर चीज़ को प्रिय समझता हूँ, मैं चाहता हूँ आप भी हर चीज़ को प्रिय समझें। चूंकि मेरे भीतर संरक्षण का भाव है आपके भीतर भी यह भाव हो। और जीने योग्य केवल यही जीवन है, और प्राप्त करने योग्य केवल यही सुख, यही खुशी है।”[27]

जब वार्ता खत्म हुई तो वेजवुड श्रीमती बेसेंट के कान में कुछ फुसफुसाते हुए दिखाई दिए। जैसे ही ‘के’ कासल लौटे श्रीमती बेसेंट ने उनको बताया कि यह एक शक्तिशाली काला जादूगर था, जिसे वह अच्छी तरह जानती हैं, जो उनके माध्यम से बोल रहा था। यह सुनकर ‘के’ एकदम स्तब्ध रह गए और उन्होंने उनसे कहा कि अगर वह सच में ऐसा मानती हैं तो वह फिर कभी सार्वजनिक रूप से नहीं बोलेंगे। इसके बाद फिर कभी किसी काले जादूगर का ज़िक्र नहीं किया गया। उस रात मैं कासल में ही सो रही थी और ‘के’ ने खुद इसके बारे में मुझे बताया। उन्होंने कहा—‘बेचारी अम्मा’। उन्हें यह महसूस हुआ कि उनका दिमाग जा रहा है और वेजवुड जो भी कहे जा रहा है उसमें वह विश्वास कर ले रही हैं।

श्रीमती बेसेंट ने अचानक निर्णय लिया कि वह ‘के’ के साथ अमेरिका जाएंगी—जहां वह 1909 से नहीं जा सकी थीं। उनके लिए एक व्याख्यान दौरे का तुरंत इंतज़ाम किया गया और 26 अगस्त को ‘के’, राजगोपाल और रोज़ालिंड के साथ वह निकल गईं।

न्यूयॉर्क पहुंचने पर बीस पत्रकार जहाज़ पर मिलने के लिए आए। ‘के’ को सलेटी रंग के बढ़िया सूट में पाकर उन्हें निराशा हाथ लगी। एक पत्रकार ने उनका ज़िक्र इन शब्दों में किया—‘एक शर्मीला, बुरी तरह भयभीत, अच्छी शक्ल-सूरत का हिंदू लड़का।’ अखबारों की ऐसी सुर्खियां देखकर ‘के’ को अत्यधिक उलझन हुई—‘स्टार संप्रदाय को आने वाले भगवान की महिमा की प्रतीक्षा’, ‘टेनिस फ्लानेल्स पहने नया मसीहा’, ‘प्लस फोर्स (घुटने से नीचे तक पहने जाने वाली पतलून) में नये देवता का आगमन’, इत्यादि।

वॉल्डॉर्फ-एस्टोरिया होटल में अगले दिन चालीस पत्रकारों ने ‘के’ का अकेले में साक्षात्कार लिया। श्रीमती बेसेंट की नामौजूदगी में वह काफी कम झिझक रहे थे। न्यूयॉर्क टाइम्स ने खबर दी कि कई पत्रकारों ने अपने तीखे सवालों में उन्हें फंसाने की कोशिश की, पर वह कुशलता से उन फंदों से बाहर निकल आए और विजेता की भूमिका में उन सभी की प्रशंसा अर्जित की। इसी समय एक फिल्म कंपनी ने बुद्ध का मुख्य किरदार निभाने के लिए ‘के’ को 5000 डॉलर प्रति सप्ताह देने की पेशकश की। अपनी बाद की ज़िंदगी में ‘के’ इस बात का ज़िक्र अक्सर किया करते थे। उन्हें इस प्रस्ताव से खुशी हुई थी, क्योंकि इसने उन्हें इस बात का एहसास कराया था कि अगर वह चाहते तो अपनी आजीविका खुद कमा सकते थे।

श्रीमती बेसेंट से ‘के’ की मुलाकात 3 अक्टूबर को सैनफ्रैंसिस्को में हुई (तब तक वह तीस व्याख्यान दे चुकी थीं) और वह उन्हें अपने साथ ओहाय ले जाने की खुशी हासिल कर सके। इससे पहले तक ‘के’ वॉर्म स्प्रिंग, वर्जीनिया में आराम कर रहे थे, साथ में राजगोपाल भी था। ओहाय से दूर रहते करीब एक साल गुज़र चुका था। ओहाय पहुँचने के दो दिन बाद ही उन्होंने लेडी एमिली को लिखा, “यहां मैं नित्या के बिना हूँ... मैं उस कमरे में गया जहां वह बीमार पड़ा था और जहां उसने आखें मूंद ली थीं, मुझे लगा मेरी देह कराह उठी। यह देह भी कितनी विचित्र चीज़ है। मैं वास्तव में परेशान नहीं था लेकिन मेरी देह एक असाधारण अवस्था में पहुंच गई थी... नित्या की भौतिक अनुपस्थिति का मैं अभ्यस्त होता जा रहा हूँ, हालांकि यह आसान एकदम नहीं है, क्योंकि यहां हम किसी भी दूसरी जगह से ज़्यादा रहे, यहां हमने साथ-साथ पीड़ा सही और साथ-साथ खुश भी रहे।”

छाती में कष्टकारी सूजन हो जाने के कारण हॉलीवुड के दो डॉक्टरों ने ‘के’ को उस जाड़े में भारत जाने से मना कर दिया, जैसा कि उनका कार्यक्रम था। हालांकि बाद में यह सूजन ठीक हो गई। श्रीमती बेसेंट ने उनके साथ ओहाय में ही रहने का निर्णय लिया। ‘के’ ने लेडी एमिली को लिखा कि वह मुझे और बेट्टी को लेकर आ जायें। बेट्टी ने अभी ‘रॉयल कॉलेज ऑव म्यूज़िक’ में दाखिला लिया था और उसकी जाने की इच्छा नहीं थी। इसलिए मैं और मां नवंबर के आखिर में ओहाय के लिए निकल पड़े और वहां हमने ‘के’ और श्रीमती बेसेंट, राजगोपाल और रोज़ालिंड के साथ आनंद से भरपूर पांच महीने बिताए। ‘के’ और श्रीमती बेसेंट ने कभी एक साथ इतना लंबा, शांतिपूर्ण और सुखी वक्त नहीं गुज़ारा था। ‘के’ उस वक्त कविताएं लिख रहे थे। हर शाम को घूमते हुए हम सूर्यास्त

देखने जाते। सूर्यास्त से वह इतना प्रेरित हो जाते कि लौटकर कविता लिखते।* यह उनका सर्वाधिक मानव सुलभ पक्ष था जो हमें वहां देखने को मिला। अपनी पैकार्ड गाड़ी चलाना सिखाते हुए वह मुझ पर खूब बिगड़ते और जब बदले की भावना से मैं कार को अकेले ही चलाते हुए निकल जाती, तो चिंता के मारे वह बेहद परेशान हो जाते।

जनवरी में फिर वही पुराना तीक्ष्ण दर्द शुरू हो गया, गर्दन में और रीढ़ के आधार में। हालांकि अब बिना 'बाहर' गए वह इसे सहन करने की स्थिति में दिख रहे थे। जब यह दर्द समाप्त हो जाता तो उन्हें आराम की ज़रूरत होती, और तब वह घंटे-दो घंटे के लिए अपनी देह छोड़ देते या यूं कहें कि एक बच्चा बन जाते। मैं इसमें उनकी मदद कर पाती थी। जब पहली बार मैं उनके पास गई तो 'देह-चेतना' ने पूछा कि मैं कौन हूँ, और फिर कहा—"अच्छा, अगर तुम कृष्णा और नित्या की दोस्त हो तो मैं समझता हूँ तुम ठीक हो।" यह ऐसा था जैसे एक चार साल का बच्चा बोल रहा हो और मुझे 'अम्मा' पुकार रहा हो। ऐसा लगता जैसे वह बच्चा 'के' से बहुत डरता हो; वह ऐसी बातें कहता—"ध्यान रखो, कृष्णा वापस आ रहा है।" जब 'के' वापस आ जाते तो उन्हें ज़रा भी याद नहीं रहता कि बच्चा क्या कह रहा था।

लेडी एमिली ने एक दिन उनसे पूछा कि कब्ज़े की भावना वाले प्रेम से उनका क्या मतलब है। उन्होंने जवाब दिया—"हर कोई एक-सा है—सभी सोचते हैं कि उनका मुझ पर एक खास अधिकार है, कोई खास मार्ग उनको मुझ तक लेकर आता है।" ऐसा उनके साथ जीवन-भर रहा। लोग सोचते कि उनका किसी-न-किसी रूप में 'के' पर अधिकार है, कि वे औरों से ज्यादा 'के' को समझते हैं। लेकिन वास्तव में क्या कोई उन्हें पूरी तरह समझ सका? निश्चित रूप से कोई भी उन पर अपना अधिकार नहीं जमा सका।

9 फरवरी को उन्होंने लेडबीटर को लिखा : "मुझे यह निश्चित रूप से पता है कि मैं उस एकमात्र 'शिक्षक' की चेतना के साथ एकलय हो रहा हूँ और 'वह' मुझमें पूर्णतया समाहित हो रहा है। मुझे यह महसूस होता है और मुझे यह पता भी है कि मेरा प्याला लगभग ऊपर तक भर चुका है और जल्दी ही यह बाहर छलकने लगेगा। मैं शिद्दत से चाहता हूँ कि हर कोई सुखी हो और मुझे यही करना है।"

'के' की यह ख़्वाहिश थी कि ओहाय वैली में एक स्कूल खोला जाए। श्रीमती बेसेंट ने वहां पहुंचते ही वैली के ऊपरी हिस्सों में 450 एकड़ ज़मीन खरीद ली। वह यह भी चाहती थीं कि ओमन कैंप की तरह वैली में भी हर साल कैंप लगे। इसके लिए उन्होंने वैली के निचले हिस्से में 240 एकड़ ज़मीन खरीदने के लिए प्रयास शुरू किए। 'हैप्पी वैली फाउंडेशन' के नाम से एक और ट्रस्ट की स्थापना हुई और दो लाख डॉलर धन इकट्ठा करने की अपील की गई।* लेकिन 'हैप्पी वैली स्कूल' बीस साल तक शुरू नहीं हो सका।

अप्रैल में 'के' के साथ ओहाय छोड़ने से पहले श्रीमती बेसेंट ने अमेरिका की एसोसिएटेड प्रेस को एक वक्तव्य जारी किया जिसके शुरू में लिखा था—"दिव्य आत्मा पुनः एक मनुष्य, कृष्णमूर्ति, के रूप में अवतरित हुई है जिनका जीवन अक्षरशः पूर्ण है;

और जो उन्हें जानते हैं वे इसका साक्ष्य दे सकते हैं।" वक्तव्य के अंत में था—"विश्व शिक्षक यहां मौजूद है।"

उस साल के ओमन कैंप से पहले कासल अर्ड में एक महीने का सम्मेलन हुआ। किले के विशाल प्रवेश द्वार को घेरे हुए तलों पर जो बाड़े (ओसारे) थे उन्हें छोटे-छोटे कमरों में तब्दील कर दिया गया था, इसलिए अब साठ लोगों के ठहरने की जगह हो गई थी। पहले हफ्ते 'के' को फिर तेज़ ब्रोंकाइटिस हुआ। रोज़ सुबह लेडी एमिली हमें उनकी कविताएं पढ़कर सुनातीं, जबकि वह बिस्तर में लेटे हुए एडगर वैलेस को पढ़ते। 30 जून तक वह इस स्थिति में आ गये कि नीचे आकर वार्ताएं दे सकें।

इस दौरान ऑर्डर के पुनर्गठन को लेकर लेडी एमिली और राजगोपाल के बीच कई वार्ताएं हुईं। अब चूंकि बहुत सारे लोग यह मान रहे थे कि 'शिक्षक' का आगमन हो चुका है इसलिए अब ऑर्डर के पुराने उद्देश्यों की वैधता नहीं रह गयी थी। 28 जून को ऑर्डर के नये उद्देश्यों का निर्धारण हुआ : 1. उन लोगों को एक साथ लाना जो विश्व में 'विश्व शिक्षक' की मौजूदगी में विश्वास रखते हैं। 2. मानवता के लिए 'विश्व शिक्षक' का जो ध्येय है उसकी पूर्ति के लिए हर दृष्टि से कार्य करना। ऑर्डर का कोई धर्ममत, पंथ, सिद्धांत या विश्वास-आधारित तंत्र नहीं है। ऑर्डर की प्रेरणा 'शिक्षक' में निहित है और इसका उद्देश्य उनके वैश्विक जीवन को साकार करना है। ऑर्डर ऑव द स्टार इन द ईस्ट का नाम बदलकर ऑर्डर ऑव द स्टार कर दिया गया, और पत्रिका हेरल्ड ऑव द स्टार को स्टार रिव्यू। अब से हर देश को इस पत्रिका का अपना एक संस्करण निकालना था। लेकिन इसके साथ ही 1926 में हॉलैंड में स्थापित स्टार पब्लिशिंग ट्रस्ट एक और पत्रिका इंटरनैशनल स्टार बुलेटिन निकालने जा रहा था, जिसमें कई सालों तक 'के' की वार्ताएं प्रकाशित होती रहीं।

अर्ड के पिछले साल के सम्मेलन में 'के' का विषय था 'सुख का साम्राज्य', जबकि इस साल का 'मुक्ति'। लेडी एमिली ने उनकी वार्ताओं के कुछ नोट्स तैयार किए :

> मेरे कारण नहीं बल्कि मेरे बावजूद आपको मुक्त होना होगा...इस पूरे जीवन में और विशेषकर पिछले कुछ महीनों में मैंने मुक्त होने के लिए संघर्ष किया है—अपने मित्रों से, संपर्कों से, पुस्तकों से मुक्त होने के लिए। इसी मुक्ति के लिए आपको भी संघर्ष करना है। भीतर एक अनवरत बेचैनी का होना ज़रूरी है। अपने सामने हमेशा एक आईना रखिए, और यदि उसमें ऐसा कुछ दिखे जो आपके बनाए आदर्श के विपरीत हो तो उसे बदल डालिए...आपको मुझे एक सत्ता के रूप में स्थापित नहीं करना है। यदि मैं आपकी एक ज़रूरत बन जाता हूँ तो आप तब क्या करेंगे जब मैं चला जाऊंगा?... कुछ लोग सोचते हैं कि मैं आपको कुछ ऐसी चीज़ पिला दूंगा या कोई ऐसा सूत्र दे दूंगा जो आपको मुक्त कर देगा जबकि ऐसा नहीं है। मैं एक दरवाज़ा हो सकता हूँ लेकिन उस दरवाज़े से आपको गुज़रना होगा और उस मुक्ति को पाना होगा जो इससे परे है... 'सत्य' एक चोर की तरह आता है जब आपको उसकी कतई उम्मीद नहीं होती। काश मैं एक नयी भाषा का

आविष्कार कर पाता, लेकिन चूंकि मैं ऐसा नहीं कर सकता, इसलिए मैं चाहता हूँ कि आपकी पुरानी शब्दावलियों और धारणाओं को नष्ट कर डालूं। कोई भी आपको मुक्ति नहीं दे सकता, आपको अपने भीतर ही इसे पाना होगा। लेकिन, चूंकि मैंने इसे पा लिया है इसलिए मैं आपको रास्ता दिखाऊंगा...जिसने मुक्ति पा ली है, वह 'शिक्षक' हो जाता है, मेरी तरह ही। आग की उस लपट में प्रवेश कर पाना, और फिर वही हो जाना यह हर किसी के वश में है...चूंकि मैं यहां हूँ और यदि आप मुझे अपने हृदय में संजोएंगे तो मैं आपको उसे हासिल करने की शक्ति दूंगा... ऐसा नहीं है कि मुक्ति कुछ ही लोगों के लिए हो जिन्हें खास तौर पर चुना गया हो।

आखिरकार 'के' का स्वयं का दर्शन सामने आना शुरू हो गया था। इससे बहुत-से लोग आतंकित थे, खासकर थियोसोफिकल सोसाइटी के एसोटेरिक सेक्शन के लोग। वे लोग इस बात के आदी हो गए थे कि उन्हें बताया जाए कि वे क्या करें, और 'पथ' पर कौन-से कदम वे उठा चुके हैं। असल में 'के' यह कह रहे थे कि मास्टर व अन्य सारे गुरु गैरज़रूरी हैं और हरएक को सत्य की खोज स्वयं करनी है। संन्यासी बनने की अपनी अभिलाषा को लेकर सम्मेलन के दौरान उन्होंने लेडी एमिली से काफी बातें कीं। उन्होंने स्वयं कहा कि उनका यह अंतिम बड़ा प्रलोभन था जिसका उन्हें सामना करना पड़ा।

अरुंडेल, वेजवुड और यहां तक कि राजा भी जो कि 'के' के प्रति व्यक्तिगत रूप से समर्पित था, अब ह्यूज़ेन से घोषणा कर रहे थे कि हालांकि वे इस बात में विश्वास नहीं करते कि 'के' की चेतना अभी 'लॉर्ड' की चेतना के साथ पूरी तरह एकलय हो पायी है, फिर भी सबको एक साथ जोड़े रखना है। 'के' ने स्वयं अब अपनी शब्दावली बदल ली थी—चेतना का विलयीकरण अब उनके लिए 'परमप्रिय के साथ एक हो जाना' था जो मुक्ति थी।

सोसाइटी के पुराने लीडर अपनी सत्ता से बुरी तरह चिपके थे, और अब उनकी प्रभुता को चुनौती मिल रही थी। यदि शिष्यत्व के लिए शिष्यों को वे प्रशिक्षित नहीं कर सकेंगे, 'पथ' पर चलने के लिए उपाय नहीं बता पाएंगे तो उनकी प्रभुता का क्या होगा? 'विश्व शिक्षक का आगमन' पर व्याख्यान देना वे कैसे जारी रख सकेंगे जबकि 'शिक्षक' ही ऐसे विद्रोही वक्तव्य दे रहा था, जो सीधे 'एसोटेरिक सेक्शन' पर चोट कर रहे थे?

उस साल भी श्रीमती बेसेंट कैंप में थीं और यह साफ था कि अर्ड के सम्मेलन में भी हिस्सा लेने की उनकी इच्छा थी। लेकिन 28 जुलाई को, यानी कैंप शुरू होने से तीन दिन पहले, उन्होंने लंदन से 'के' को जो करुणा भरा पत्र लिखा उससे यह लगता है कि 'के' ने उन्हें समझा-बुझाकर आने से रोक दिया होगा :

मेरे प्रिय... मैं यह काफी समय से महसूस कर रही हूँ कि इस साल अर्ड में वह चरम बिंदु आएगा और उस सुंदर क्षण को देखने की मेरी बेहद इच्छा थी। मैं वहां तुम्हारे ही लोगों में से एक होती और इसके सिवा कुछ नहीं। उस परम आशीष के संपर्क में आने वाले उन भाग्यशाली लोगों के साथ न हो पाने का मुझे काफी दुख

है। भले ही यह शायद बेतुका होता लेकिन मेरी वहां होने की बेहद इच्छा थी। चूंकि मैं तुम्हारे आस-पास रहकर अपने स्नेह का प्रदर्शन नहीं करती हूँ, इसलिए तुम्हें नहीं पता कि मैं तुम्हें कितना प्यार करती हूँ। इसलिए अपने खराब कर्म पर मैंने अपने-आप ही थोड़े-बहुत आंसू बहा लिये हैं। तुम्हें नहीं पता शायद कि मैं कैसी बुद्धू थी; या फिर मैं वहां आने के लिए इतनी बेचैन थी, और वह भी सिर्फ भीड़ का एक हिस्सा बनकर नहीं।[28]

कैंप शुरू होने से एक दिन पहले, जबकि श्रीमती बेसेंट वहां नहीं पहुंची थीं, 'के' ने पहली बार सार्वजनिक रूप से उस सवाल का जवाब दिया जो बहुत लोगों को परेशान किए हुए था : क्या वह मास्टर और उनकी गुह्य पदानुक्रम-परंपरा में विश्वास करते हैं? अपनी स्थिति के बारे में शायद यह सबसे महत्त्वपूर्ण वक्तव्य था जो उन्होंने दिया :

जब मैं छोटा था तो प्रायः श्रीकृष्ण को उनकी बांसुरी के साथ देखता था, जैसा कि हिंदुओं में उन्हें चित्रित किया जाता है, क्योंकि मेरी मां श्रीकृष्ण की भक्त थीं... जब मैं बड़ा हुआ और बिशप लेडबीटर और थियोसोफिकल सोसाइटी से मेरा परिचय हुआ तो मुझे मास्टर कुथुमी के दर्शन होने लगे—फिर उसी रूप में जो कि मेरे सामने रखा गया था और जो उनकी दृष्टि में एक वास्तविकता थी; और इस तरह मास्टर कुथुमी मेरे अभीष्ट हो गए। आगे चलकर जब मैं और बड़ा हुआ तो मुझे मैत्रेय के दर्शन होने लगे। यह दो साल पहले की बात है और मैं उन्हें लगातार उस रूप में देखता रहा जो रूप मेरे सामने उनका रखा गया... अब कुछ समय से मैं 'बुद्ध' को देख रहा हूँ और 'उनके' साथ होना मेरे लिए गौरव व आनंद का विषय रहा है। मुझसे पूछा गया है कि 'परमप्रिय' ('बिलविड') से मेरा क्या तात्पर्य है। मैं एक अर्थ, एक अनुमान पेश करूंगा जिसका आप जैसा जी चाहे मतलब निकालें। मेरे लिए वह सभी कुछ है—श्रीकृष्ण, मास्टर कुथुमी, मैत्रेय, बुद्ध, सभी कुछ और इसके बावजूद वह इन सारे रूपों से परे है। आप उसे क्या नाम देते हैं इसका क्या महत्त्व है?...आप जिस बात को लेकर परेशान हैं वह यह है कि क्या 'विश्व शिक्षक' नाम की कोई सत्ता है जिसने 'स्वयं' को एक विशेष व्यक्ति कृष्णमूर्ति के माध्यम से प्रकट किया है; हालांकि संसार में कोई भी इस सवाल को लेकर परेशान नहीं होगा। यह एक दुर्भाग्यपूर्ण बात है जिसे मुझे स्पष्ट करना है, किंतु मैं ऐसा ज़रूर करूंगा। मैं चाहता था कि इस बारे में जितना संभव हो उतनी यह कम सुनिश्चित अभिव्यक्ति हो, और मैंने ऐसा किया भी। मेरे लिए 'प्रियतम' खुला आसमान है, पुष्प है, हर मानव है... मैं नहीं चाहता था कि अनावश्यक उत्तेजना या अतिरंजना से दूसरों को यकीन दिलाया जाए, इसलिए मैं तब तक चुप रहा जब तक कि निश्चय के साथ मैं यह कहने के काबिल नहीं हो गया कि मैं 'परमप्रिय' के साथ एकाकार हूँ। मैं उन अरेखांकित सामान्यताओं के बारे में बात करता रहा, जो हर कोई चाहता था। मैंने यह कभी नहीं कहा कि मैं 'विश्व शिक्षक' हूँ। लेकिन अब चूंकि मुझे यह महसूस हो रहा है कि मैं 'परमप्रिय' से एकाकार हूँ, मुझे यह कहना

ही होगा, और मैं यह इसलिए नहीं कह रहा हूँ कि मुझे अपनी प्रभुता की छाप आप पर छोड़नी है, या मुझे अपनी महानता में या 'विश्व शिक्षक' की महानता में आपको यकीन दिलाना है, या कि जीवन के सौंदर्य में आपको भरोसा दिलाना है, बल्कि मैं यह केवल इसलिए कहूंगा कि आपके दिलो-दिमाग में 'सत्य' को खोजने के वास्ते उत्कंठा जाग्रत हो सके। यदि मैं कहता हूँ, और मैं यह कहूंगा भी, कि मैं 'परमप्रिय' के साथ एकाकार हूँ, तो यह इसलिए कि मेरी यह अनुभूति है और मैं यह जानता हूँ। जिसकी मुझे कामना थी उसे मैंने पा लिया है; उसके साथ मैं एक हो गया हूँ—इसलिए अब से कोई अलगाव नहीं रहेगा, क्योंकि मेरे, अपने निजी स्व के विचार, कामनाएं और इच्छाएं सब नष्ट हो चुके हैं...मैं उस फूल की तरह हूँ जो प्रातःकालीन समीर को सुवासित करता है और उसे इस बात की कोई फिक्र नहीं कि कौन उसके करीब से गुज़र रहा है...अब तक आप प्रमाण के लिए 'ऑर्डर' के दो 'संरक्षकों' (श्रीमती बेसेंट और लेडबीटर) पर आश्रित थे, अथवा किसी और पर जो आपको 'सत्य' तक पहुंचा दे, जबकि 'सत्य' तो आपके भीतर है...'परमप्रिय' कौन है, मुझसे यह पूछने का कोई अर्थ नहीं। व्याख्या किस काम की? क्योंकि आप उस 'परमप्रिय' को तब तक नहीं समझ सकेंगे जब तक कि उसे आप हर पशु में, हर घास की पत्ती में और दुख से गुज़र रहे हर व्यक्ति में नहीं देख लेते।[29]

ह्यूज़ेन से राजा और वेजवुड के साथ श्रीमती बेसेन्ट कैंप के लिए गईं। वहां उनकी वार्ता का विषय था—'विश्व शिक्षक यहां मौजूद है'। लेकिन वास्तव में 'के' जो कह रहे थे और 'लॉर्ड' जो कहेंगे उस बारे में श्रीमती बेसेंट की जो पूर्वधारणा थी, उन दोनों के बीच वह तालमेल नहीं बैठा सकीं। 15 अगस्त को वह ह्यूज़ेन लौट गईं। इसके दो दिन बाद 'के' ने उन स्वयंसेवियों को संबोधित किया जिन्होंने कैंप का आयोजन किया था। सामान्यतया जो भी वार्ताएं होती थीं उनको आशुलिपि में उतारकर प्रकाशित किया जाता था, लेकिन इस वार्ता का कोई अभिलेख उपलब्ध नहीं है (संभवतः श्रीमती बेसेंट के कारण इसे दबा दिया गया था)। लेडी एमिली की डायरी से हमें केवल एक वाक्य उस वार्ता का मिलता है—"आप तब तक किसी की मदद नहीं कर सकते जब तक कि आप स्वयं मदद की आवश्यकता से ऊपर न उठ जाएं।" श्रीमती बेसेंट तक इस वार्ता की खबर पहुंची और इससे उन्हें अत्यधिक दुख हुआ—और भी लोग दुखी हुए जैसा कि उन्होंने कहा। उस वक्त 'के' राजगोपाल के साथ 'विलर्स' में आराम कर रहे थे; वहां से उन्होंने श्रीमती बेसेंट को यह लिखा कि उन्हें याद नहीं कि उन्होंने क्या कहा था, और आगे लिखा : "ऐसा लगता है वे लोग स्वयं अपने से सोच-विचार करने से डरते हैं। औरों के विचारों के साथ आराम से बैठ जाना अपेक्षाकृत आसान है... मां, हम दोनों को हर हालत में साथ-साथ रहना है और बाकी कुछ मायने नहीं रखता।"

परंतु थियोसोफिकल सोसाइटी की वेल्स शाखा के जनरल सेक्रेटरी पीटर फ्रीमन, एम.पी., के अनुसार : "उन्होंने ('के' ने) हमें बताया कि वह अपने जीवन में थियोसोफिकल सोसाइटी की कोई भी किताब पढ़ने में असमर्थ रहे हैं—थियोसोफी के

“वाग्जाल” को वह कभी नहीं समझ सके। यद्यपि उन्होंने थियोसोफी के अनेकव्याख्यान सुने हैं लेकिन उनमें से किसी में भी उन्हें उनके सत्य के ज्ञान की प्रतीति नहीं हुई।”[30]

‘विलर्स’ प्रवास के बाद ‘के’ पेरिस गए। वहां उन्होंने मूर्तिकार अंटोनी बोर्डेल के सामने बैठने का वायदा किया था। छियासठ साल के बोर्डेल ‘के’ पर तुरंत मुग्ध हो गए : “कृष्णमूर्ति को सुनते हुए आश्चर्यचकित हो जाना पड़ता है... इतना युवा व्यक्ति और इतनी अधिक प्रज्ञा... कृष्णमूर्ति एक महान संत हैं और यदि मैं पंद्रह साल का होता तो मैं उनके पीछे हो लेता।”[31*]

‘के’ उपस्थित नहीं थे जब 3 अक्टूबर को लंदन के एक रजिस्ट्री कार्यालय में राजगोपाल और रोज़ालिंड का विवाह हुआ, और इसके बाद सेंट मैरी लिबरल कैथलिक चर्च में एक धार्मिक अनुष्ठान संपन्न किया गया। श्रीमती बेसेंट ने रोज़ालिंड का कन्यादान किया। श्रीमती बेसेंट ने ही विवाह का प्रस्ताव रखा था, ताकि बिना किसी आपत्ति के रोज़ालिंड ‘के’ के साथ यात्रा कर सके, हालांकि राजगोपाल स्वयं उसके प्रेम में गहरा डूबा था। ओहाय का ‘आर्य विहार’ इन दोनों का घर बनने वाला था। इस विवाह के बारे में ‘के’ की क्या राय थी, इसकी कोई स्मृति ‘के’ को नहीं रही। हालांकि तब तक विवाह को लेकर उनकी सोच बदल चुकी थी; इसे अब वह किसी आपदा के रूप में नहीं मानते थे।

---

[*] ‘ऑर्डर ऑव द स्टार इन द ईस्ट’ की 1926 की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार चालीस देशों में स्टार के सदस्यों की संख्या 43,000 थी। इसमें से दो तिहाई सदस्य ऐसे थे जो थियोसोफिकल सोसाइटी के भी सदस्य थे।

[*] उनकी पहली कविता ‘हिम ऑव द इनीशिएट ट्रायम्फैंट’ जनवरी 1923 के हेरल्ड में छपी थी। 1931 में उन्होंने कविताएं लिखना बंद कर दिया था और तब तक करीब 60 कविताएं हेरल्ड में और किताब के रूप में अलग छप चुकी थीं।

[*] श्रीमती बेसेन्ट ने अप्रैल के ‘थियोसोफिस्ट’ में यह अपील करते हुए लिखा : ‘तिरेपन साल तक जनता के बीच काम करने के बाद जो मुझे ख्याति मिली है, उसको और अपने सारे आर्थिक भविष्य को, मैं इस नये जोखिम के लिए दांव पर लगा रही हूँ।’

[*] बोर्डेल द्वारा बनाई गई ‘के’ की अर्धप्रतिमा (‘बस्ट’) उनकी सबसे अच्छी कलाकृतियों में से एक मानी गई है। अब यह पेरिस के बोर्डेल म्यूजियम में सुरक्षित है।

9

आपकी बैसाखी बनने से मैं इनकार करता हूँ

सन् 1927 के अक्टूबर महीने में 'के' श्रीमती बेसेंट के साथ भारत गए। 27 अक्टूबर को बंबई पहुंचने पर श्रीमती बेसेंट ने 'के' के बारे में पत्रकारों को यह वक्तव्य दिया : 'मैं इस बात की साक्षी हूँ कि उन्हें इस योग्य पाया गया है कि उनकी चेतना 'विश्वशिक्षक' की सर्वव्यापी चेतना के एक अंश में विलीन हो सके... और अब वह आप लोगों के पास वापस आ गए हैं, अपने लोगों के पास, अपनी प्रजाति के बीच, हालांकि वह दोनों से परे हैं क्योंकि वह संपूर्ण विश्व के हैं।'

भारतीयों पर इस वक्तव्य के असर का अनुमान लगाया जा सकता है जो स्वभावतः साष्टांग प्रणाम करने और पूजा-अर्चना के लिए तैयार रहते हैं। जबकि अरुंडेल ने 'थियोसोफी इन इंडिया' में एक लेख लिखा जिससे पता चलता है कि 'के' को उस समय किस मुश्किल स्थिति का सामना करना पड़ा था, और साथ ही इससे थियोसोफी के लोग कितने हैरान हुए थे : "हमारी अध्यक्ष इस बात की घोषणा करती रही हैं कि 'लार्ड' यहां पर हैं... अब इस वक्तव्य और मेरी अपनी जानकारी में संगति बिठा पाना मेरे लिए नामुमकिन हो रहा है... क्योंकि जहां तक 'लॉर्ड' के बारे में मेरी जानकारी है, 'वह' तो अपने भव्य शरीर में मौजूद ही हैं।"

दिसंबर में होने वाले थियोसोफिकल कन्वेंशन के लिए लेडबीटर अड्यार में मौजूद थे। 8 तारीख़ को 'के' लेडी एमिली को लिखते हैं : "मेरी उनसे लंबी बातचीत हुई...वह मुझसे आश्चर्यजनक हद तक सहमत हैं। उन्होंने मुझसे पूछा कि मैं कैसा अनुभव करता हूँ, मैंने कहा कि कृष्णा का अस्तित्व नहीं रहा, उसी प्रकार जैसे नदी सागर में विलीन हो जाती है।* उन्होंने कहा, हां, जैसा कि पुराने ग्रंथों में है, यह सब सत्य है। वह बहुत ही सहृदय और अद्भुत रूप से श्रद्धापूर्ण लग रहे थे।"

जनवरी में 'के' लेडी एमिली को फिर यह बताते हुए लिखते हैं कि उनके सिर में इस दौरान अत्यधिक तकलीफ रही और वह कई बार मूर्च्छित भी हुए। यह तकलीफ उनका साथ अब शायद ही कभी छोड़ती थी, फिर भी भारत में उनके दौरों और वार्ताओं का क्रम जारी था। उन्हें इस बात से कुछ निराशा हुई कि लेडबीटर भी इस तकलीफ के जारी रहने

का कारण नहीं बता पा रहे थे। 'के' ने उस सारी दैहिक पीड़ा को स्वीकार कर लिया था जिससे होकर उन्हें गुज़रना पड़ा, यह मानकर कि ईश्वर इस देह को अधिकार में लेंगे इसलिए उसे तैयार किया जा रहा है। लेकिन अब जबकि वह उस 'परमप्रिय के साथ एकाकार' हो गए हैं फिर पीड़ा क्यों साथ चल रही है—यह बात 'के' को हैरान कर रही थी।

राजगोपाल रोज़ालिंड के साथ ओहाय में थे। इस समय 'के' के साथ यात्रा में उनके एक पुराने मित्र जदुनंदन प्रसाद (जदू) थे। पिछली गर्मियों में जदू पर्जिन और अर्ड की गैदरिंग में भी मौजूद थे। जदू एक आकर्षक युवक थे—स्वभाव से राजगोपाल की तुलना में वह नित्या के कहीं अधिक निकट थे, इसलिए 'के' स्वाभाविक रूप से उन्हें अपने अधिक नज़दीक पाते थे। फरवरी के अंत में उन्होंने 'के' के साथ यूरोप की वापसी की यात्रा भी की। बार-बार आग्रह किये जाने पर 'के' ने पहली बार किसी यात्रा में सहयात्रियों के साथ वार्तालाप भी किया।

31 मार्च को इंग्लैंड के 'फ्रैंड्स मीटिंग हाउस' में 'के' ने पहली बार सार्वजनिक वार्ता दी। उत्सुकता इतनी अधिक थी और लोग इतने हो गए थे कि जगह न मिलने पर सैकड़ों लोगों को वापस जाना पड़ा। इसके चार दिन बाद ही जदू और 'के' अमेरिका निकल गए। ओहाय घाटी के निचले आख़िरी हिस्से में श्रीमती बेसेंट ने एक ज़मीन खरीदी थी जिसमें कैलिफोर्निया के सदाबहार ओक का एक बगीचा था, मई में वहां स्टार का पहला कैंप होने जा रहा था। पर कैंप से पहले अमेरिका में 'के' की पहली सार्वजनिक वार्ता हुई। 5 मई की शाम को 'हॉलीवुड बोल' में 16000 लोग मौजूद थे और 'लॉस एंजिलिस टाइम्स' के अनुसार 'मुक्ति के द्वारा आनंद' विषय पर 'के' के व्याख्यान को वे तन्मय होकर सुन रहे थे।

केवल एक हज़ार लोगों ने ओहाय के पहले कैंप में हिस्सा लिया। फिर भी यह बहुत अधिक सफल रहा। 'के' की प्रातःकालीन वार्ताएं ओक के बगीचे में होती थीं। कैंप खत्म होने के दो दिन बाद 30 मई को 'के', राजगोपाल और जदू इंग्लैंड चले गए। रोज़ालिंड ओहाय में ही रुकी। श्रीमती बेसेंट भी उसी समय इंग्लैंड पहुँचीं और 'के' उनके साथ पेरिस चले गए। वहाँ 27 जून को आयफल टॉवर रेडियो स्टेशन से 'आनंद का रहस्य' विषय पर उनका एक व्याख्यान फ्रेंच में प्रसारित हुआ। उस दिन अनुमानतः बीस लाख लोगों तक उनकी बात प्रसारित हुई थी।

ओमन कैंप से पहले कासल अर्ड में अब तक का सबसे बड़ा सम्मेलन आयोजित हुआ। एक और विशाल खलिहान को, बाड़े को रहने के स्थान में तब्दील कर दिया गया था ताकि स्टार के सदस्यों के अलावा भी लोग सम्मेलन में हिस्सा ले सकें। लिओपोल्ड स्टोकोवस्की अपनी पत्नी के साथ कुछ दिनों के लिए आए, रायटर्स के चेअरमैन सर रॉडरिक जोंस भी अपनी लेखिका पत्नी एनिड बैगनॉल्ड के साथ आए। अलग-अलग देशों में 'के' के अब अनगिनत मित्र हो गए थे, विशेषकर पेरिस में रह रहे इजिप्ट के एक दंपति (कार्लो और नादिने सुआरेस) सालों तक 'के' के काफी करीबी मित्र बने रहे।

'के' के विशेष आग्रह पर—जिसे 'के' ने एक बहुत ही स्नेहपूर्ण पत्र लिखकर प्रकट किया था—श्रीमती बेसेंट ओमेन कैंप में आने वाली थीं लेकिन उनकी बीमारी ने उन्हें रोक लिया। हालांकि 'के' उनकी सेहत को लेकर बहुत चिंतित थे फिर भी उनकी अनुपस्थिति में 'के' वह सब कुछ कह पाये जो वह कहना चाहते थे, बिना उनके आहत हो जाने के भय के। कैंप शुरू होने से पहले आयोजकों से 'के' ने बोल दिया कि वह ऑर्डर ऑव द स्टार को तत्काल भंग कर देंगे अगर ऐसी घोषणा की गई कि परम और एकमात्र सत्य केवल इसी के कब्ज़े में है। बैठकों के दौरान 'के' से तमाम तरह के सवाल किए जाते : 'क्या यह सही है कि आप शिष्य नहीं चाहते?'; 'विधि-विधान और अनुष्ठानों के बारे में आप क्या सोचते हैं?'; 'आप हमसे ऐसा क्यों कहते हैं कि सत्य के मार्ग पर अलग-अलग चरण नहीं हैं?' 'आप हमसे कहते हैं कोई ईश्वर नहीं है, कोई नैतिक विधान, अच्छा या बुरा नहीं है, तब फिर आपकी शिक्षा और सामान्य भौतिकतावाद में क्या फ़र्क है?'; 'क्या आपका क्राइस्ट के रूप में पुनरागमन हुआ है?' 'के' ने जो जवाब दिए उनके अंशों से यह पता चलता है कि उन लोगों ने 'के' को कितना कम समझा था :

> मैं फिर कहता हूँ कि मेरे कोई शिष्य नहीं हैं। आपमें से हर कोई 'सत्य' का शिष्य है—अगर आप 'सत्य' को समझते हैं और व्यक्ति विशेष का अनुकरण नहीं करते हैं... सत्य आपको आस नहीं बंधाता, वह आपको समझ देता है... व्यक्तित्व की पूजा में कोई समझ नहीं है...मैं अब भी कहता हूँ कि आध्यात्मिक विकास में सभी तरह के अनुष्ठान अनावश्यक हैं... यदि आप 'सत्य' का पता लगाना चाहते हैं तो आपको बाहर आना होगा, मानवीय मन-मस्तिष्क की सीमाओं से बहुत आगे और वहीं ढूंढना होगा उसे—और वह 'सत्य' आपके अपने भीतर ही है। क्या यह अधिक सरल नहीं होगा कि आप स्वयं 'जीवन' को ही अपना लक्ष्य बनाएं बजाय इसके कि आप मध्यस्थों, गुरुओं के पास जाएं जो सत्य को अनिवार्यतः नीचे के पायदान पर उतार लाते हैं और इस तरह सत्य के साथ विश्वासघात करते हैं?...मेरा कहना है कि मुक्ति विकास की किसी भी अवस्था में पाई जा सकती है—उस मनुष्य द्वारा जो गहरी समझ रखता है, और यह आवश्यक नहीं है कि भिन्न-भिन्न अवस्थाओं की उपासना की जाए जैसा कि आप लोग किया करते हैं। ...आप आगे चलकर मेरा ज़िक्र किसी अधिकारी सत्ता के रूप में न करें। आपकी बैसाखी बनने से मैं इनकार करता हूँ। आपकी पूजा-अर्चना के लिए मैं अपने को किसी भी पिंजरे में कैद करने नहीं जा रहा हूँ। पहाड़ों की ताज़ी हवा को लाकर अगर आप किसी छोटे-से कमरे में बंद करना चाहेंगे तो उसकी ताज़गी खत्म हो जाएगी और वहां सड़ांध पैदा होगी... मैंने यह कभी नहीं कहा कि ईश्वर नहीं है। मैंने कहा है कि ईश्वर का अस्तित्व केवल उसी रूप में है जिसमें वह आपके भीतर प्रकट हुआ है। लेकिन मैं ईश्वर शब्द का प्रयोग नहीं करने वाला हूँ... मैं इसे 'जीवन' कहना चाहूँगा...हाँ यह सही है कि न कुछ अच्छा है और न बुरा। अच्छा वह है जिससे आपको भय नहीं लगता, और बुरा वह जिससे आपको भय लगता है। इसलिए अगर आप भय

> का नाश करते हैं तो आध्यात्मिक रूप से परितृप्त होते हैं...जब आप जीवन से प्रेम करते हैं और उस प्रेम को हर चीज़ से पहले रखते हैं और उसी प्रेम से सब कुछ आंकते हैं, न कि अपने भय से, तब वह जड़ता जिसे आप नैतिकता कहते हैं समाप्त हो जाती है... मित्रो, मैं कौन हूँ इससे सरोकार न रखें; आप यह कभी नहीं जान पाएंगे... क्या आपको लगता है कि 'सत्य' का इस बात से कुछ लेना-देना है कि आप क्या सोचते हैं कि मैं कौन हूँ? तब आपका सरोकार 'सत्य' से नहीं होता बल्कि उस पात्र से होता है जिसमें 'सत्य' मौजूद है...अगर जल स्वच्छ है तो उसे पी लीजिए—मैं आपसे कहता हूँ कि मेरे पास वह स्वच्छ जल है; मेरे पास वह मलहम है जो पावन करने, नितांत स्वस्थ करने वाला है; और आप मुझसे पूछते हैं कि मैं कौन हूँ—मैं सभी कुछ हूँ, क्योंकि मैं 'जीवन' हूँ।[32]

सम्मेलन का समापन 'के' ने इन शब्दों के साथ किया : 'इन शिविरों में हज़ारों लोगों ने हिस्सा लिया है और अगर गहराई से उन लोगों ने कुछ समझ लिया है तो वे विश्व में क्या नहीं कर सकते हैं! वे कल ही पूरे विश्व की तस्वीर बदल सकते हैं।'

श्रीमती बेसेंट अब अस्सी साल की थीं। उनकी वृद्धावस्था का यह बड़ा निराशा-भरा काल था। परस्पर विरोधी चीज़ों में संगति बैठाने की कोशिश में वह लगी हुई थीं। 'के' जो कुछ कह रहे थे उससे तालमेल बैठाने के लिए उन्होंने विश्व भर के 'एसोटेरिक सेक्शन' को बंद कर दिया। यह उन्होंने अक्टूबर 1928 में भारत पहुँचने से पहले किया। (वह इसे एक साल के भीतर ही फिर खोल देने वाली थीं।) श्रीमती बेसेंट के इस कदम को 'के' ने भीतर से बहुत सराहा। जब 'के' अड्यार पहुंचे तो श्रीमती बेसेंट उनसे मिलने नहीं जा सकीं, पर उन्होंने अपने पत्र में ज़रूर लिखा—"प्रिय...मैं अनिश्चित काल के लिए 'एसोटेरिक सेक्शन' को पूरी तरह स्थगित कर रही हूँ, शिक्षा का सारा दायित्व तुम पर छोड़ती हूँ।" इसके अगले दिन उन्होंने लिखा—"घर में स्वागत है प्रिय! तुम ही एकमात्र प्रामाण्य हो—तुम्हारे लिए स्थितियाँ अवरोधमुक्त रखने की मैंने पूरी कोशिश की है।"[33] जैसा कि 'के' ने लेडी एमिली को बताया, श्रीमती बेसेंट की इच्छा थी कि वह थियोसोफिकल सोसाइटी के अध्यक्ष पद से इस्तीफा दे दें, ताकि वह हर जगह 'के' का अनुसरण कर सकें, लेकिन उनके मास्टर ने उन्हें ऐसा करने की अनुमति नहीं दी। भारत में उस दौरान जितनी भी मीटिंग हुईं श्रीमती बेसेंट का यह लगातार आग्रह रहा कि वह बाकी लोगों के साथ ज़मीन पर ही बैठेंगी—पहले वह हमेशा 'के' के साथ मंच पर ही बैठती थीं। लेकिन इसके साथ-साथ वह अरुंडेल के साथ भी थीं जो 'के' से कह रहे थे—जैसा कि 'के' ने लेडी एमिली को बताया—"आप अपने रास्ते जाइए, हम अपने रास्ते जाएंगे। मेरे पास भी सिखाने के लिए कुछ है।" श्रीमती बेसेंट ने लेडबीटर का भी समर्थन किया जिन्होंने उनको यह लिखा : "यह सही है कि हमारे कृष्णजी को 'लॉर्ड' की सर्वज्ञता हासिल नहीं है..." दिसंबर के 'थियोसोफिस्ट' में श्रीमती बेसेंट ने लिखा—"कृष्णमूर्ति की भौतिक चेतना में लॉर्ड मैत्रेय की सर्वज्ञता शामिल नहीं है..." उन्होंने भगवान श्री कृष्ण की इस उक्ति को भी उद्धृत किया—"मानवजाति मेरे पास अनेक मार्गों से आती है।" 'के' ने

लेडी एमिली को लिखा कि अब उनके और थियोसोफिकल सोसाइटी के बीच 'स्पष्ट विभाजन' का समय आ गया है जो कि 'इस प्रकार के ढोंग से कहीं बेहतर होगा'। 'के' के सिर और रीढ़ की हालत बहुत खराब थी और मदद करने की स्थिति में पहले की तरह अब कोई भी न था।

इस साल 'के' जब बनारस में थे, तो 'ऋषिवैली ट्रस्ट' ने सैन्य अधिकारियों से राजघाट फोर्ट पर तीन सौ एकड़ ज़मीन हासिल कर ली। बनारस के उत्तर में गंगा के किनारे यह बड़ी ख़ूबसूरत जगह थी। इस जगह से होकर तीर्थयात्रा का एक मार्ग जाता है जो प्राचीन काशी और सारनाथ को जोड़ता है। सारनाथ वह स्थान है जहां भगवान बुद्ध ने संबोधि प्राप्त होने के बाद अपना पहला उपदेश दिया था। ट्रस्ट की सारी पूंजी इस जगह पर खर्च होने जा रही थी।

1929 की फरवरी में 'के' और जदू यूरोप के लिए पानी के जहाज़ से निकल गए। पेरिस, अर्ड और लंदन में थोड़ा-थोड़ा रुकते हुए वे न्यूयॉर्क पहुंचे। लंदन में मैंने 'के' को बता दिया था कि मेरी सगाई हो गई है। जहाज़ से उन्होंने लेडी एमिली को लिखा : "शुरू में इस सबको लेकर मैं सच में चिंतित था—आपको पता है क्यों—लेकिन जब मैं आपके साथ था तो मैंने इस पर सावधानी से सोच-विचार किया और अब सब ठीक है। मेरी के विकास में मेरे दृष्टिकोण और विचार द्वारा बाधा बिल्कुल नहीं पहुंचनी चाहिए। ऐसे लोग बहुत थोड़े होंगे जो मेरे साथ पूरा रास्ता तय कर सकेंगे। मैं आशा करता हूँ कि इस सबसे गुज़रने के बाद वह एक पूर्ण विकसित पुष्प की तरह खिलकर निकले।" उसी दिन 5 मार्च को उन्होंने मार डी मेंज़िअर्ली को लिखा—"मैं कभी किसी को नहीं छोड़ूंगा, लेकिन सब मुझे छोड़ देंगे।" पुराने मित्रों में केवल एक मार थी जो उनकी मृत्यु तक उनका अनुसरण करती रही। मैडम डी मेंज़िअर्ली ने अपनी ऊर्जा का निकास विश्वव्यापी ईसाई एकता संबंधी आंदोलन में पा लिया; रूथ का विवाह पहले ही लिबरल कैथलिक चर्च के एक पादरी से हो चुका था; 'के' और हेलन दूर होते गये (1930 के करीब उसका विवाह स्कॉट नियरिंग से हो गया); मेरी बहन बेट्टी उनकी तीखी विरोधी हो गई; आगे चलकर राजगोपाल भी उनसे अलग हो गया। हालांकि पुराने लोगों में ऐसे कई थे जो अपनी मृत्यु तक उनके साथ रहे। और बाद में भी उनके जीवन में ऐसे कई लोग आए जो उनकी मृत्यु के बाद भी वफादार बने रहे, लेकिन इसके अलावा कुछ ऐसे भी लोग थे जो ज़्यादातर ईर्ष्या और आहत भावनाओं के कारण उनके विरोध में चले गए। शुरुआती दिनों में जब वह लोगों से ऐसा कुछ कहते जो उन्हें पसंद होता तो वे लोग कहते कि यह 'लॉर्ड' हैं जो उनके माध्यम से बोल रहे हैं—और जब वह उनकी पसंद के खिलाफ बोलते तो उनका मानना होता कि यह 'के' बोल रहे हैं। इसी तरह आगे चलकर जब वह ऐसा कुछ बोलते जो लोगों के मन के प्रतिकूल होता, तो उन पर इल्ज़ाम लगाया जाता कि वह किसी के प्रभाव में हैं।

'के' की इस निश्चितता के बावजूद कि वह 'परमप्रिय' के साथ एकाकार हैं, उनका मानवीय पक्ष उनसे कभी नहीं दूर हुआ। उस साल ओहाय में उन्होंने, राजगोपाल ने, और

जदू ने आपस में खूब बातें कीं, लड़े, गुस्सा हुए, जैसा कि ‘के’ ने लेडी एमिली को बताया। वे लोग खूब हँसे भी, एक-दूसरे को बेवकूफ भी बनाया और तंग भी किया। राजगोपाल की यादगार हँसी थी—कुछ दबी हुई पर तेज, जबकि ‘के’ की हँसी ज़ोरदार और गहरी थी। वह अपनी सारी ज़िंदगी शर्मीले बने रहे। अपरिचितों के आकर्षण का केंद्र बनने, उनसे घुलमिल कर बातचीत करने में उन्हें झिझक महसूस होती। लंदन में हमारे घर पर और श्रीमती बेसेंट के साथ भी वह जॉर्ज बर्नार्ड शॉ से मिल चुके थे। शॉ ने उन्हें अब तक उनकी निगाह में आए सबसे खूबसूरत मनुष्य के रूप में घोषित किया था।[34] पर ‘के’ इतने शर्मीले थे कि उनसे शायद ही कभी बातचीत कर पाए।

शारीरिक तौर पर ‘के’ पूर्णतया एक सामान्य व्यक्ति थे। ‘के’ को ऐसे वातावरण में बड़ा किया गया था जहां यह माना जाता था कि जो मास्टर के शिष्य बनने की तैयारी कर रहे हैं, उनमें यौन ऊर्जा का परिष्कार (ऊर्ध्वगमन) होना चाहिए, ख़ासकर उसमें तो ज़रूर जो ‘लॉर्ड’ का माध्यम बनने जा रहा हो। सेक्स को लेकर ऐसी असहिष्णुता बाद में उनमें बिल्कुल नहीं रही थी; हालांकि उन्होंने इसे कभी ऐसे मसले के रूप में नहीं देखा जिसे लेकर समस्या बनायी जाए। उनकी शक्ल-सूरत कुछ ऐसी थी कि यह नामुमकिन था कि स्त्रियां उनके प्यार में न पड़ें। एक-दो दीवानी स्त्रियां ऐसी भी थीं जो उनकी पत्नी होने का दावा करती रहीं। और जब कभी सार्वजनिक रूप से वह किसी स्त्री के साथ दिख जाते तो अखबार में तुरंत सगाई की ख़बर आ जाती।[*]

उस साल (1929) ओहाय कैंप से पहले छह हफ्तों के दौरान ‘के’ के सिर और रीढ़ की हालत बहुत खराब रही। वह इतना थका हुआ महसूस कर रहे थे कि एक नये डॉक्टर ने उन्हें चेतावनी दे दी कि अगर उन्होंने आराम नहीं किया तो बीच-बीच में जो ब्रोंकाइटिस के दौरे पड़ते हैं वे उन्हें टी.बी. की बीमारी तक ले जा सकते हैं। इस पर उन्होंने ग्रीष्म काल की अपनी सारी वार्ताएं रद्द कर दीं—इसमें लंदन में क्वीन्स हॉल के तीन व्याख्यान भी शामिल थे। अपने को उन्होंने ओहाय, ओमन कैंप और अर्ड गैदरिंग तक ही सीमित करने का फैसला किया।

ओहाय कैंप 27 मई को शुरू हुआ। इसके सहभागियों की संख्या अब दूनी हो गई थी। ओक ग्रोव की अपनी एक वार्ता में उन्होंने कहा : “मैं अब बिना किसी अहंकार के, समुचित समझ और मन-मस्तिष्क की समग्रता के साथ, कहता हूँ कि मैं ही वह पूर्ण ज्वाला हूँ जो जीवन का वैभव है और जिस तक सारे मनुष्यों और सारे संसार को आना है।”[35] कैंप में यह अफवाह फैल गई थी कि वह शीघ्र ही ऑर्डर ऑव द स्टार को भंग करने वाले हैं। कुछ सप्ताह बाद उन्होंने यह कर भी दिया। 3 अगस्त को ओमन कैंप की पहली बैठक में, श्रीमती बेसेंट की मौजूदगी में, 3000 ‘स्टार’ के सदस्यों के सामने (हज़ारों डच लोग उन्हें रेडियो पर भी सुन रहे थे) उन्होंने अपने ही इतिहास के एक युग का अवसान कर दिया। जो उन्होंने कहा उसका एक अंश यहां दिया जा रहा है :

मैं यह मानता हूँ कि सत्य एक मार्गरहित भूमि है, और आप किसी भी मार्ग द्वारा,

किसी भी धर्म या संप्रदाय के ज़रिये उस तक नहीं पहुंच सकते। यह मेरा दृष्टिकोण है और मैं इस पर निपट रूप से, बिना किसी शर्त के अडिग हूँ... अगर आप यह समझ लेते हैं तो आपको पता चलेगा कि किसी विश्वास को संगठित कर पाना कितना कठिन है। विश्वास नितांत एक व्यक्तिगत मामला है, और आप इसे संगठित नहीं कर सकते और आपको ऐसा करना भी नहीं चाहिए। अगर आप ऐसा करते हैं तो यह जड़ हो जाता है, मृत, यह एक मत, संप्रदाय या धर्म में तब्दील हो जाता है जिसे दूसरों पर थोपा जा सके।

सारे संसार में हर व्यक्ति यही करने की कोशिश कर रहा है। सत्य को संकीर्ण बना दिया जाता है और जो कमज़ोर हैं, क्षणिक तौर पर असंतुष्ट हैं उन्हें खिलौने की तरह उसे पकड़ा दिया जाता है। सत्य को नीचे नहीं लाया जा सकता, बल्कि व्यक्ति को उस तक स्वयं पहुंचने का प्रयास करना पड़ता है। पर्वत की चोटी को आप घाटी में नहीं उतार सकते... तो मेरी दृष्टि में यह पहला कारण है कि ऑर्डर ऑव द स्टार को क्यों भंग किया जाना चाहिए। इसके बावजूद संभव है कि आप अन्य किसी 'ऑर्डर' का निर्माण कर लें, सत्य की खोज में लगे अन्य संगठनों से आप जुड़े रहें। आध्यात्मिक किस्म के किसी संगठन से मैं जुड़ना नहीं चाहता, कृपया इसे समझ लें...

अगर किसी ऐसे उद्देश्य के लिए संगठन का निर्माण किया जाता है तो वह एक बैसाखी, कमज़ोरी या बंधन बन जाता है और वह व्यक्ति को अपंग बना देता है, उसे विकसित होने से, उसकी अद्वितीयता को खिलने से रोक देता है। यह अद्वितीयता है स्वयं ही उस परम, अप्रतिबंधित सत्य की खोज करना। 'ऑर्डर' का प्रमुख होने के नाते इसे भंग करने के मेरे निर्णय का यह दूसरा कारण है।

यह कोई बहुत बड़ा काम नहीं है। यह सीधी सी बात है कि मैं अनुयायी नहीं चाहता—और मुझे पता है मैं क्या कह रहा हूँ। जैसे ही आप किसी का अनुकरण करने लगते हैं सत्य से आपका नाता टूट जाता है। मुझे इससे सरोकार नहीं है कि मैं जो कह रहा हूँ उसकी ओर आप ध्यान देते हैं या नहीं। मैं इस दुनिया में एक विशेष कार्य करना चाहता हूँ और मैं इसे अडिग एकाग्रता के साथ करने जा रहा हूँ। मैं अपने-आप को सिर्फ एक अत्यावश्यक चीज़ से जोड़ रहा हूँ, और वह है मनुष्य को मुक्त करना। मैं उसे सारे पिंजरों से मुक्त कर देना चाहता हूँ, सभी प्रकार के भय से, ताकि वह अलग-अलग धर्मों, संप्रदायों, सिद्धांतों और दर्शनशास्त्रों की खोज में न लगा रहे। तब आप मुझसे स्वाभाविक रूप से पूछेंगे कि क्यों मैं लगातार बोलता हुआ सारी दुनिया का चक्कर लगाता हूँ। मैं आपको बताऊंगा किस कारण से मैं ऐसा करता हूं—इसलिए नहीं कि मैं अनुयायी चाहता हूं, या कुछ विशेष शिष्यों का एक विशेष समूह। मेरा कोई शिष्य, कोई धर्मदूत नहीं है, न इस धरती पर और न ही अध्यात्म के आयाम में।

न तो मुझे धन का प्रलोभन है और न ही एक आरामदायक ज़िंदगी जीने की

इच्छा का खिंचाव है। अगर मुझे आरामदायक ज़िंदगी ही जीनी होती तो मैं इस कैंप में क्यों आता या किसी सीलन भरे देश में क्यों रहता! मैं साफ-साफ बोल रहा हूँ ताकि चीज़ें हमेशा के लिए साफ हो जाएं। मैं नहीं चाहता कि इन बचकानी चर्चाओं को बार-बार दुहराया जाए।

मेरा साक्षात्कार लेने वाले एक पत्रकार ने इसे एक बड़ा शानदार कार्य बताया : एक ऐसे संगठन को भंग कर देना जिसमें हज़ारों-हज़ारों सदस्य हों। उसके अनुसार यह एक महान काम था क्योंकि उसने कहा—'इसके बाद आप क्या करेंगे, कैसे जिएंगे? आपके कोई अनुयायी नहीं होंगे, लोग आपको सुनेंगे नहीं।' लेकिन अगर पांच लोग भी हों जो वास्तव में सुनने वाले, जीने वाले, सत्य की ओर अभिमुख हों तो मैं समझता हूं काफी है। ऐसे हज़ारों लोगों से क्या फायदा जो समझते नहीं हैं, जो पूरी तरह पूर्वाग्रहों से लिपटे हुए हैं, जो नये की इच्छा नहीं रखते बल्कि नये की व्याख्या अपने प्राणविहीन और जड़ अहम् के अनुसार बदल देते हैं!...

आप अठारह वर्षों से विश्व-शिक्षक के आगमन की तैयारी कर रहे हैं। अठारह वर्षों से आप संगठन का कार्य करते आए हैं और किसी ऐसे व्यक्ति का इंतज़ार जो आपके दिलो-दिमाग को एक नयी खुशी से भर दे, जो आपकी समूची ज़िंदगी को बदल दे, जो आपको एक नयी समझ दे दे, जो आपको जीवन के एक नये स्तर तक उठा दे, और जो आपको मुक्त कर दे—किंतु देखिए, हो क्या रहा है? सोचिए, अपने आप से तर्क करिए और पता लगाइए कि उस विश्वास ने आपको किस तरह वास्तव में बदला है—बैज लगा लेने भर का सतही, तुच्छ और अर्थहीन बदलाव नहीं। बल्कि आपको देखना है कि क्या उस विश्वास ने आपके जीवन में से अर्थहीन और अनावश्यक चीज़ों को बाहर निकाल फेंका है? बस यही एक तरीका है पता लगाने का : किस हद तक आप मुक्त हैं, मिथ्या एवं अनावश्यक चीज़ों पर आधारित प्रत्येक समाज के लिए आप किस हद तक ख़तरनाक हैं? किस तरह से 'स्टार' संगठन के सदस्य औरों से भिन्न हैं?...

आप अपनी आध्यात्मिकता, अपनी खुशी, अपने बोध के लिए किसी और पर आश्रित हैं...और जब मैं कहता हूँ कि बोध के लिए, उस महिमा के लिए, निर्मलता और स्व की निष्कलुषता के लिए अपने भीतर झांकिए तो आपमें से कोई भी इसके लिए तैयार नहीं होता। हो सकता है कुछ लोग हों, पर वे बहुत थोड़े-ही लोग होंगे। तो, संगठन की क्या ज़रूरत है?...

आप टाइपराइटर का इस्तेमाल चिट्ठियां लिखने के लिए करते हैं, उसे आप वेदी पर रखकर पूजते नहीं। लेकिन जब संगठन आपके मुख्य सरोकार बन जाते हैं तब आप यही करने लगते हैं। सारे अखबार के संवाददाता मुझसे पहला सवाल यही करते हैं कि आपके संगठन में कितने सदस्य हैं। मुझे नहीं पता कितने हैं और मुझे उससे कुछ लेना-देना भी नहीं है...आप इसके आदी हो चुके हैं कि आपको

बताया जाए कि आपकी कितनी तरक्की हुई है, आपका आध्यात्मिक ओहदा क्या है। यह सब कितना बचकाना है! आपके अलावा और कौन बता सकता है कि आप निष्कलुष हैं या नहीं?

लेकिन वे लोग जो वास्तव में गहराई से समझना चाहते है, जो आदि-अंत से परे शाश्वत की खोज में हैं, वे बड़ी मात्रा में ऊर्जा लिये हुए एक साथ चलेंगे और हर ऐसी चीज़ के लिए ख़तरा बन जाएंगे जो अनावश्यक, मिथ्या और असत्य है...एक ऐसा समूह हमें अवश्य बनाना चाहिए, और यही मेरा उद्देश्य है। उस सच्ची मैत्री के कारण, जिसका आपको शायद पता नहीं है, हर व्यक्ति वास्तविक सहयोग की भूमिका में होगा। और यह किसी सत्ता या मोक्ष की मान्यता के कारण नहीं होगा, बल्कि इसीलिए होगा कि आप बहुत गहराई से समझ रहे हैं, और इस कारण शाश्वत में जीने के काबिल हैं। सारे सुख-भोग और हर बलिदान से यह कहीं अधिक बड़ी बात है।

तो ये कुछ कारण हैं जिन पर दो साल तक सावधानीपूर्वक सोच-विचार करने के बाद मैंने यह निर्णय लिया है। यह क्षणिक आवेश में नहीं हुआ है। मुझे इसके लिए किसी ने प्रेरित नहीं किया है, और मुझे कोई प्रेरित कर भी नहीं सकता। दो सालों से मैं इस पर सावधानी से, धैर्य से विचार करता आया हूँ और अब मैंने 'ऑर्डर' को भंग करने का निश्चय किया है। आप और संगठनों का निर्माण कर सकते हैं, किसी और से उम्मीद बांध सकते हैं। मुझे उससे कोई सरोकार नहीं है; नये पिंजरों के निर्माण से, उनकी नयी सजावटों से मेरा कोई वास्ता नहीं है। मेरा केवल एक ही सरोकार है—मनुष्य को पूर्णतया, बिना किसी शर्त के मुक्त कर देना।[36]

---

* पूर्वी दर्शन की मान्यता के अनुसार हमारा 'स्व' कई जन्मों की सुदूर लम्बी यात्रा करने के बाद विकासकाल के अंत में जीवन की नदी को छोड़कर निर्वाण के सागर में समा जाता है।

* न्यूयॉर्क के अखबारों में हेलेन नोथ के साथ उनकी सगाई की ख़बर छपी थी। और 1927 में मेरे साथ 'के' की सगाई की एक घोषणा को मेरे पिता ने किसी तरह रोका था।

10

मैं अपनी राह जा रहा हूँ

ऑर्डर के भंग हो जाने के बाद कासल अर्ड और इसकी सारी भूमि—उस 400 एकड़ के अलावा जिस पर कैंप खड़ा किया गया था—बैरन वान पैलेंड को लौटा दी गई। इसके साथ ही आस्ट्रेलिया की भू-संपदाओं और सिडनी बंदरगाह के किनारे एंफीथिएटर को उनके दानदाताओं को वापस कर दिया गया। इसके बावजूद 'के' श्रीमती बेसेंट के साथ अड्यार गए और उनकी ख़ातिर उन्हें यह महसूस नहीं होने दिया कि थियोसोफिकल सोसाइटी के साथ उनका कोई वास्ता नहीं है। लेकिन साल के खत्म होने से पहले जब श्रीमती बेसेंट ने 'एसोटेरिक सेक्शन' को फिर खोल दिया, तब 'के' ने सोसायटी से इस्तीफ़ा दे दिया। इस सबके बावजूद उन दोनों का एक-दूसरे के लिए प्रेम कभी डांवाडोल नहीं हुआ। 1930 की फरवरी में श्रीमती बेसेंट को 'मेरी अपनी प्यारी मां' संबोधित करते हुए 'के' ने लिखा—"मैं जानता हूँ लेडबीटर मेरे ख़िलाफ हैं और मुझे इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। लेकिन आपसे गुज़ारिश है कि मैं जो कह रहा हूँ उससे आप चिंतित न हों। यह सब तो होना ही था और एक तरह से यह ज़रूरी था। मैं नहीं बदल सकता और मैं समझता हूँ वे भी नहीं बदल सकते, और इसीलिए द्वंद्व है। इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता कि लाखों लोग क्या कहते हैं और क्या नहीं कहते, लेकिन मैं जो हूँ उसके प्रति मैं निश्चित हूँ और मैं अपनी राह जा रहा हूँ।"

सिडनी में लेडबीटर अब कह रहे थे कि विश्व-शिक्षक का आगमन ग़लत दिशा में चला गया। उधर अरुंडेल कह रहे थे कि थियोसोफी के सर्वधर्म देवालय में 'के' को भी एक स्थान दे दिया जाएगा और इसके अलावा कुछ भी नहीं। राजा का कहना था कि 'के' की शिक्षा स्पेक्ट्रम के एक और रंग की तरह है। वेजवुड ने श्रीमती बेसेंट को अस्थिरचित्त करार देते हुए कहा कि उन पर भरोसा नहीं किया जा सकता क्योंकि उन्होंने कहा था कि 'के' की चेतना लॉर्ड मैत्रेय की चेतना के साथ एक हो चुकी है।[37]

ऑर्डर के विघटन से हज़ारों लोग दुखी थे। उनमें से एक लेडी दे ला वार थीं जिनकी मृत्यु 1930 में हुई। मिस डॉज अपनी मृत्यु तक यानी अगले पांच साल तक 'के' के प्रति निष्ठावान रहीं। जिस व्यक्ति को सबसे अधिक पीड़ा हुई वह शायद लेडी एमिली थीं और

इसके पीछे ऑर्डर का विघटन उतना बड़ा कारण नहीं था जितना कि 'के' की यह घोषणा कि वह अनुयायी नहीं चाहते। अठारह सालों से वह प्रतीक्षा कर रही थीं कि कब 'के' कहें —'मेरा अनुसरण करो', और वह खुशी-खुशी अपना घर-बार, पति सब छोड़ देतीं— लेकिन अब उनका अस्तित्व पूर्णतया निरुद्देश्य हो चुका था। अपनी आत्मकथा कैंडल्स इन द सन में उन्होंने लिखा—"कृष्णा के लिए व्यक्तिगत प्रेम से परे जाना संभव हो चुका था लेकिन मेरे लिए नहीं। ऐसा नहीं था कि वह प्यार नहीं करता था, लेकिन अब उसके लिए कोई भी व्यक्ति ज़रूरी नहीं रहा था। वह सार्वभौम प्रेम को प्राप्त हो चुका था। जैसा कि उसने स्वयं कहा था—'शुद्ध प्रेम गुलाब की सुगंध की तरह है जो सबके लिए है। सूरज इसकी परवाह नहीं करता कि वह किसको प्रकाश दे रहा है...सच्चा और शुद्ध प्रेम यह फर्क नहीं जानता कि कौन पत्नी है या पति, कौन बेटा है, कौन माता है या पिता'।" लेडी एमिली को लगा कि यह बात इतनी सैद्धांतिक मात्र और अव्यावहारिक है कि इससे उन लोगों को कुछ मदद नहीं मिल सकती जिन्हें संसार में अपनी पारिवारिक ज़िम्मेदारियों के साथ रहना है। उन्हें यहाँ तक लगा कि हकीकत में 'के' जीवन से भाग रहे हैं। 'के' ने बड़े धीरज के साथ उन्हें समझाने की कोशिश की। ओहाय से उन्होंने लिखा :

> मुझे दुख है कि मैं जो कह रहा हूँ उसके बारे में आपने ऐसा महसूस किया। जिस परम आनंद की अवस्था को मैं अनुभव करता हूँ वह इसी संसार में से उपजी है। मैं दुख को, आसक्ति और अलगाव की पीड़ा को, मृत्यु को, जीवन की निरंतरता को समझना चाहता था, उनका अंत कर देना चाहता था, हर उस चीज़ से परे निकल जाना चाहता था जिससे होकर प्रत्येक मनुष्य को हर दिन गुज़रना पड़ता है। मैं गहराई से समझना चाहता था और इस पर विजय पाना चाहता था। और मैंने विजय पा ली है। इसलिए परम आनंद की मेरी यह अवस्था वास्तविक और असीम है, यह पलायन नहीं है। इस निरंतर दुख-कष्ट से बाहर निकलने का रास्ता मैं जानता हूँ और मैं चाहता हूँ कि मैं दुख के इस दलदल से बाहर निकलने में लोगों की मदद कर सकूं। नहीं, यह पलायन नहीं है।

लेडी एमिली ने अब 'के' को बताया कि उन्हें इस बात से कितनी तकलीफ महसूस हुई कि उन्होंने 'के' को अपनी तरफ से निराश कर दिया है। इस पर 'के' ने जवाब दिया —"मेरी प्यारी मम्मी, यह कैसी बात आपने लिख दी, मैं आपसे 'निराश' नहीं हूँ। मैं जानता हूँ आपको किस हालत से होकर गुज़रना पड़ रहा है, लेकिन आप इसकी चिंता न करें... आप किस चीज़ को महत्त्व दे रही हैं केवल उसे बदलना पड़ेगा। हमारे पास किसी प्रकार के विश्वास और यहां तक कि विचार भी नहीं होने चाहिए क्योंकि ये हमें हर तरह की प्रतिक्रियाओं और प्रत्युत्तरों की तरफ ले जाते हैं...यदि आप सतर्क हैं, वर्तमान में हैं, धारणाओं और विश्वासों से मुक्त हैं तब आप निस्सीम होकर देख सकते हैं। यह अनुभूति ही आनंद है।" लेकिन विश्वासों और विचारों से मुक्ति की बात लेडी एमिली के लिए पहले से कहीं अधिक हैरान करने वाली और गूढ़ थी।

ओमन और ओहाय के सालाना कैंप अब जनता के लिए खुले हुए थे। आने वाले

लोगों की संख्या में कमी नहीं हुई क्योंकि ये कैंप अब श्रोताओं के एक अलग तरह के समूह को आकर्षित कर रहे थे जिनकी रुचि इस बात में थी कि 'के' क्या कह रहे हैं, न कि वह क्या हैं। और 'के' ऐसा ही चाहते थे। ओमन में अब 'के' एक कॉटेज में रहते थे जो उनके लिए बनायी गई थी (देवदार के वृक्षों के बीच कई लोगों ने झोपड़ियां बनवा ली थीं।) उनके कार्यों के लिए दान का आना जारी था। 'के' के सारे आर्थिक मामलों की ज़िम्मेदारी राजगोपाल ने ले ली थी, उनके दौरों की व्यवस्था और स्टार पब्लिशिंग ट्रस्ट से उनकी वार्ताओं का प्रकाशन भी वही देखते थे। इंटरनैशनल स्टार बुलेटिन का संपादन भी वही कर रहे थे।

1930 के ओमन कैंप के बाद 'के' ने राजगोपाल के साथ एथेंस, कॉन्सटेंटिनोपल और बुखारेस्ट की यात्रा की। इन सब जगहों पर 'के' को सार्वजनिक वार्ताओं के लिए आमंत्रित किया गया था। ऐथेंस से 'के' ने लेडी एमिली को लिखा : "पार्थोनोन से अधिक ख़ूबसूरत, सहज और प्रभावशाली वस्तु मैंने पहले कभी नहीं देखी। पूरा एक्रोपोलिस अद्‌भुत और आश्चर्यजनक है। और बाकी सारा कुछ जो मानवीय अभिव्यक्ति की प्रकृति के अंतर्गत आता है, अशालीन, दोयम दर्जे का और भ्रमित है। कैसे अद्‌भुत लोग थे वे थोड़े-से ग्रीक!" जिन दो अन्य कलाकृतियों से वह अब तक अभिभूत हुए थे, वे थीं लूवर में 'विंग्ड विक्ट्री' और बोस्टन म्यूज़ियम में बुद्ध के सिर की प्रस्तर प्रतिमा (बुद्ध के इस सिर के बारे में एक लेख भी 'के' ने लिखा था जो 'हेरल्ड' के मार्च 1924 के अंक में छपा था।)

बुखारेस्ट में क्वीन विक्टोरिया की नातिन और रूमानिया की महारानी क्वीन मैरी के निमंत्रण पर 'के' उनसे व्यक्तिगत तौर पर मिलने दो बार उनके महल पर गए। रात-दिन उनके साथ पुलिस का पहरा था, क्योंकि कुछ राष्ट्रवादी कैथलिक छात्रों ने उन्हें मारने की धमकी दे रखी थी। 'के' ने पुलिस की ऐसी सुरक्षा व्यवस्था को एक बड़े मज़ाक के रूप में लिया। 1931 की जनवरी और फरवरी में वह वार्ताओं के लिए यूगोस्लाविया और बुडापेस्ट में थे। जहां भी वह जाते सार्वजनिक वार्ताओं के साथ-साथ निजी साक्षात्कार भी देते।

मार्च में लंदन में उन्होंने एक सार्वजनिक वार्ता दी जिसमें उनकी शिक्षा के सूक्ष्म विकास के साथ-साथ उनकी शैली में बदलाव को भी देखा जा सकता है :

> प्रत्येक चीज़ में, हर मनुष्य में जीवन की संपूर्णता और समग्रता समायी हुई है... संपूर्णता से मेरा आशय है चेतना की मुक्ति, व्यक्तिगत सत्ता से मुक्ति। यह संपूर्णता जो कि हर वस्तु में विद्यमान है विकासरत नहीं हो सकती : यह तो परम है। उसे प्राप्त करने की कोशिश व्यर्थ है, लेकिन अगर आपको यह अनुभूति हो जाती है कि 'सत्य', 'आनंद' प्रत्येक वस्तु में मौजूद है, और उस 'सत्य' की अनुभूति केवल निषेध के द्वारा संभव है, तब एक कालातीत समझ का अवतरण होता है। यह नकारात्मक नहीं है। अधिकांश लोग कुछ न होने से डरते हैं। कुछ न कुछ प्रयास करते रहने को वे विधिपरक, सकारात्मक कहते हैं और वह प्रयास उनके लिए

सद्‌गुण होता है जबकि प्रयास सद्‌गुण नहीं है। सद्‌गुण तो अनायास होता है। जब आप कुछ नहीं होते हैं तब आप सब कुछ होते हैं, पर ऐसा स्व को विस्तीर्ण करने से, व्यक्तित्व को, 'मैं' को महत्त्व देने से नहीं होता बल्कि उस चेतना के निरंतर विसर्जन से होता है जो सत्ता, लोभ, द्वेष, अधिकारवृत्ति, दंभ, भय और वासना को पैदा करती है। अनवरत जागरूकता से आप चैतन्य से पूर्ण हो जाते हैं और तब आप मन-मस्तिष्क को मुक्त कर उस समरसता को जान लेते हैं जो कि संपूर्णता है।[38]

जैसा कि उन्होंने राजा को लिखा, एक बार किसी संवाददाता ने उनसे पूछा कि क्या आप ईसा मसीह हैं, तो उन्होंने जवाब दिया कि—"हां, शुद्ध अर्थ में; न कि उस शब्द के परंपरागत, स्वीकार किये हुए अर्थ में।" बाद में उन्होंने लेडी एमिली को लिखा—'मम्मी, आपको पता है मैंने इससे कभी इनकार नहीं किया है (विश्व-शिक्षक होने से), मैंने केवल इतना कहा है कि इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि मैं कौन हूँ और क्या हूँ, बल्कि महत्त्व इसका है कि वे उस बात का परीक्षण करें जो मैं कह रहा हूँ; और इसका अर्थ यह नहीं हैं कि विश्व-शिक्षक होने से मैंने इनकार कर दिया है।' उन्होंने इससे कभी इनकार नहीं किया।

अगस्त में ख़बर आई कि जदू की, जो कि उस साल अमेरिका में रुका हुआ था, मस्तिष्क-आघात से मृत्यु हो गई। 'के' के लिए यह एक बड़ा धक्का था जिन्होंने उसे अपने इतना नज़दीक पाया था। कुछ और यात्रा के बाद, ओमन कैंप होते हुए, 'के' बुरी तरह थककर अक्टूबर में ओहाय पहुंचे। यह तय हो गया था कि भारत जाने की बजाय वह पूरी तरह आराम करेंगे। राजगोपाल की अब एक बच्ची हो गई थी, नाम था राधा—जिसका 'के' बहुत ख्याल रखते थे। राजगोपाल के टौंसिल के ऑपरेशन के लिए जब पूरा परिवार हॉलीवुड चला गया तो 'के' पहली बार जीवन में अकेले रह गए। पाइन कॉटेज से 11 दिसंबर को उन्होंने लेडी एमिली को लिखा : "मुझे इस एकाकीपन से कुछ बहुत-ही अर्थपूर्ण हासिल हुआ है—और इसी की मुझे ज़रूरत थी। मेरे जीवन में हर चीज़, आज तक, बिलकुल सही समय पर आती रही है। मेरा मन इतना शांत किंतु एकाग्र है और मैं इसका अवलोकन कर रहा हूँ, उसी तरह जैसे एक बिल्ली चूहे पर नज़र रखती है। मुझे सच में इस एकांत में बेहद आनंद मिल रहा है और मैं अपनी भावना को शब्दों में व्यक्त कर पाने में असमर्थ हूँ। पर साथ ही मैं अपने को धोखा भी नहीं दे रहा हूँ। अगले तीन महीनों तक, या जब तक मैं चाहूंगा, मैं यही करने जा रहा हूँ। यह कार्य कभी भी समाप्त नहीं हो सकता लेकिन मुझमें जितनी भी सतही, क्षुद्र चीज़ें हैं उन सबको मैं समाप्त कर देना चाहता हूँ।" उन्होंने यह भी लिखा कि जब राजगोपाल का परिवार वापस आ जाएगा तो वह अपना खाना कॉटेज में ही ट्रे में खाया करेंगे। ऐसा प्रतीत होता है कि अकेले रहने के इस अनुभव के साथ ही 'के' ने अतीत की सारी स्मृतियों को लगभग पूरी तरह भुला दिया। उनकी बाद की शिक्षा के साथ इसका तालमेल बिठाया जा सकता है जब उन्होंने कहा कि स्मृति का उपयोग केवल व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए है, इसके अतिरिक्त यह

बोझ भर है जिसे दिन-प्रति-दिन ढोने का कोई अर्थ नहीं है।

1930 के शुरू में ‘के’ की मनोदशा क्या थी, इसका कुछ पता हमें केवल उनके पत्रों से चलता है। अगले साल मार्च में वह लेडी एमिली को लिखते हैं—‘मैं एक ऐसे सेतु के निर्माण का प्रयास कर रहा हूँ जिस पर चलकर सभी लोग जीवन के भरपूर संपर्क में आ सकें न कि उससे दूर हो जाएं...जो ‘अनुभूति’ मुझे हुई है उस पर मैं जितना अधिक चिंतन करूं उतनी ही स्पष्टता से मैं इसे व्यक्त कर पाऊंगा और उस सेतु के निर्माण में मदद कर सकूंगा, हालांकि इसमें समय लगेगा और शब्दों को लगातार परिवर्तित करना पड़ेगा ताकि सही अर्थ संप्रेषित हो सके। आपको पता नहीं कितना दुष्कर काम है उस वस्तु का वर्णन करना जो वर्णन से परे है; और जो वर्णन किया जाता है वह सत्य नहीं होता।’ वह अपनी सारी ज़िंदगी अलग-अलग शब्दों, अलग-अलग वाक्यों में उस चीज़ को अभिव्यक्त करने का प्रयास करते रहे जो कि अभिव्यक्ति से परे है।

ऐसा बिलकुल नहीं था कि लेडी एमिली ‘के’ को आंख मूंदकर मान रही थीं बल्कि इसके ठीक विपरीत वह उनकी बहुत अधिक आलोचना भी करती थीं। वह उन्हें बतातीं कि बहुत-से लोग उनके बारे में क्या सोचते हैं और साहस न होने के कारण पीठ पीछे क्या बोलते हैं। उदाहरण के लिए इसी साल सितंबर में वे लिखती हैं :

> तुम्हें शायद हैरानी होती है कि लोग तुम्हें नहीं समझते हैं, लेकिन मुझे उससे कहीं अधिक हैरानी होगी अगर लोग तुम्हें समझने लग जाएं! आखिरकार तुम उस हर चीज़ को हिला रहे हो जिनमें उनका सदा से विश्वास रहा है, तुम उनकी ज़मीन को ही खींच ले रहे हो और उसकी जगह धुंधली अमूर्तताओं को रख रहे हो। तुम उसके बारे में बोल रहे हो जिसके बारे में तुम खुद कहते हो कि वह अवर्णनीय है, और उसे तब तक नहीं समझा जा सकता जब तक कि व्यक्ति स्वयं उसकी खोज न कर ले। अब तुम उनसे कैसे उसे समझने की अपेक्षा कर सकते हो? तुम किसी और आयाम से बोल रहे हो और यह भूल चुके हो कि त्रि-आयामी संसार में रहना क्या होता है... तुम अहं के पूर्ण विनाश की वकालत कर रहे हो ताकि उस चीज़ की प्राप्ति हो सके जिसके बारे में व्यक्ति को तब तक कुछ नहीं पता चल सकता जब तक कि वह उसे प्राप्त न कर ले! ज़ाहिर है लोग अपने अहं के साथ जीना पसंद करेंगे जिसके बारे में उन्हें कुछ पता तो है...मनुष्य की समस्याएं तुम्हारे लिए कोई अर्थ नहीं रखतीं क्योंकि तुम अहं से मुक्त हो, और आनंद की तुम्हारी अमूर्त धारणा उन लोगों के लिए कोई अर्थ नहीं रखती जो अब भी अपने इसी संसार में रहना चाहते हैं।[39]

लेडी एमिली जिस दिन यह पत्र लिख रही थीं उसी दिन ‘के’ भी उन्हें अपने अमेरिका दौरे से पत्र लिख रहे थे : ‘मैं किसी बहुत ही असाधारण तत्त्व से भरा हुआ हूँ। मैं शब्दों में नहीं बता सकता कि यह क्या है, कैसा है—असीम आनंद है, एक जीवंत निःशब्दता है, या जीती-जागती ज्वाला की भांति एक प्रखर सजगता है...मैं स्पर्श चिकित्सा में अपना हाथ आज़मा रहा हूँ। मैंने दो-तीन केस लिये हैं और उनसे कह दिया है कि इसके बारे में किसी

को कुछ न बताएं। और यह काफी अच्छा रहा है। एक स्त्री जो अंधी होने जा रही थी मैं समझता हूँ ठीक हो जाएगी।’

निःसंदेह ‘के’ के पास उपचार की कुछ क्षमता थी लेकिन इसके बारे में वह मौन रहते थे क्योंकि वह नहीं चाहते थे कि लोग उनके पास इलाज के लिए आएं। एक सभा में किसी सवाल के जवाब में उन्होंने कहा :

> आप क्या पसंद करेंगे—एक ‘शिक्षक’ जो आपको स्थायी रूप से समग्र बने रहने का रास्ता दिखाए या एक ऐसा व्यक्ति जो क्षणिक तौर पर आपके घावों को भर दे? चमत्कार बच्चों के मनमोहक खेल की तरह हैं। चमत्कार तो रोज़ हो रहे हैं। डॉक्टर चमत्कार कर रहे हैं। मेरे कई मित्र आध्यात्मिक उपचारक हैं। हालांकि वे देह का उपचार कर सकते हैं लेकिन जब तक मन और मस्तिष्क को समग्र नहीं बनाया जाता, रोग फिर लौट आएगा। मेरा सरोकार मन और हृदय के उपचार से है न कि शरीर के। मैं यह मानता हूँ कि कोई भी महान शिक्षक चमत्कार नहीं दिखाएगा, क्योंकि यह ‘सत्य’ के साथ विश्वासघात होगा।[40]

युवा काल में ‘के’ के पास अतींद्रिय शक्तियां अवश्य थीं जो शायद विकसित हुई हों, लेकिन फिर भी उन्होंने इन्हें जानबूझकर बढ़ने नहीं दिया। जब लोग उनके पास मदद मांगने के लिए आते, तो वह उनसे उससे अधिक नहीं जानना चाहते थे जितना कि वे स्वेच्छा से उन्हें बताना चाहते। बहुत-से लोग मुखौटा लगाकर उनके पास आते, उन्होंने बताया; उन्हें इन लोगों से यह उम्मीद होती कि वे अपने मुखौटों को हटा देंगे, और जब वे ऐसा नहीं करते तो उन्हें भी किसी के व्यक्तिगत ख़त न पढ़ने की तरह उन लोगों के भीतर झांकने में कोई दिलचस्पी नहीं होती।[41]

युद्ध शुरू होने तक ‘के’ का जीवन यात्राओं, वार्ताओं और निजी साक्षात्कारों में बीत रहा था। बीच-बीच में वह ओहाय में आराम कर लिया करते थे। उन्होंने लेडी एमिली से समकालीन घटनाओं पर आधारित ऐसी किताबों के नाम मांगे जिन्हें वह समझती थीं कि उन्हें पढ़ना चाहिए। इसके अलावा द न्यू स्टेट्समैन एंड नेशन भी उन्होंने भेजने के लिए कहा। लेडी एमिली ने यह सब भेज दिया लेकिन ‘के’ के पास हकीकत में जासूसी कहानियों के अलावा कुछ पढ़ने के लिए समय ही नहीं था। सबसे बड़ी बात थी कि इतना अधिक पत्र-व्यवहार उन्हें संभालना पड़ रहा था और साथ ही इस समय प्रकाशन के लिए अपनी वार्ताओं का संशोधन भी वह ख़ुद कर रहे थे। जहां कहीं भी वह जाते उनके नये संपर्क, नये मित्र बनते, बहुत सारे अलग-अलग किस्म के लोगों से बातचीत होती, तथा विश्व में क्या हो रहा है, इसकी कहीं अधिक मूल्यवान जानकारी उन्हें मिल जाया करती थी जो किसी भी किताब में नहीं मिलती।

नवंबर 1932 में वह राजगोपाल के साथ भारत गए। श्रीमती बेसेंट बीमार थीं, उनका मस्तिष्क तेज गति से उनका साथ छोड़ रहा था, फिर भी वह किसी तरह अड्यार में थियोसोफिकल कन्वेंशन के लिए मौजूद रहीं। लेडबीटर के अलावा ‘के’ भी उसमें मौजूद

रहे। राजा के साथ ‘के’ की लंबी बातचीत हुई, जैसा कि उन्होंने लेडी एमिली को लिखा —“उन सबके पास रटा-रटाया केवल एक जुमला है—आप अपने रास्ते जाइए और हम अपने, लेकिन हमारा मिलन होगा... मुझे ऐसा यकीन है कि वे नहीं चाहते थे कि मैं यहां आऊं। वैमनस्य की भावना साफ दिखती है... अड्यार बहुत ख़ूबसूरत जगह है पर यहां के लोग निष्प्राण हैं।”

कन्वेंशन के बाद ‘के’ ने भारत का दौरा किया। मई 1933 में वह अड्यार फिर पहुंचे जहां उन्होंने यूरोप वापस जाते वक्त श्रीमती बेसेंट को आख़िरी बार देखा। श्रीमती बेसेंट बस उन्हें पहचान पाईं और बहुत स्नेहपूर्ण ढंग से पेश आईं। (20 सितंबर को उनकी मृत्यु हो गयी)* इसके बाद ‘के’ थियोसोफिकल सोसाइटी के हेडक्वार्टर में अगले सैंतालीस वर्षों तक नहीं लौटे।

अगली बार जब ‘के’ और राजगोपाल अड्यार में थे, श्रीमती बेसेंट की मृत्यु के तीन माह बाद, तो वह पहली बार ‘वसंत विहार’ में रुके। 64 ग्रीनवेज़ रोड पर स्थित यह घर ‘के’ के भारतीय मुख्यालय के तौर पर अभी बनवाया गया था। 6 एकड़ की ज़मीन पर बना यह मुख्यालय अड्यार नदी की उत्तरी दिशा में था। जबकि थियोसोफिकल सोसाइटी का 260 एकड़ का परिसर अड्यार नदी के दक्षिणी किनारे पर था और समुद्र तक जाता था। ‘वसंत विहार’ का यह घर ‘के’ की अपेक्षा से कहीं अधिक बड़ा था, पर इसे सोसाइटी के इतना नज़दीक बनवाने के लिए उन्हें लेडी एमिली की डांट भी सुननी पड़ी। इसके जवाब में उन्होंने लेडी एमिली को लिखा कि उन्होंने और राजगोपाल ने मुद्रण की सुविधा, लोगों और कर्मचारियों आदि की दृष्टि से मद्रास को सबसे उपयुक्त जगह समझा था; इसके अलावा उन्हें केवल यही जगह मिल पाई थी। ‘के’ ने आगे जोड़ा कि, “हम सोसाइटी और उसके मूलभूत सिद्धांतों के खिलाफ नहीं हैं...मेरी लड़ाई उनसे नहीं बल्कि संसार के विचारों से, आदर्शों से है।” इसी पत्र में उन्होंने लेडी एमिली से आग्रह किया कि वह जितना हो सके उसकी आलोचना करें : “जितनी अधिक हम आलोचना करेंगे उतना ही हम एक-दूसरे को समझ पाएंगे।” लेडी एमिली ने इसका फ़ायदा उठाया और शायद ही कभी उनकी आलोचना करने से पीछे हटीं। हालांकि उनके पत्र हमेशा ‘के’ के लिए प्रेम से भरे होते थे।

भारत के इस दौरे में ‘के’ ऋषि वैली भी गए, जो कि मद्रास से 170 मील दूर पश्चिम में था। आपको याद होगा कि 1928 में उनके कार्य के लिए यहां एक भूमि खरीद ली गई थी। सह-शिक्षा पर आधारित यहाँ एक स्कूल खोला गया था जिसके पहले प्रिंसिपल जे.वी. सुब्बा राव थे। वह तीस सालों तक इसके प्रिंसिपल रहे और इस दौरान स्कूल बढ़ता और फलता-फूलता गया। स्कूल में अपने प्रवास के दरमियान ‘के’ प्रतिदिन शिक्षकों से पांच घंटे वार्तालाप करते थे।

‘के’ के लिए शिक्षा हमेशा जीवन के सबसे महत्त्वपूर्ण कार्यों में से एक बनी रही। उन्हें बच्चों से हमेशा प्यार रहा। उन्हें लगता रहा कि अगर बच्चों का पूर्णतया विकास हो सके, पूर्वाग्रहों, धर्मों, पारंपरिक मतों के बिना, राष्ट्रवाद एवं प्रतिस्पर्धा की भावना के बगैर, तो

विश्व में शांति हो सकती है। लेकिन सवाल था कि शिक्षक कहां से मिलेंगे। स्पष्ट है कि एक बच्चे को संस्कारबद्धता से बचाए रखने से कहीं ज़्यादा कठिन वयस्क को उसकी संस्कारबद्धता से छुटकारा दिला पाना है। इसका मतलब है संपूर्ण आत्म-परिवर्तन। अपने पूर्वाग्रहों को त्यागने का मतलब है अपने व्यक्तित्व को ही अक्षरशः त्याग देना, क्योंकि 'के' के अनुसार सारे आदर्श, देशभक्ति, नायकवाद और धार्मिक आस्थाएं पूर्वाग्रह के ही रूप हैं। शिक्षा के क्षेत्र में 'के' का एक विरोधाभास भी प्रकट होता है। जिन स्कूलों की 'के' ने स्थापना की थी उनसे उनकी अपेक्षा थी कि वे बिना प्रतिस्पर्द्धा का आश्रय लिये 'शैक्षणिक उत्कृष्टता' हासिल करें। ऐसा संभव हो सकता था, अगर माता-पिता बच्चों पर विश्वविद्यालय की डिग्रियां प्राप्त करने का दबाव नहीं डालते। विशेषकर भारत में एक अच्छी नौकरी पाने के लिए डिग्री का होना ज़रूरी था।

1934 के आरंभ में आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड में 'के' की वार्ताएं हुईं। आस्ट्रेलिया की प्रेस ने बहुत ही मैत्रीपूर्ण रवैया अपनाया, जबकि थियोसोफी के सदस्य इतने खुश नहीं थे। लेडबीटर की अभी पर्थ में मृत्यु हुई थी, श्रीमती बेसेंट के अंतिम संस्कार में हिस्सा लेकर वापस लौटने पर। 'के' उस समय संयोग से सिडनी में थे जब उनके शरीर को दाहसंस्कार के लिए वहां लाया गया। 'के' ने लेडी एमिली को लिखा कि वह दाहसंस्कार में सम्मिलित हुए, पर गिरजे के बाहर रुके रहे। उन्होंने आगे लिखा कि, 'मेनर के लोग उनकी मृत्यु से दिग्भ्रमित हैं। वे लोग पूछ रहे थे कि उनके जाने के बाद अब उन्हें कौन बताएगा कि 'पथ' पर वे कितने कदम आगे बढ़ा चुके हैं।' 'के' के बारे में न्यूज़ीलैंड की प्रेस ने तो और अधिक मैत्रीपूर्ण रुख अपनाया। हालांकि 'धर्म-विरोधी' समझे जाने के कारण उनकी वार्ता के प्रसारण की वहां अनुमति नहीं मिली। 'के' ने लिखा—"बर्नार्ड शॉ ने, जो अपनी एक यात्रा पर यहाँ आये हुए हैं, लोगों से कहा कि वार्ता के प्रसारण की अनुमति न देना शर्मनाक बात है क्योंकि मैं एक महान धार्मिक शिक्षक हूँ। उन्होंने मुझे इसके बारे में लिखा भी। दुर्भाग्य से मैं उनसे मिल नहीं पाया। वार्ताएं ज़बरदस्त रहीं, लोगों में काफी अधिक उत्साह था। मैं उम्मीद करता हूँ कि दोस्त लोग वहां इस उत्साह को बनाए रखेंगे।"

ओहाय लौटने पर 'के' ने लिंग्वाफोन पद्धति से स्पेनिश भाषा सीखनी शुरू की। दक्षिण अमेरिका के दौरे की दृष्टि से यह तैयारी की जा रही थी। हर्षातिरेक की गहन अनुभूतियों से उनका नाता बिल्कुल नहीं टूटा था। नवंबर में वह लेडी एमिली को लिख रहे थे : "प्रेम की अपारता का मानो मुझमें विस्फोट हो रहा है, अब इसे आप जो भी नाम दें। प्रज्ञा और बुद्धिमत्ता खोए बिना मैं उन्मत्त हूँ। यह अद्‌भुत है और साथ ही इसे शब्दों में रख पाना कितना अर्थहीन है; तब तो यह बड़ा सतही बन जाता है। कल्पना कीजिए मन की उस अवस्था की जिसमें सौंग ऑफ सौंग्स लिखा गया था, जिस अवस्था में बुद्ध थे, जीसस थे, और तब आप जान पाएंगी कि मेरे मन की क्या दशा है। यह कुछ अधिक ही अतिरंजना से भरा लग रहा होगा लेकिन ऐसा है नहीं—बल्कि यह तो इतना सीधा-साफ है, सब कुछ समाये हुए।"

लेडी एमिली ने अगस्त में एक पत्र 'के' को लिखा था और यह साफ है कि ऊपर वाले

पत्र को लिखते समय 'के' के मन में इस पत्र को लेकर कोई नाराज़गी नहीं थी। यह पत्र इस प्रकार था :

> तुम्हें यह कैसे पता कि तुम सिर्फ पलायन नहीं कर रहे हो? तुम जीवन को जीवन के रूप में, उसकी सारी कुरूपताओं के साथ ग्रहण नहीं कर सकते; तुम हमेशा मखमल में लिपटे रहे हो—अगर आलंकारिक भाषा प्रयोग करूं—कुरूपता से बचकर तुम हमेशा सुंदर से सुंदर जगहों पर जाते रहे हो। तुम हमेशा एकांतवास में लौट जाते हो। तुम्हें पलायन का एक मार्ग मिल गया है जो तुम्हें आनंदोल्लास प्रदान करता है। लेकिन ऐसा तो सभी धार्मिक रहस्यवादियों के साथ होता है...एक बाहरी व्यक्ति होने के नाते मैं यह कैसे जान सकती हूँ कि तुम जो कह रहे हो वह उन लोगों से ज़रा भी भिन्न है जो कहते हैं कि उन्हें परमानंद, ईश्वर या सत्य आदि उपलब्ध हो गया है? (इस पत्र का कोई जबाब उपलब्ध नहीं है।)

1935 के शुरू में न्यूयॉर्क में 'के' की तीन वार्ताएं हुईं। वह कुछ समय के लिए अपने पुराने मित्र रॉबर्ट लोगान और उनकी पत्नी सारा के साथ रहे, जिनकी फिलाडेल्फिया के पास 'सारोबिया' नाम की एक बड़ी जागीर थी, भवन था। 3 मार्च को 'के' राजगोपाल के साथ रिओ दे जानैरो के लिए निकल गए। यह आठ माह तक चलने वाले टूर की शुरुआत थी। इस दौरान 'के' की ब्राज़ील, उरुग्वे, अर्जेंटीना, चिली और मैक्सिको सिटी में वार्ताएं हुईं।[42]

जिन सैकड़ों लोगों ने इन वार्ताओं में हिस्सा लिया, वे 'के' को नहीं समझ सकते थे क्योंकि 'के' की भाषा अंग्रेज़ी थी; फिर भी वे लोग 'मंत्रमुग्ध' बैठे रहते थे। 'के' हर वार्ता की शुरुआत इस घोषणा से करते थे कि उनका किसी धार्मिक संप्रदाय या राजनीतिक दल से कोई नाता नहीं है : "संगठित विश्वास एक बहुत बड़ी बाधा है। यह मनुष्य को मनुष्य से अलग करती है...मैं आपकी, व्यक्ति की, मदद करना चाहता हूँ जिससे कि आप गहरी और पूर्ण तृप्ति के द्वारा पीड़ा, द्वंद्व और भ्रांति के सागर को पार कर सकें।"

मोंतेविदेओ और बुएनोस आयरेस, ये दो जगहें ऐसी थीं जहां 'के' का तस्वीरों और रेडियो प्रसारणों से इतना अधिक प्रचार हो गया था कि बिना भीड़ का आकर्षण बने उनके लिए बाहर निकल पाना मुश्किल था। मोंतेविदेओ में तो शिक्षा मंत्री ने उन्हें बोलने के लिए आमंत्रित किया था। लेकिन इसके साथ ही कैथलिक अखबारों में उनके विरोध में कई लेख भी छपे और कैथलिक अनुयायियों ने उनके निर्वासन की कोशिशें भी कीं। 'के' हैरान थे लोगों की इतनी अधिक दिलचस्पी और उत्साह को देखकर। लेकिन उनके लिए इस दौरे का सबसे रोमांचकारी हिस्सा तब आया, जब उन्होंने एंडीज पर्वत माला के ऊपर से दो इंजन वाले एक डगलस एअर-क्राफ्ट में एक घंटा बीस मिनट की अपनी पहली हवाई यात्रा की। हालांकि उन्हें यह बताया गया था कि विश्व की यह सबसे ख़तरनाक हवाई यात्रा है, फिर भी उन्होंने इसका भरपूर आनंद लिया।

अपनी एक वार्ता में पहली बार 'के' ने सार्वजनिक रूप से सेक्स के बारे में कुछ बोला। प्रश्न था—"सेक्स की समस्या के बारे में, जो कि हमारे दैनिक जीवन में इतनी

अहम भूमिका निभाती है, आपका क्या दृष्टिकोण है?” इसके उत्तर में वह बोले :

> इसने समस्या का रूप इसलिए ले लिया है क्योंकि प्रेम नहीं है। जब हम वास्तव में प्रेम करते हैं तो समस्या नहीं होती, तब सामंजस्य होता है, समझ होती है। सेक्स को लेकर समस्या केवल तभी खड़ी होती है जब हमारे भीतर गहरे और सच्चे प्रेम की भावना समाप्त हो जाती है। प्रेम में अधिकार जताने की कोई भावना नहीं होती। जब हम स्वयं को पूर्णतया संवेदनों के, सनसनी के धरातल पर छोड़ देते हैं, केवल तभी सेक्स को लेकर तमाम समस्याएं खड़ी होती हैं। अधिकांश लोगों में से सृजनात्मक चिंतन का आनंद जा चुका है, इसलिए स्वभावतः वे यौन संवेदनों की ओर मुड़ जाते हैं जो एक समस्या का रूप ले लेते हैं और उनके दिलो-दिमाग को खाने लगते हैं।

इस यात्रा के खत्म होने तक ‘के’ अत्यधिक थक चुके थे। अपनी शक्ति बटोरने में उन्हें काफी समय लगा। उनका वजन 50 किलो से भी कम रह गया था। ओहाय और विलर्स (स्विट्ज़रलैण्ड) में वह आराम करते रहे। 1936 के जाड़ों तक वह इस लायक हो गए कि राजगोपाल के साथ भारत जा सकें। ‘वसंत विहार’ के बगीचे में उनकी वार्ताएं हुई। मतभेद होते हुए भी राजा कई बार ‘के’ से मिलने आए। वह अपनी मृत्यु (1953) तक ‘के’ के प्रति मैत्रीपूर्ण रहे। ‘के’ ने 1937 की शुरुआत में लेडी एमिली को लिखा—“उस पुरानी और जड़ वस्तु का टूटना कोई एक दिन की क्रिया नहीं है। इसके लिए अनवरत चुनावरहित सजगता की आवश्यकता है। मैं सराबोर हूँ, और इस सबसे रोमांचित।”

‘चुनावरहित सजगता’ शब्दों का इस्तेमाल ‘के’ बाद में प्रायः करते रहे। लेडी एमिली इन शब्दों को नहीं समझ पाईं और यहां कुछ स्पष्टता की आवश्यकता भी थी। चुनाव में दिशा का भाव निहित है, यहां इच्छा की क्रिया काम करती है। जैसा कि ‘के’ ने इसे स्पष्ट किया कि यह सजगता क्षण प्रति क्षण अपने भीतर घटने वाली हर चीज़ के प्रति होती है —यहां किसी चीज़ को बदलने या दिशा देने का प्रयास नहीं किया जाता। यह शुद्ध अवलोकन या निरीक्षण का मामला था जो बिना किसी प्रयास के आत्म-परिवर्तन की ओर ले जाता था।

इस बार भारत की हालत देखकर ‘के’ विस्मित थे—भयानक गरीबी, मुसीबत और घृणा और भारतीयों का यह विश्वास कि राष्ट्रवाद ही इसका हल है। उन्होंने कहा, “हमें नये लोगों को तलाशना होगा (उनके कार्य के लिए) और यह आसान नहीं। हमें यहां से इस तरह शुरुआत करनी होगी कि जैसे यहां पर पिछले दस सालों में कुछ हुआ ही न हो।” ‘के’ के अनुसार कोई भी सामाजिक बदलाव मनुष्य की मुसीबत को खत्म नहीं कर सकता था—हर नये तंत्र को लोग अपनी अंतश्चेतना के अनुसार बदल लेंगे। पूरे इतिहास में जितने भी आदर्शवादी क्रांतिकारी आंदोलन हुए वे सब घूम-फिरकर पुराने ढर्रे की ओर ही लौट आए, क्योंकि लोग अपने भीतर से नहीं बदले थे। समाज कोई भी हो वह व्यक्ति में से निकलता है और व्यक्ति समाज का परिणाम होता है। व्यक्ति आप और हम हैं। समाज को बाहर से नहीं बदला जा सकता। इसे केवल तभी बदला जा सकता है जब

मनुष्य यानी हममें से हर कोई अपने भीतर पूरा बदलाव ला पाए।

---

* जॉर्ज अरुंडेल थियोसोफिकल सोसाइटी के अगले अध्यक्ष बने। 1945 में उनकी मृत्यु के बाद राजा अध्यक्ष बने। इस पद पर वह 1953 में अपनी मृत्यु के कुछ माह पहले तक बने रहे।

11

एक गहन आनंद

1937 के वसंत में 'के' और राजगोपाल रोम में थे। मुसोलिनी ने इटली में सभी सार्वजनिक वार्ताओं पर प्रतिबंध लगा दिया था, इसलिए एक गोष्ठी की व्यवस्था कोंतेस्सा रफोनी के घर पर की गई थी। यहां 'के' की मुलाकात वांदा पसील्यी से हुई जिसने उनके जीवन में आगे चलकर एक अहम भूमिका निभाई। वह एक वैभवशाली ज़मींदार अल्बेर्तो पसील्यी की पुत्री थी जिनकी फ्लोरेंस के समाज में बहुत अधिक प्रतिष्ठा थी। उन्होंने दो महत्त्वपूर्ण संगीत सभाओं की स्थापना की थी। उस समय के सभी महान संगीतकारों से उनकी मैत्री थी। वांदा खुद भी पेशेवर स्तर की पियानोवादक थी। 1940 में उसकी शादी मार्केज़े लुईजी स्कारावेल्ली से हुई। वह भी एक अच्छे संगीतकार थे जो बाद में रोम यूनीवर्सिटी में दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर हुए। गोष्ठी के बाद पसील्यी परिवार ने 'के' को अपने घर आमंत्रित किया। उनका घर फिएसोले के ऊपर 'इल लेच्चो' में था। बाद में जब वांदा और उसके भाई को यह घर विरासत में मिला तो 'के' अक्सर वहां रुका करते थे।

गर्मियों के दौरान ओमन में 'के' पहली बार हे फीवर (परागज ज्वर) से पीड़ित हुए। इसके बाद जीवन-भर वह इस ज्वर से यदा-कदा पीड़ित होते रहे। और इसके अलावा, पहले की तरह, उन्हें ब्रोंकाइटिस भी रहा। ओहाय वापस लौट जाने पर उन्हें अच्छा लगा। 1937-38 की सर्दियों में उन्होंने सिर्फ आराम किया और राजगोपाल परिवार के अलावा किसी से नहीं मिले। लेडी एमिली को उन्होंने लिखा : 'अपने भीतर की खोज से मैं अत्यंत रोमांचित हूँ। बहुत सारे विचार हैं जिन्हें मैं धीरे-धीरे उपयुक्त शब्दों और अभिव्यक्तियों में पिरोने की कोशिश कर रहा हूँ। एक परम आनंद की स्थिति है। एक परिपक्वता है जिसे आरोपित या कृत्रिम तौर पर प्रेरित नहीं किया जा सकता; और यही जीवन को पूर्णता और सच्चाई से भर सकती है। मैं इस शांति और ज़ाहिरा तौर पर निष्प्रयोजन ध्यान से सच में बेहद खुश हूँ।'

'के' के लिए 'वास्तविक' ध्यान क्या था, इसका संभवतः यह पहला उल्लेख था—बिना किसी दिशा या प्रयोजन के 'अपने भीतर अनपेक्षित और विस्मयकारी अन्वेषण करना।' इन क्षणों में 'के' का मस्तिष्क अपनी चरम तीक्ष्णता, अन्वेषणशीलता और जीवंतता में विद्यमान रहता। ध्यान की जो सामान्य रूप से प्रचलित धारणा थी—मन को

किसी शब्द या वस्तु पर केंद्रित करके शांत करना अथवा किसी टेक्नीक का अभ्यास करना—वह ‘के’ की दृष्टि में निर्जीव बनाने वाली थी, अर्थहीन।

1938 के वसंत में जब ‘के’ पहली बार आल्डस हक्स्ले से मिले तो उनके लिए एक बहुत ही जीवंत दोस्ती की शुरुआत थी। हक्स्ले के एक मित्र जेराल्ड हर्ड थे जो कैलिफोर्निया में रह रहे थे। उस साल फरवरी में उन्होंने हक्स्ले को ‘के’ से मिलवाने के लिए बुलाया था। पर उस समय हक्स्ले अस्पताल में थे, इसलिए अप्रैल से पहले हक्सले और उनकी बेल्जियन पत्नी मारिया के लिए ओहाय आना संभव नहीं हो सका (हक्स्ले दंपति और उनका एक बेटा 1937 में कैलिफोर्निया पहुंच चुके थे)। ‘के’ और हक्स्ले में तुरंत घनिष्ठता हो गई। नवंबर में हक्सले ने अपनी आंखों का इलाज करना शुरू किया। यह इलाज एक अमेरिकी डॉक्टर डब्ल्यू. एच. बेट्स द्वारा सुझाई गई आँखों की कसरत पर आधारित था। आगे चलकर ‘के’ रोज़ाना इस विधि का अभ्यास किया करते थे, इसलिए नहीं कि उनकी आंखों में कुछ खराबी थी, बल्कि सावधानी लेने के लिहाज़ से। पता नहीं यह इस कसरत का नतीजा था या कुछ और, पर ‘के’ को आजीवन चश्मा नहीं लगाना पड़ा।

शुरू में तो ‘के’ हक्स्ले की बौद्धिक चमक से कुछ अधिक ही अभिभूत थे; लेकिन जब उन्हें पता चला कि हक्सले एक ऐसे गूढ़ अनुभव के लिए जो नशीली दवाइयों द्वारा उत्प्रेरित न हो—अपना सारा ज्ञान दे देने को तैयार थे, तब उन्हें लगा कि वह हक्सले से उन ‘बिंदुओं’ के बारे में चर्चा कर सकते हैं जो वह प्रस्तुत कर रहे थे। ‘के’ ने अपने को अन्य पुरुष में संबोधित करते हुए हक्स्ले के साथ अपनी एक सैर का इस प्रकार वर्णन किया था :

> वह (हक्स्ले) एक अद्‌भुत व्यक्ति थे। वह आधुनिक और शास्त्रीय दोनों तरह के संगीत के बारे में बात कर सकते थे। वह विज्ञान के बारे में और आधुनिक सभ्यता पर इसके प्रभाव के बारे में खूब विस्तार से समझा सकते थे। और निश्चय ही वह ज़ेन, वेदांत और बौद्ध इन सभी दर्शनों से काफी परिचित थे। उनके साथ सैर पर जाने का एक अलग आनंद था। मार्ग के किनारे पड़े फूलों पर वह व्याख्यान देते। हालांकि वह ठीक से देख नहीं सकते थे, लेकिन जब भी हम कैलिफोर्निया की पहाड़ियों से गुज़र रहे होते और कोई जानवर पास से गुज़रता तो वह तुरंत इसका नाम बता देते। आधुनिक सभ्यता की विध्वंसक प्रकृति और इसकी हिंसा का वह खुलासा करते। किसी झरने या गड्‌ढे को पार करने में कृष्णमूर्ति उनकी मदद करते। उन दोनों के बीच एक विचित्र संबंध था जिसमें स्नेह था, एक-दूसरे का लिहाज़ था और ऐसा लगता था जैसे एक शब्दहीन संवाद था। वे प्रायः बिना कुछ बोले एक साथ बैठे रहते थे।[43]

ओमन में होने वाला सबसे आख़िरी, पंद्रहवां कैंप, उस साल अगस्त में हुआ। (1940 में हॉलैंड पर जर्मनी के आक्रमण के बाद इसे ‘कॉन्संट्रेशन कैंप’ यानी यातना शिविर में बदल दिया गया था।) 1938 म्युनिख संकट का काल था। निश्चित रूप से ‘के’

युद्धविरोधी थे। राजगोपाल उस साल 'के' के साथ भारत नहीं गये। 'के' ने अपने एक पुराने मित्र वी. पटवर्धन के साथ यात्रा की। ये पैट के नाम से जाने जाते थे और पर्जिन में भी साथ थे। 6 अक्टूबर को वे बंबई पहुँचे। वहां 'के' ने अपने भारतीय मित्रों को 'ओछी राजनीतिक ईर्ष्याओं' में लिप्त पाया। उनमें से कई जो गांधीजी के अनुयायी थे वे जेल जा चुके थे। 'के' कई बार गांधीजी से मिले पर उनके प्रशंसक नहीं बन पाए। वह कभी राजनीति में नहीं फंसे। जर्मनों के आक्रमण और अंग्रेज़ों के साम्राज्यवाद में उन्हें कोई फर्क नज़र नहीं आया। लेडी एमिली को उन्होंने लिखा : "आधी धरती को हथिया लेने के बाद अंग्रेज़ों को कुछ कम आक्रामक होना मंज़ूर है हालांकि भीतर से वे उतने ही बर्बर और लोभी हैं जितना कि कोई भी अन्य राष्ट्र," और नवंबर में वह फिर लेडी एमिली को भारत से लिख रहे थे :

> मैं आपसे बिलकुल सहमत हूँ कि बेचारे यहूदियों को भयानक अवनति के काल से गुज़रना पड़ रहा है। पूरा का पूरा परिदृश्य पागलपन से भरा है। मानव इतने पाशविक रूप में उतर सकता है, यह वीभत्स है। काफिरों के साथ अत्यधिक बर्बरता और अमानवीयता से बर्ताव किया जा रहा है। दक्षिण के कुछ हिस्सों में अछूतों के साथ ब्राह्मणों का व्यवहार सारी मानवीयता को लांघ चुका है। यहां के गोरे और स्थानीय नौकरशाह शासक लगभग मशीनों की तरह बर्बरता और बेवकूफी से भरे एक तंत्र को चलाए रख रहे हैं। दक्षिण अमेरिका में हब्शियों की हालत खराब है। दुनिया-भर में यह देखने को मिल रहा है कि एक शासक जाति दूसरे का शोषण कर रही है। सत्ता, संपदा और पद की इस भूख के पीछे कहीं कोई तर्क, कोई विवेक नहीं है। घृणा और भ्रांति के झंझावात से बचकर निकल पाना व्यक्ति के लिए मुश्किल है। व्यक्ति को निश्चित ही अविभाजित, स्वस्थचित्त और संतुलित होना चाहिए, बिना किसी जाति, देश या विचारधारा से जुड़े। तब जाकर शायद विश्व में शांति और स्वस्थ चेतना लौट सकेगी।

बाद में 'के' ने यह भी लिखा—"हिटलर, मुसोलिनी आदि को कोसना बहुत आसान है लेकिन प्रभुत्व-शासन की यह प्रवृत्ति और सत्ता की यह भूख लगभग सभी व्यक्तियों के हृदय में मौजूद है। इसीलिए हम युद्ध और वर्ग-वैमनस्य से घिरे हुए हैं। जब तक मूल स्रोत को साफ-सुथरा नहीं कर दिया जाता तब तक घृणा और अव्यवस्था का राज रहेगा।"

भारत के कई हिस्सों में यात्रा करने और वार्ताएं देने के बाद 'के' ने साल के अंत में अपने दूसरे स्कूल का दौरा किया जो राजघाट, बनारस में 1934 में आधिकारिक तौर पर शुरू हुआ था। वहां से 'के' 1939 के आरंभ में ऋषि वैली गए। एक स्कूल नदी के किनारे स्थित था, तो दूसरा पहाड़ियों के बीच, और दोनों ही अपने ढंग से बेहद ख़ूबसूरत थे और इन दोनों स्थलों से 'के' को बेहद प्यार था। 1 अप्रैल को पैट (वी. पटवर्धन) के साथ वे कोलंबो से आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड की यात्रा के लिए निकले। अंत में जब वे ओहाय वापस पहुंचे तो पैट भारत लौट आए और वहीं ब्रेन हैमरेज से अचानक उनकी मृत्यु हो गई। एक और मित्र बिछुड़ गया। नित्या, जदू, पैट : पुराने मित्र छंटते जा रहे थे।

युद्ध के संभावित ख़तरे को देखते हुए 'के' 1939 में अमेरिका से बाहर नहीं गए और बाकी के नौ साल भी उन्हें राजगोपाल के साथ कैलिफोर्निया में बिताने पड़े। इस दौरान तकरीबन सारे समय वह ओहाय में रहे। मई 1940 में जब हिटलर ने हॉलैंड और बेल्जियम को अपने कब्जे में ले लिया, उसके बाद 'के' को अपने डच मित्रों की कोई ख़बर नहीं मिली; और भारत से भी शायद ही कोई ख़बर मिली हो। 22 जून को फ्रांस ने आत्मसमर्पण कर दिया। डी मेंज़िअर्ली परिवार किसी तरह अमेरिका भागने में सफल हो गया और सुआरेस परिवार मिस्र भागने में। ओहाय और हॉलीवुड दोनों जगहों पर हफ्ते में दो दिन 'के' ने समूहों में परिचर्चाएं करना शुरू कर दिया था। हक्स्ले परिवार से भी उनका अच्छा संपर्क बना रहा। (युद्ध के दौरान हक्स्ले कैलिफोर्निया में टिके रहे थे, इससे उनमें कुछ ग्लानिभाव आ गया था लेकिन 'के' की युद्ध विरोधी विचारधारा ने इसे शांत कर दिया।) 1940 के वसंत में 'के' ने ओकग्रोव में आठ वार्ताएं कीं, लेकिन जब यह कहते हुए उन्होंने युद्धविरोध की शिक्षा दी कि 'अपने भीतर के युद्ध से हमें सरोकार होना चाहिए न कि बाहर के,' तो कई लोग झुंझलाकर वार्ता छोड़कर चले गए। अगस्त के आख़िर में वह सारोबिया गए, वहां लोगान बंधुओं ने एक सम्मेलन का इंतज़ाम उनके लिए किया था। इसके बाद 1944 तक वह सार्वजनिक तौर पर नहीं बोले।

ओहाय से 250 मील दूर उत्तर में 6,000 फीट की ऊंचाई पर सिकोया नैशनल पार्क था। ऐसा कहा जाता है कि वहां के कुछ सिकोया वृक्ष 3000 साल पुराने हैं। 'के' ने 1941 और '42 में राजगोपाल परिवार के साथ वहां की दो बार यात्रा की। 1 सितंबर 1942 की दूसरी यात्रा के दौरान राजगोपाल परिवार को बीच में ही ओहाय लौट जाना पड़ा क्योंकि राधा के स्कूल की पढ़ाई शुरू होनी थी, जबकि 'के' शेष तीन हफ्तों के लिए वहां एक लॉग केबिन में बिलकुल अकेले छूट गए। वह अपना खाना खुद बनाते, दिन में दस मील पैदल चलते, और दो-तीन घंटा ध्यान करते। इस दौरान उन्हें कई जंगली जानवर देखने को मिले। बिलकुल एकाकी होकर रहना 'के' के लिए हमेशा एक आनंददायक अनुभूति होती थी। इस बार के एकांतवास का 'के' ने भरपूर आनंद लिया और इसका उन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि अपनी कई पुस्तकों में उन्होंने इसका ज़िक्र किया—एक गिलहरी के साथ उनकी दोस्ती हुई तथा माँ-भालू और उसके बच्चों के साथ एक ख़तरनाक आमना-सामना हुआ। उनकी बहुत थोड़ी जो अमिट स्मृतियां थीं, उनमें से यह एक थी।

अमेरिका युद्ध में कूद चुका था (जापान ने 7 दिसंबर 1941 को पर्ल हार्बर पर बम गिरा दिया था), 'के' को अब अपने अमेरिकी वीज़ा को बढ़वाने में मुश्किल का सामना करना पड़ रहा था। उनके युद्धविरोधी वक्तव्यों को देखते हुए इसे चमत्कार ही कहा जाएगा कि उनका वीज़ा फिर बढ़ा दिया गया। अमेरिका में खाने की कमी पड़ गई थी और वहां रहना काफी खर्चीला हो गया था। पेट्रोल भी राशन से मिलने जा रहा था। 'के' और राजगोपाल परिवार मिलकर अपनी सब्ज़ियां खुद उगा रहे थे। उन्होंने मधुमक्खियों और मुर्गियों के अलावा एक गाय भी पाल ली थी। 'के' रोज़ाना अकेले लंबी सैर पर जाया करते थे। उन्होंने लेडी एमिली को लिखा कि वह आंतरिक रूप से एक असाधारण और

बहुत ही सृजनशील एवं आनंदित जीवन जी रहे हैं। लेकिन लेडी एमिली ने, जो कि युद्ध की भीषणता झेल चुकी थीं और दो नातियों को युद्ध में पहले ही खो चुकी थीं, उनको एक तीखा पत्र लिखा, उस सारे आतंक से पलायन कर जाने का आरोप लगाते हुए। 14 अप्रैल 1942 को 'के' ने उन्हें यह उत्तर दिया :

> मुझे नहीं लगता कि किसी बुराई को बर्बरता, यंत्रणा, या दासता से मिटाया जा सकता है—बुराई किसी ऐसी चीज़ से ही मिट सकती है जो बुराई से न निकली हो। युद्ध हमारी इस तथाकथित शांति का नतीजा है जो कि हमारी रोज़मर्रा की बर्बरता, शोषण, संकीर्णता आदि का सिलसिला ही है। बिना अपने दैनिक जीवन को बदले हम शांति नहीं ला सकते, और युद्ध हमारे दैनिक आचरण की बड़े पैमाने पर अभिव्यक्ति है। मुझे नहीं लगता कि मैं आतंक-भय से पलायन कर रहा हूँ, लेकिन इतना ज़रूर है कि हिंसा का इस्तेमाल चाहे जो करे पर समाधान, अंतिम समाधान, उसमें कदापि नहीं मिल सकता। मुझे इस सबका उत्तर मिल गया है, किंतु संसार में नहीं बल्कि इसके बाहर। निर्लिप्त होने में—सच्ची निर्लिप्तता जो कि प्यार और समझ के लिए और अधिक (शब्द छूट गया है) होने या उसका जतन करने से आती है। यह बहुत ही कठिन है और इसे आसानी से लाया नहीं जा सकता। आल्डस हक्स्ले और उनकी पत्नी सप्ताह के अंतिम दिनों में यहां पर आए हुए हैं। हमने इस सबके बारे में विस्तार से बातें कीं और ध्यान के बारे में, जिसे मैं कुछ दिनों से खूब कर रहा हूँ।

युद्ध के दौरान के वे शांत व खाली दिन शिक्षक होने के नाते 'के' के लिए अमूल्य थे। हक्स्ले ने भी उन्हें प्रोत्साहित किया, लिखने के लिए। एक वक्ता की तुलना में 'के' कहीं अच्छे लेखक थे। इतने वर्षों के अभ्यास के बाद भी 'के' एक अच्छे वक्ता कभी नहीं बन पाए, हालांकि उनके व्यक्तित्व की चुंबकीय शक्ति उनकी वार्ताओं में उभर कर आती थी और श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देती थी। 'के' ने एक जगह लिखा है कि हक्स्ले ने एक दिन उनसे कहा—"'आप क्यों नहीं कुछ लिखते हैं?' मैंने लिखकर उनको दिखाया। उन्होंने कहा, 'बहुत शानदार लिखा है। आगे लिखते रहिये।' तो मैं लिखता रहा।" इसके बाद 'के' एक नोटबुक में रोज़ाना लिखते रहे। ऐसा लगता है 'के' ने हक्स्ले को लिखकर जो दिखाया था, वह ज़रूर कमेंटरीज़ ऑन लिविंग की शुरुआत रही होगी, हालांकि यह किताब 1956 तक नहीं छपी थी और उससे पहले दो अन्य किताबें ब्रिटेन और अमेरिका के प्रसिद्ध प्रकाशकों द्वारा छापी जा चुकी थीं।

विश्व के विभिन्न हिस्सों में 'के' ने जो व्यक्तिगत साक्षात्कार दिए थे उन्हीं में से छोटे-छोटे अंशों को लेकर कमेंटरीज़ ऑन लिविंग का संग्रह किया गया था। प्रत्येक अंश या तो उन व्यक्तियों के विवरण से शुरू होता था जो उनसे मिलने आते थे अथवा किसी स्थान के वर्णन से। साक्षात्कार के लोग अज्ञात बने रहें इसके लिए 'के' ने उन्हें आपस में 'गड्डमड्ड' कर दिया था। इसलिए स्विट्ज़रलैंड में हम संन्यासियों को पाते हैं और ज़ाहिरा तौर पर पश्चिमी लोगों को आलथी-पालथी मारे भारत में। किताब की शुरुआत

शानदार तरीके से इस पंक्ति से होती है : "उस दिन तीन धर्मपरायण अहंकारी मुझसे मिलने के लिए आए।" एक जगह वह प्रेम के बारे में लिखते हैं : "विचार अनिवार्य रूप से प्रेम को नकारता है। विचार का आधार स्मृति है और स्मृति प्रेम नहीं है।...विचार निश्चित रूप से स्वामित्व व अधिकार की भावना पैदा करता है जिससे चेतन या अचेतन रूप से ईर्ष्या का जन्म होता है। जहां ईर्ष्या है वहां स्पष्ट रूप से प्रेम नहीं है, जबकि अधिकांश लोगों के लिए ईर्ष्या प्रेम का एक लक्षण है...प्रेम में विचार सबसे बड़ी बाधा है।"

एक अन्य अध्याय में वे संबंधों में प्रेम और विचार के बारे में बोलते हैं :

> हम अपने हृदय को मस्तिष्क की चीज़ों से भर देते हैं इसलिए हमारे हृदय हमेशा इतने खाली-खाली और आशारत रहते हैं। यह मन है जो चिपकता है, ईर्ष्या करता है, पकड़ता और नष्ट कर देता है...हम ऐसा नहीं करते कि प्रेम करें, और इसे वैसे ही रहने दें, बल्कि हम प्रेम पाने के लिए लालायित हो उठते हैं; हम अगर देते भी हैं तो पाने के लिए, जो कि मस्तिष्क की उदारता है न कि हृदय की। मन हमेशा निश्चितता और सुरक्षा की तलाश में रहता है; और क्या प्रेम को मन द्वारा सुनिश्चित किया जा सकता है? क्या मन, जिसका सार ही समय है, प्रेम को हासिल कर सकता है जो कि अपनी शाश्वतता स्वयं है?[44]

यह पक्का नहीं है कि 'के' ने अपनी पहली किताब एड्यूकेशन एंड सिग्नीफिकेंस ऑव लाइफ ('शिक्षा एवं जीवन का तात्पर्य') कब लिखी जो 1953 में प्रकाशित हुई थी। इसकी पृष्ठ संख्या 17 पर वह लिखते हैं : "अज्ञानी व्यक्ति वह नहीं है जो कि अशिक्षित है बल्कि वह है जो स्वयं के बारे में नहीं जानता है। और ऐसा शिक्षित व्यक्ति जो समझ के लिए किताबों, ज्ञान व प्रामाण्य पर आश्रित है, वह मूर्ख है। समझ केवल स्वज्ञान से आती है जिसका अभिप्राय है अपनी कुल मानसिक प्रक्रिया के प्रति सजगता। इसलिए शिक्षा सच्चे अर्थों में स्वयं की समझ ही है, क्योंकि हममें से हरएक में समस्त अस्तित्व समाया हुआ है।"

दूसरी किताब द फर्स्ट एंड लास्ट फ्रीडम ('प्रथम और अंतिम मुक्ति') 1954 में प्रकाशित हुई। इसमें आल्डस हक्स्ले ने एक लंबी भूमिका लिखी और शायद किसी भी अन्य किताब की तुलना में इस किताब ने 'के' की शिक्षा की तरफ सबसे अधिक लोगों को आकर्षित किया। उस अनिश्चित तिथि तक, जबकि यह किताब लिखी गयी थी, 'के' की शिक्षा का संपूर्ण विस्तार इसमें आ जाता है। ऐसी कई बातें हैं जो 'के' को अन्य धार्मिक शिक्षकों से विलक्षण रूप से अलग करती हैं। उनमें से एक है उनका किसी भी प्रकार का समझौता करने या सुविधा पेश करने से दृढ़ इंकार। हमारे गुरु होने से वह इंकार करते हैं; वह हमें यह बताने नहीं जा रहे कि हमें करना क्या है—वह हमारे सम़क्ष़ बस एक आईना लेकर खड़े हो जाते हैं और हिंसा, अकेलेपन, ईर्ष्या और मनुष्यता को संतप्त करने वाली अन्य तमाम मुसीबतों के कारणों की तरफ संकेत करते हैं और कहते हैं, "इसे (इन शिक्षाओं को) लीजिए या छोड़ दीजिए। और आपमें से अधिकांश इसे छोड़ देने वाले हैं जिसका सीधा-सादा कारण होगा कि आपको इसमें अपनी तृप्ति का साधन

नहीं मिलेगा।” अपनी समस्याएं हमें खुद ही सुलझानी हैं, उन्हें और कोई नहीं सुलझा सकता।

1944 की गर्मियों में ‘के’ ने फिर से ओहाय के ओक उपवन में वार्ताओं की शुरुआत की तथा लगातार दस रविवारों तक वार्ताएं दीं। पेट्रोल पर राशन होने के बावजूद पूरे अमेरिका से लोग वार्ताओं में शामिल होने और ‘के’ से व्यक्तिगत साक्षात्कार मांगने के लिए आए। एक प्रश्नकर्ता ने उनसे पूछा : “उन लोगों के साथ क्या करना चाहिए जिन्होंने यातना शिविरों की दहशत पैदा की है?” इसका ‘के’ ने जवाब दिया—“उन्हें सज़ा कौन देगा? क्या न्याय करने वाला अक्सर मुलज़िम के समान ही दोषी नहीं होता? हममें से हरएक ने इस सभ्यता का निर्माण किया है, हममें से हरएक ने इसके दुख-कष्टों में योगदान किया है...आप सोचते हैं कि दूसरे देश की क्रूरताओं के बारे में चिल्लाने से आप अपनी क्रूरताओं की अनदेखी कर लेंगे।”

वहां बैठे एक दूसरे श्रोता के साथ हमारी सहानुभूति हो सकती है जिसने कहा : “आप बहुत निराश करने वाले हैं। हमें आगे बढ़ने के लिए प्रेरणा की आवश्यकता है लेकिन आप हमें प्रोत्साहित नहीं करते जिससे हमारे अंदर साहस और आशा जग सके। क्या प्रेरणा की खोज गलत है?” किंतु ‘के’ के कठोर जवाब ने उसे उत्साहित नहीं किया होगा—“आप क्यों प्रेरणा की तलाश करते हैं? क्या यह इसलिए नहीं कि आप स्वयं भीतर से रीते, अनिश्चित और अकेले हैं? आप अपने अकेलेपन को, अपने इस दर्दभरे रीतेपन को भरना चाहते हैं। इसे भरने के लिए आपने अवश्य ही तरह-तरह के उपाय किए होंगे और आप उम्मीद करते हैं कि यहां आकर आप फिर इससे पलायन कर पाएंगे। इस शुष्क अकेलेपन को ढँक देने की इस क्रिया को ही आप प्रेरणा कह रहे हैं। प्रेरणा तब एक उद्दीपन भर है, और सभी उद्दीपनों-उत्तेजनाओं की तरह यह भी जल्द ही अपनी ऊब और संवेदनहीनता ले आती है।”

1944 की इन वार्ताओं की एक प्रामाणिक रिपोर्ट भारत में प्रकाशित हुई और अगले ही साल स्टार पब्लिशिंग ट्रस्ट ने, जिसका नाम बदलकर अब ‘कृष्णमूर्ति राइटिंग्स इनकॉर्पोरेटेड’ (KWINC) हो गया था, इसे प्रकाशित किया। इसके बाद ‘के’ ने अपनी वार्ताओं का स्वयं संशोधन करना बंद कर दिया। स्टार पब्लिशिंग ट्रस्ट की तरह ‘कृष्णमूर्ति राइटिंग्स’ भी एक चैरिटेबल ट्रस्ट था जिसका एकमात्र उद्देश्य ‘के’ की शिक्षा को विश्व भर में फैलाना था। ‘के’, राजगोपाल और तीन अन्य लोग इसके ट्रस्टी थे। लेकिन बाद में दुर्भाग्य से ‘के’ ने इससे इस्तीफा दे दिया, कारण कि वह इसकी वित्तीय बैठकों में उलझना नहीं चाहते थे। इसके बाद राजगोपाल इसके अध्यक्ष हो गए। कृष्णमूर्ति के कार्यों के लिए जितना भी दान आता था, वह इसी अंतरराष्ट्रीय संगठन के पास जाता था।

आखिरकार बीस साल बाद, यानी सितंबर 1946 में, ओहाय घाटी के ऊपरी सिरे पर मौजूद उस ज़मीन पर एक स्कूल खोल दिया गया जिसे श्रीमती बेसेंट ने 1926-27 में खरीदा था। यह सहशिक्षा पर आधारित एक छोटा माध्यमिक विद्यालय था जिसे हैप्पी वैली स्कूल नाम दिया गया। एक हैप्पी वैली एसोसिएशन बनायी गयी थी जो इसका

आर्थिक प्रबंध संभाल रही थी और 'के', आल्डस हक्स्ले, व रोज़ालिंड इसके मूल ट्रस्टियों में से थे। रोज़ालिंड स्कूल का संचालन कर रही थी। 'के' की योजना थी कि स्कूल खुल जाने के तुरंत बाद वह न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया व भारत के दौरे पर चले जाएंगे। लेकिन निकलने के कुछ दिन पहले ही वह गंभीर रूप से बीमार पड़ गए। उनके फेफड़ों में इन्फेक्शन हो गया था। दो महीने तक वह बिस्तर पर रहे। पहले महीने उन्हें बहुत अधिक पीड़ा झेलनी पड़ी। उन्हें ठीक होने में छः माह से अधिक लगे। बाद में 'के' को इस बीमारी की धुंधली और त्रुटिपूर्ण याददाश्त ही रही। 1979 में उन्हें केवल यह याद था कि "मैं डेढ़ साल तक बीमार था, बुरी तरह बीमार। एक डॉक्टर था, लेकिन मुझे कुछ नहीं दिया गया।" अस्पताल में वह जाना नहीं चाहते थे इसलिए रोज़ालिंड ने ही उनकी सेवा-शुश्रूषा की। संभवतः उन्होंने किसी भी प्रकार की दवाई लेने से इनकार कर दिया था, इस डर से कि डॉक्टर लोग उनकी संवेदनशील देह के साथ कुछ भी कर सकते हैं। हालांकि उन्हें पता था कि 'प्रॉसेस' की पीड़ा की तरह इस पीड़ा को झेलते रहना आवश्यक नहीं था।

'के' का कार्यक्रम अब इस बात पर निर्भर था कि उनका वीज़ा आगे बढ़ाया जाता है या नहीं। 15 अगस्त 1947 को जब भारत आज़ाद हो गया तो सभी हिंदुओं और मुसलमानों की तरह उन्हें भी यह विकल्प दिया गया कि या तो वह अपना ब्रिटिश पासपोर्ट जारी रख सकते हैं अथवा अपने देश का पासपोर्ट बनवा सकते हैं। हालांकि राष्ट्रीयता उनके लिए बड़ी से बड़ी बुराइयों में से एक थी फिर भी उन्हें यात्रा करने के लिए पासपोर्ट तो चाहिए ही था और, उन्होंने भारतीय पासपोर्ट को चुना। स्वतंत्रता आंदोलन में उनके कितने सारे भारतीय मित्र पीड़ा झेल चुके थे, ऐसे में शायद ही वह दूसरा विकल्प चुनते। स्वास्थ्यलाभ की दृष्टि से उनके वीज़ा की अवधि सितंबर 1947 तक बढ़ा दी गई। इसके बाद न्यूज़ीलैंड और आस्ट्रेलिया का कार्यक्रम रद्द करके वह इंग्लैंड होते हुए भारत के लिए रवाना हुए।

लंदन में 'के' तीन हफ्तों तक लेडी एमिली के साथ रुके। (उनके पति का देहांत 1944 में फेफड़ों के कैंसर से हो चुका था।) दोनों ने एक-दूसरे को नौ सालों से नहीं देखा था। 'के' को देखते ही उनका सारा रोष जाता रहा। 'के' अब बावन साल के थे और वह तिहत्तर साल की। हालांकि उन दोनों का आपस में पत्र-व्यवहार कम होता चला गया, फिर भी वह अपने पूरे हृदय से 'के' को प्यार करती रहीं, जब तक कि उनकी 1964 में मृत्यु नहीं हो गई। वह लेडी एमिली के साथ एक सप्ताहांत बिताने मेरे घर ससेक्स आए जहां मैं अपने दूसरे पति के साथ रह रही थी। मैंने मार डी मेंज़िअर्ली को भी अपने घर पर आमंत्रित किया जो 'के' को देखने इंग्लैंड आई हुई थीं, क्योंकि 'के' का पेरिस जाने का कार्यक्रम नहीं था। 'के' बड़ी उम्र के ज़रूर लग रहे थे, उनके बालों में कुछ सफेदी भी आने लगी थी, लेकिन वह पहले ही की तरह ख़ूबसूरत थे और उनका व्यक्तित्व सचमुच ज्यों-का-त्यों था। वह हमेशा की तरह स्नेहमय और जीवन के प्रति उत्कट उमंग से भरे हुए थे, वही कोमल बात-व्यवहार, सहज नम्रता व सौजन्य। हम लोग ड्रेसिंग गाउन में सुबह के नाश्ते के लिए बैठते, बात करते और हँसते। उन्होंने कहा कि यह बिलकुल उन

दिनों की तरह है जब हम लोग और नित्या छुट्टियां बिता रहे थे, अर्वाल्ड, पर्जिन या 'प्रॉसेस' के दिनों को वह याद नहीं कर पा रहे थे पर हम लोगों ने साथ-साथ जो आनंद व खुशियां मनाई थीं उनकी कुछ स्मृति उन्हें ज़रूर थी। उन्होंने मुझसे पूछा कि नित्या दिखने में कैसा था और उन्हें आश्चर्य हुआ जब मैंने बताया कि उसमें बहुत मामूली सा भैंगापन था।

अब तक 'के' ओहाय में राजगोपाल परिवार के साथ बंद होकर रह गए थे जिनकी प्रवृत्ति 'के' को दबाने की रहती थी। उन्हें देखकर ऐसा लग रहा था कि वह बहुत राहत महसूस कर रहे हैं कि अब वह मुक्त हैं और यात्रा कर सकते हैं। अक्टूबर में वह अकेले बंबई के लिए हवाई जहाज़ से रवाना हुए। यह उनकी भारत की पहली हवाई यात्रा थी। वहाँ वह अठारह माह तक रहे। भारत में उनका यह दौरा काफी महत्त्वपूर्ण रहा, कारण कि उन्हें वहां अपने अनुयायियों का एक ऐसा नया समूह मिला जिसके सारे लोग जीवन भर न केवल उनके चुने हुए मित्र रहे, बल्कि भारत में उनके कार्यों के लिए बहुत मूल्यवान भी।

इस समूह में सबसे महत्त्वपूर्ण दो बहनें थीं—पुपुल जयकर और नंदिनी मेहता, दोनों ही शादीशुदा और वी.एन. मेहता की बेटियां। मेहता साहब गुजराती ब्राह्मण थे जो इंडियन सिविल सर्विस में एक प्रतिष्ठित ओहदे पर रहे थे, संस्कृत और फ़ारसी के विद्वान थे। 1940 में उनका देहांत हो चुका था। उनकी पत्नी ने समाजसेवा में एक लंबा समय बिताया था और वह बंबई में रहती थीं। उनकी बेटियां भी वहीं थीं। छोटी वाली नंदिनी का वैवाहिक जीवन सुखी नहीं था, उनके तीन बच्चे थे। विवाह सर चुन्नीलाल मेहता के बेटे भगवान मेहता से हुआ था। सर चुन्नीलाल युद्ध के पहले से 'के' के भक्त थे। वह नंदिनी को 'के' से मिलवाने के लिए ले गए। नंदिनी उनसे मिलकर अभिभूत हो गई और बाद में अपने श्वसुर के साथ उनकी वार्ताएं सुनने के लिए गई। कुछ महीनों बाद उसने अपने पति को बताया कि वह अब वैवाहिक जीवन नहीं बिताना चाहती है। 'के' के भारत छोड़ने के बाद उसने अपने पति से अलग होने के लिए बंबई हाईकोर्ट में क्रूरता की बुनियाद पर एक याचिका दायर की, जिसमें अपने नौ, सात और तीन साल के बच्चों को अपने पास रखने की भी मांग की गई थी। उसके पति ने अपने बचाव में सफाई देते हुए दावा किया कि उसकी पत्नी कृष्णमूर्ति की शिक्षा से अनुचित रूप से प्रभावित है। वकील ने अदालत में 'के' की वार्ताओं से लंबे-लंबे उद्धरण पेश किए जिनमें भारतीय स्त्रियों की दुर्दशा और उनकी पतियों की दासता का ज़िक्र था। लेकिन पूरी सुनवाई के दौरान कोई भी अनुचित बात नहीं सुझाई गई। नंदिनी मुकदमा हार गई और उसके बच्चे उससे ले लिये गए। वह पहले ही पति का घर छोड़कर अपनी मां के घर में शरण ले चुकी थी। मुकदमे के परिणाम का तार 'के' को भेजा गया जिसके उत्तर में उन्होंने कहा, 'जो भी होगा ठीक होगा'।[45] इंग्लैंड में एक झूठी अफवाह फैला दी गई थी कि एक तलाक के मामले में कृष्णमूर्ति सहप्रतिवादी के रूप में कोर्ट द्वारा तलब किए गए हैं। अपने शेष जीवन-भर 'के' नंदिनी के प्रति एक विशेष कोमलता महसूस करते रहे। 1954 में एक छोटा-सा कृष्णमूर्ति

दिवसीय विद्यालय ‘बाल आनन्द’ बंबई में खोला गया जिसकी निदेशिका नंदिनी बनी।

नंदिनी की बड़ी बहन पुपुल जयकर से उनकी मुलाकात 1948 के शुरू में हुई। 1940 के शुरुआती दशक से वह समाज सेवा के क्षेत्र में थीं। हाथ से बने वस्त्र-परिधानों और शिल्पकारी की वस्तुओं के विकास एवं उनके निर्यात में उनकी अहम भूमिका थी। बाद में वह भारतीय महोत्सव समिति की अध्यक्ष बनीं। इन्दिरा गांधी से उनकी पुरानी मित्रता थी और जब 1966 में श्रीमती गांधी भारत की प्रधानमंत्री बनीं तो उन्हें भारत में काफी अधिक प्रभाव हासिल हो गया। नंदिनी की अपेक्षा उनका काफी प्रभावशाली चरित्र था। हालांकि अपने पति को छोड़ देने का अर्थ था कि नंदिनी में काफी अधिक आंतरिक शक्ति अवश्य रही होगी।

समूह के अन्य लोगों में इस समय ‘के’ के साथ थे सुनन्दा पटवर्धन और उनके पति पामा पटवर्धन (इनका ‘पैट’ के साथ कोई संबंध नहीं था) और उनके बड़े भाई अच्युत पटवर्धन। पामा ओरिएंट लौंगमैन प्रकाशन संस्थान में साझेदार थे और अच्युत ‘के’ के पुराने मित्र और एक महान स्वतंत्रता सेनानी थे। अगले दो साल तक अच्युत राजनीति में रहे। सुनन्दा के पास मद्रास विश्वविद्यालय से पीएच.डी. की डिग्री थी और अब वह कानून की पढ़ाई कर रही थीं। बाद में जब ‘के’ भारत आते थे तो वह उनकी निजी सचिव की तरह काम करती थीं; उनके साथ वह यात्राएं करतीं और वार्ताओं-चर्चाओं की शॉर्टहैंड टिप्पणियां लेतीं। बाद में वह और उनके पति ‘वसंत विहार’ में रहने चले आए। समूह के दो अन्य सदस्य थे डॉ. वी. बालसुंदरम और आर. माधवाचारी। डॉ. बालसुंदरम इंस्टीट्यूट ऑव साइंस, बंगलौर के युवा अध्यापक थे और बाद में ‘ऋषि वैली’ स्कूल के प्रधानाचार्य बने। माधवाचारी भारत में ‘कृष्णमूर्ति राइटिंग्स’ के सचिव थे और ‘वसंत विहार’ में उनका निवास था। भारत में राजगोपाल के कानूनी अधिकार माधवाचारी के पास थे और यहां पर ‘के’ की वार्ताओं और यात्राओं का इंतज़ाम वह देखते थे; इन वार्ताओं के संपादन एवं प्रकाशन की ज़िम्मेदारी भी उन्हीं की थी।

भारत-पाकिस्तान के विभाजन के मात्र दो माह बाद ही ‘के’ बंबई पहुंचे थे और उत्तर में हिंदू-मुसलमानों का आपस में कत्लेआम जारी था। इसके बावजूद ‘के’ कराची और दिल्ली तक गए। लेकिन 30 जनवरी 1948 को जब गांधीजी की हत्या हुई तो उससे पहले वह दिल्ली से जा चुके थे। (ऐसा लिखा गया है : ‘गांधीजी की हत्या के साथ जब रोशनी चली गयी थी तो जवाहरलाल नेहरू ने एकांत में अपनी वेदना की अभिव्यक्ति कृष्णमूर्ति से ही की थी।’[46] यह अमूमन सच था, ‘के’ ने इस बात की पुष्टि की थी; नेहरू के लिए उनमें बहुत अधिक स्नेह था।)

उत्तर भारत में ‘के’ की कई वार्ताएं हुईं। इसके बाद बंबई में 1 जनवरी से 25 मार्च 1948 तक उनकी बारह वार्ताएं हुईं। तीन हज़ार से अधिक लोगों ने इनमें भाग लिया। इसके बाद वसंत विहार, मद्रास में तकरीबन अप्रैल भर उनकी निजी परिचर्चाएं चलीं। (लेडी एमिली को उन्होंने लिखा कि इतना अधिक श्रम उन्होंने जीवन में कभी नहीं किया।) अपनी हर वार्ता में उन्होंने जीवन की विभिन्न समस्याओं पर एक भिन्न दृष्टिकोण

से चर्चा का प्रयास किया। पर चूंकि हर बार उन्हें नये श्रोताओं के बीच बोलना होता था इसलिए एक बड़ी मात्रा में पुनरावृत्ति का होना लाज़िमी था। मूलरूप से भारत की वार्ताओं में तथा किसी भी अन्य जगह की वार्ताओं में कोई फर्क नहीं रहता था। ओहाय के उन युद्धकालीन ख़ामोश वर्षों में जो कुछ नया निकलकर आया था वह उनके लेखन में निखरकर आ चुका था, विशेषकर द फर्स्ट एंड लास्ट फ्रीडम और कमेंटरीज़ ऑन लिविंग में। उनके भारतीय श्रोता कहीं अधिक श्रद्धालु थे। उन्हें एक दिव्य गुरु के रूप में माना जाता था।

मई में 'के' पूर्ण विश्राम के लिए ऊटी गए। मद्रास के पास की यह ख़ास पहाड़ी जगह है। अपने कुछ मित्रों के साथ वे सेजमूर नाम के एक घर में ठहरे। उनके आग्रह पर पुपुल जयकर और नंदिनी मेहता भी वहां आईं और पास के एक होटल में ठहरीं। सेजमूर की कुछ घटनाओं को श्रीमती जयकर ने लिपिबद्ध किया है जो इस बात का संकेत है कि 'प्रॉसेस' की शुरुआत फिर हो गई थी—उसी रूप में जैसी कि ओहाय, अर्वाल्ड और पर्जिन में हुई थी। इन बहनों के लिए यह अवश्य ही डराने वाला अनुभव रहा होगा जो कि अभी भी 'के' को पूरी तरह नहीं जानती थीं और संभवतः जिन्हें पिछली घटनाओं का कुछ पता नहीं था।

एक दिन 'के' उन बहनों के साथ सैर के लिए गए हुए थे तभी एकाएक उन्होंने कहा कि वह बीमार महसूस कर रहे हैं और उन्हें घर लौट चलना चाहिए। उन्होंने उन दोनों को साथ रहने के लिए कहा; साथ में यह भी कहा कि जो कुछ भी हो वे उससे डरे नहीं और डॉक्टर को नहीं बुलाएं। अपने सिर में दर्द की बात उन्होंने कही। कुछ समय बाद वह बोले कि वह 'जा' रहे हैं। उनका चेहरा 'थका हुआ और पीड़ा से भरा' था। उन्होंने उन दोनों से पूछा कि वे दोनों कौन हैं और क्या वे नित्या को जानती हैं। फिर वह नित्या के बारे में बताने लगे। उन्होंने कहा कि नित्या की मृत्यु हो चुकी है और वह उसे प्यार करते थे और उसके लिए रोए थे।* उन्होंने उन दोनों से पूछा कि क्या वे बेचैनी अनुभव कर रही हैं। पर उनके जवाब में कोई दिलचस्पी नहीं दिखायी। कृष्णा को वापस बुलाना उन्होंने बंद कर दिया : "वह मुझसे कह रहा है कि मैं उसे नहीं बुलाऊं।" इसके बाद वह मृत्यु के बारे में बोलने लगे। उन्होंने कहा कि यह बिलकुल नज़दीक है, 'बस एक धागे बराबर अंतराल पर', कितना आसान होगा उनके लिए मृत्यु का वरण करना पर वह ऐसा नहीं करना चाहेंगे क्योंकि उनके ज़िम्मे कुछ कार्य हैं। आखिर में वह बोले—"वह वापस आ रहा है। क्या आप उसके साथ उन लोगों को नहीं देखतीं—जो कि निष्कलंक, निर्मल और पावन हैं—अब चूंकि वे लोग यहां हैं वह आएगा। मैं कितना थक गया हूँ, पर वह एक पक्षी के समान है, नित्य नूतन।" तभी अचानक कृष्णा फिर से वहां थे।

इस वृत्तांत की तारीख नहीं दी गई है। अगला वृत्तांत 30 मई 1948 का है :

> कृष्णा सैर पर जाने के लिए तैयार हो रहे थे तभी अचानक उन्होंने कहा कि वह बहुत कमज़ोर महसूस कर रहे हैं और उन्हें लग रहा है कि वह वहां पूरी तरह नहीं हैं। वह बोले, 'कितनी पीड़ा हो रही है' और अपने सिर का पिछला हिस्सा

पकड़कर लेट गए। कुछ मिनट बाद जिस 'के' को हम जानते थे वह वहां नहीं थे। दो घंटे तक हमने उन्हें घोर पीड़ा से गुज़रते देखा। ऐसी पीड़ा मैंने पहले कभी नहीं देखी थी। वह बोले कि उनकी गर्दन के पीछे दर्द है। दांत में उनके दर्द हो रहा था, पेट फूला हुआ और कड़ा था और वह कराह रहे थे...बीच-बीच में वह चिल्लाते। कई बार वह मूर्च्छित हुए। जब वह पहली बार वापस आए तो बोले—"जब मैं मूर्च्छित हो जाऊं तो मेरा मुंह बंद कर देना।" वह कहते रहे—"ओह अम्मा, ईश्वर मुझे शांति दे। मुझे पता है वे किस बात पर आमादा हैं। उसे वापस बुलाइए, मुझे पता है जब पीड़ा चरम पर पहुंच जाएगी तब वे वापस चले जाएंगे। उन्हें पता है कि शरीर कितना बर्दाश्त कर सकता है। अगर मैं पागल हो जाऊं तो मेरा ख्याल रखना। हालांकि ऐसा संभव नहीं है कि मैं पागल हो जाऊं। वे लोग इस शरीर को लेकर बहुत सावधान हैं—मैं कितना बूढ़ा अनुभव कर रहा हूँ—मेरा केवल छोटा-सा हिस्सा काम कर रहा है। मैं एक रबड़ के खिलौने की तरह हूँ जिसके साथ बच्चे खेला करते हैं। यह बच्चा ही है जो उस खिलौने को जीवन देता है।" इस पूरे समय उनका चेहरा थका-मांदा और पीड़ा की यातना से भरा था। वह अपनी मुट्ठियां बांधे हुए थे और उनकी आंखों से अश्रु बहे जा रहे थे। "ऐसा लगता है पहाड़ी पर चढ़ता हुआ मैं एक इंजन हूँ।" दो घंटे बाद वह फिर मूर्च्छित हो गए। जब वह लौटे तो बोले—"पीड़ा मिट गई है। मेरे अंदर बहुत गइराई में जो कुछ घटित हुआ है उसका मुझे आभास है। गैसोलिन (ईंधन) का भंडारण मेरे अंदर कर दिया गया है। टैंक पूरा भरा है।"

इसके बाद वह कुछ चीज़ों का वर्णन करने लगे जिनको उन्होंने अपनी यात्राओं के दौरान देखा था; वह प्रेम के ऊपर बोले : "तुम्हें पता है प्रेम करना किसे कहते हैं? पिंजरा चाहे जितना सोने से मढ़ा हो लेकिन बादल को आप उसमें कैद करके नहीं रख सकते। वह पीड़ा मेरे शरीर को स्टील की तरह बना देती है और फिर भी वह कितना लचीला, नमनीय, बिना किसी विचार के रहता है। यह परिष्कार करने, परीक्षण करने की तरह है।" पुपुल जयकर ने जब उनसे पूछा कि क्या वह पीड़ा को आने से रोक सकते हैं, तो वह बोले—"तुम्हारे एक बच्चा हो चुका है। जब यह आना शुरू होता है तो क्या तुम उसे रोक सकती हो?" अब वह पालथी मारकर सीधे बैठ गए। चेहरे से पीड़ा जा चुकी थी। श्रीमती जयकर के अनुसार : "यह समयातीत था। उनकी आंखें बंद थीं। उनके होंठ हिले। वह आकार में बढ़ते हुए प्रतीत हुए। उनके भीतर कोई विराट वस्तु समा गई हो, ऐसा हमने महसूस किया। वातावरण में एक स्पंदन था। उसने पूरे कमरे को भर लिया। फिर उन्होंने अपनी आंखें खोलीं और कहा—'कुछ घटित हुआ, क्या तुमने देखा?' हमने उन्हें बताया कि हमने क्या महसूस किया। वह बोले—'मेरा चेहरा कल भिन्न होगा।' वह लेट गए, उनके हाथ परिपूर्णता के भाव में फैल गए। उन्होंने कहा—'मैं वर्षा की बूंद की तरह हो जाऊंगा, बिलकुल निष्कलंक।' कुछ मिनट बाद उन्होंने बताया कि वह ठीक हैं और हम लोग घर जा सकते हैं।"

जून में इसी से मिलती-जुलती दो घटनाएं और हुईं। 17 जून को 'के' सैर के लिए गए। पुपुल और नंदिनी को उन्होंने अपने कमरे में प्रतीक्षा करने के लिए कह दिया था। जब वह लौटे तो वह एक अजनबी व्यक्ति के रूप में थे : "के जा चुके थे। उन्होंने कहना शुरू किया कि वह भीतर से आहत हैं, उन्हें जला दिया गया है—उनके सिर के आर-पार दर्द हो रहा है। उन्होंने कहा : 'तुम्हें पता है, तुम उसे कल नहीं देख पातीं। वह वापस आया ही नहीं होता।' वह अपने शरीर को लगातार टटोलते, महसूस करते रहे, यह जानने के लिए कि वह यहां पूरा मौजूद है भी या नहीं।' वह आगे बोले : 'मुझे वापस जाकर ज़रूर पता लगाना चाहिए कि सैर के वक्त क्या घटित हुआ। कुछ हुआ था और वे लोग जल्दी-जल्दी वापस चले गये थे, लेकिन मुझे मालूम नहीं कि मैं लौटा या नहीं। हो सकता है मेरे कुछ अंश सड़क पर पड़े हों।'"

अगले दिन शाम को फिर वह अकेले सैर पर गए और पुपुल व नंदिनी उनके कमरे में इंतज़ार करती रहीं। सात बजे के करीब जब वह लौटे तो वह पुनः 'एक अजनबी' थे। वह लेटने चले गए। "वह बोले उन्हें लग रहा है कि वह जल गए हैं, पूरी तरह जल गए हैं। वह रो रहे थे। उन्होंने कहा—'मैंने पता कर लिया है कि सैर के वक्त क्या हुआ था। वह पूर्ण रूप में वापस आया और उसने सारा भार अपने ऊपर ले लिया। इसीलिए मुझे यह पता नहीं चला था कि मैं लौटा या नहीं। मुझे कुछ भी नहीं पता था। उन्होंने मुझे जला दिया है ताकि और अधिक रिक्तता हो जाए। वे देखना चाहते हैं कि उसका कितना अंश इसमें आ सकता है।'" पुनः पुपुल और नंदिनी को कमरे में छा जाने वाला वह स्पंदन महसूस हुआ जो उन्हें 30 मई की शाम को हुआ था।[47]

इन बहनों को यह नहीं मालूम था कि अतीत में इस प्रकार की घटनाएं पहले भी घट चुकी हैं और यह तथ्य इन वर्णनों को खास अहमियत देता है कि इनमें और उन घटनाओं में, जो ओहाय, अर्वाल्ड व पर्जिन में हुई थीं, बहुत अधिक समानता है—जैसे पीड़ा के साथ अक्सर मूर्च्छित हो जाना, कृष्णा के शरीर का भयभीत होना और उसे वापस बुलाने का डर, और उसका यह एहसास कि अगर कृष्णा वापस आ जाता है तो पीड़ा समाप्त हो जाएगी, लेकिन इसके साथ ही 'प्रॉसेस' भी। और फिर इस बात के संकेत कि वह मृत्यु के कितने निकट हैं। (अर्वाल्ड में कृष्णा जब 'अनुपस्थित' थे तभी अचानक गिरजाघर की घंटियां बजने लगीं और इससे उनके शरीर को इतना तगड़ा धक्का लगा कि कृष्णा को वापस आना पड़ा। लेडी एमिली के अनुसार बाद में 'के' ने कहा कि 'उस दिन मैं मृत्यु से बाल-बाल बचा था। वे घंटियां मानो मेरी शवयात्रा की सूचना देने के लिए बजी थीं।') पुपुल जयकर के वर्णनों से हमें पता चलता है कि 'के' के अतिरिक्त और भी सत्ताएं उस वक्त मौजूद रहती थीं, उसी प्रकार जैसे कि पिछली दर्ज की हुई घटनाओं में ज़िक्र आता है। एक तो 'वे' लोग होते थे जो शरीर के प्रति बहुत सावधान रहते थे, अनुमानतः वही लोग जिनका ज़िक्र पुपुल जयकर ने पहली घटना में 'निष्कलंक, निर्मल और पावन' के रूप में किया है। इसके बाद आता है 'वह' जो 19 जून को सैर के दौरान 'पूर्ण रूप में' आता है और 'अपने ऊपर सारा भार' ले लेता है। बिस्तर पर लेटी यातना से गुज़र रही वह

सत्ता 'जला' दी जाती है ताकि और अधिक रिक्तता आ सके और उस 'वह' का और अधिक अंश 'के' में या 'शरीर' में समा सके।

'वे' के रूप में जिन बेनाम सत्ताओं का ज़िक्र आता है, उनके अलावा अब तीन सत्ताओं की मौजूदगी प्रतीत होती है : शरीर की पीड़ा को झेलने के लिए जो सत्ता पीछे छूट जाती है वह; 'के' जो कहीं जाते हैं और फिर वापस आते हैं; और तीसरी रहस्यमयी सत्ता 'वह'। अब प्रश्न उठता है कि क्या ये सभी सत्ताएं 'के' की चेतना के विभिन्न रूप थे, अथवा ये सब अलग-अलग सत्ताएं थीं। दुर्भाग्य से जो एक व्यक्ति इस पर रोशनी डाल सकता था उसे ही यानी 'के' को ही इन सारी घटनाओं की कोई स्मृति नहीं रही थी। इसमें आश्चर्य भी नहीं होना चाहिए क्योंकि उस दौरान वह अपने शरीर के बाहर रहते थे। हालांकि उनको इस बात का हमेशा आभास रहता था कि वह किसी सत्ता द्वारा 'रक्षित' हैं जो उनसे बाहर है, और उन्हें विश्वास था कि जो भी उनके साथ यात्रा करता है वह भी उसी रक्षा के कवच में आ जाता है। लेकिन इस रक्षा के स्रोत के बारे में वह कुछ नहीं कह पाते थे। पर जो महत्त्वपूर्ण बात हमें इस वर्णन से सीखने को मिलती है यह है कि 'के' के शरीर पर अब भी कुछ तैयारी चल रही थी।

ऊटी प्रवास के बाद 'के' ने भारत की बहुत सी जगहों पर वार्ताएं दीं। उन्होंने 'राजघाट' और 'ऋषि वैली' स्कूलों का दौरा किया। उन्नीस महीने बाहर रहने के बाद वह अप्रैल 1949 में ओहाय लौटे।

---

* सन् 1925 के आरंभ में 'के' मैडम डी मेंज़िअर्ली के साथ ऊटी गए थे तभी वहां नित्या फिर से बीमार पड़ गया था। नित्या की मृत्यु के बाद 'के' जब दोबारा वहां गए थे तो उन्होंने लेडी एमिली को लिखा था : 'मैं उसी कमरे में ठहरा हूँ जिसमें नित्या था। मैं उसे महसूस करता हूँ, उसे देखता हूँ और उससे बात करता हूँ, लेकिन फिर भी मैं उसे व्यथित होकर याद करता हूँ।' हालांकि इस बार वह किसी दूसरे घर में ठहरे थे फिर भी यह पूरी तरह मुमकिन है कि नित्या की स्मृति फिर वापस आ गई हो।

12

मृत्यु के घर में प्रवेश

'के' जब भारत से ओहाय लौटे तो उनमें एक नयी स्वाधीनता राजगोपाल परिवार को दिखाई दी जिससे वे लोग चिंतित हो गए। उन लोगों ने नंदिनी के बारे में अफवाहें सुन रखी थीं। रोज़ालिंड इससे स्वभावतः बहुत अधिक ईर्ष्यालु हो गई, क्योंकि अब तक 'के' के जीवन में वह अकेली महिला थी। ईर्ष्या ने अधिकार-वृत्ति का रूप ले लिया, लेकिन 'के' को अधिकार में लेना नामुमकिन था, भले ही वह कितना भी अधिक प्यार करते हों। नवंबर में वह फिर भारत में थे। दिसंबर में वह मद्रास के उत्तर में 350 मील दूर स्थित राजमुंद्री में वार्ता दे रहे थे, उनसे पूछा गया—"आप कहते हैं कि संसार का मापदंड मनुष्य है, यदि वह स्वयं में परिवर्तन लाता है तो संसार में शांति होगी। क्या आपके स्वयं के परिवर्तन ने इसे सत्य के रूप में पाया है?" 'के' ने उत्तर दिया :

> आप और संसार दो अलग सत्ताएं नहीं हैं। आप ही संसार हैं... और यह आदर्श नहीं है बल्कि तथ्य है... चूंकि संसार आप हैं इसलिए आपमें परिवर्तन समाज में परिवर्तन लाता है। प्रश्नकर्ता का अभिप्राय है, चूंकि शोषण का अंत नहीं हो रहा है इसलिए जो मैं कह रहा हूँ वह व्यर्थ है। क्या यह सही है? मैं संसार भर का दौरा कर रहा हूँ, प्रचार के लिए नहीं, बल्कि सत्य की ओर संकेत करने के लिए। प्रचार मिथ्या है। आप एक विचार का प्रचार कर सकते हैं, सत्य का नहीं। मैं हर तरफ जाता हूँ सत्य की ओर इशारा करने, और यह आपके ऊपर है कि आप उसे पहचानते हैं या नहीं। एक व्यक्ति संसार को नहीं बदल सकता है लेकिन आप और मैं मिलकर इस संसार को बदल सकते हैं। आपको और मुझको पता करना है कि सत्य क्या है, क्योंकि सत्य ही संसार के दुखों को, इसकी दुर्दशा को मिटा सकता है।

जनवरी 1950 में कोलंबो में पहली बार बोलते हुए उनसे ऐसा ही एक और प्रश्न पूछा गया—'बजाय इसके कि आप संसार की व्यावहारिक रूप में मदद करें, आप क्यों प्रवचन देते हुए अपना समय बर्बाद करते हैं?' 'के' ने जवाब दिया :

> आपका मतलब है संसार में परिवर्तन लाना, एक बेहतर आर्थिक व्यवस्था लाना, धन-संपत्ति का बेहतर वितरण होना, बेहतर संबंध होना, अथवा सपाट तौर पर

कहें तो एक बेहतर नौकरी पाने में आपकी मदद करना। आप इस संसार में एक परिवर्तन देखना चाहते हैं, हर बुद्धिमान व्यक्ति ऐसा चाहता है, और आप चाहते हैं कि उस परिवर्तन को लाने के लिए आपको कोई तरीका हासिल हो जाए। इसलिए आप कहते हैं कि बजाय इस बारे में कुछ करने के मैं प्रवचन देते हुए समय क्यों बर्बाद कर रहा हूँ। अब, जो कुछ मैं वास्तव में कर रहा हूँ क्या वह समय की बर्बादी है? समय की बर्बादी तो तब होती जब मैं पुरानी विचारधाराओं और पुराने आदर्शों की जगह नयी विचारधारा और नये आदर्श लाता। कैसे क्रियाशील हों, कैसे जीएं, कैसे एक अच्छी नौकरी पाएं और कैसे एक बेहतर संसार का निर्माण करें, इस सबका कोई तथाकथित व्यावहारिक तरीका बताने की बजाय क्या यह पता लगाना महत्त्वपूर्ण नहीं है कि वे कौन-से अवरोध हैं जो एक सच्ची क्रांति को वास्तव में रोकते हैं—एक ऐसी क्रांति जो विचारों पर, दक्षिणपंथी या वामपंथी किसी भी प्रकार के विचारों पर आधारित नहीं है, बल्कि एक आधारभूत, आमूल क्रांति है? क्योंकि, जैसा कि हमने चर्चा में कहा है, आदर्श, विश्वास, सिद्धांत, रूढ़ियां, ये सब क्रिया को होने से रोकते हैं।

अगस्त 1950 में 'के' ओहाय में थे। उन्होंने एक साल के लिए रिट्रीट (एकांतवास) में जाने का निश्चय किया। वार्ताओं के साथ-साथ साक्षात्कार भी उन्होंने नहीं दिए और अपना अधिकांश समय अकेले घूमने, ध्यान करने और बगीचे में छोटा-मोटा काम करने में बिताया। 1951 की सर्दियों में वह फिर भारत आए। इस बार राजगोपाल उनके साथ थे जो कि पिछले चौदह साल से भारत नहीं आए थे। 'के' अभी भी रिट्रीट से पूर्णतया बाहर नहीं आए थे। वे वार्ताएं नहीं दे रहे थे और लोगों से बहुत कम मिल-जुल रहे थे। इस पूरे काल में ऐसा लगता था मानो वे अपने भीतर बहुत गहराई से झांक रहे थे।

1950 के शुरुआती दशक में जो सबसे अच्छी बात बाहरी तौर पर 'के' के साथ हुई वह थी वांदा स्कारावेल्ली (पहले का नाम था वांदा पसील्यी) के साथ उनकी घनिष्ठ मैत्री। इनसे उनकी मुलाकात रोम में सन् 1937 में हुई थी। 1953 की शरद ऋतु में दो दिन के लिए वह उनके और उनके पति के साथ रोम में रहे। इसके बाद वांदा उन्हें 'फिएसोले' के ऊपर बने अपने एक बड़े घर 'इल लेच्चो'* में ले गईं। वहां वे जैतून, साइप्रेस के वृक्षों और पहाड़ियों के बीच शांति से रहे। ओहाय और भारत की बारंबार यात्राओं के बीच 'इल लेच्चो' उनके लिए शरण-स्थल बन गया। हालांकि वह इंग्लैंड में रुकते थे और कभी-कभी पेरिस व यूरोप के अन्य हिस्सों में भी, पर 'इल लेच्चो' ही एक ऐसी जगह थी जहां उन्हें वार्ताओं, चर्चाओं और साक्षात्कारों से मुक्ति मिलती थी।

मई 1954 में 'के' न्यूयॉर्क के वॉशिंग्टन इरविंग हाई स्कूल में एक सप्ताह तक बोले और वहां परिचर्चाएं आयोजित कीं। बड़ी संख्या में लोगों ने हिस्सा लिया। इनमें से बहुत सारे लोग नये थे जिनकी रुचि हाल ही में प्रकाशित द फर्स्ट एंड लास्ट फ्रीडम के कारण जागी थी। इस पुस्तक के अमेरिकी संस्करण की समीक्षा करते हुए एन मॉरो लिंडबर्ग ने लिखा था "...उनकी बातों की विशुद्ध सरलता विस्मित करने वाली है। पुस्तक का एक

पैरा, बल्कि एक वाक्य ही कई दिनों तक तहकीकात करने, प्रश्न करने और चिंतन के लिए काफी है।" जब यह पुस्तक इंग्लैंड में प्रकाशित हुई तो ऑब्जर्वर में एक समीक्षक ने लिखा : "...उन लोगों के लिए जो सुनने की ख़्वाहिश रखते हैं इस पुस्तक की क़ीमत शब्दातीत होगी..."। एक अन्य समीक्षक ने टाइम्स लिटरेरी सप्लीमेंट में लिखा : "अंतर्दृष्टि और विश्लेषण दोनों में वह कलाकार हैं।" दो साल बाद जब कमेंटरीज़ ऑन लिविंग का अमेरिकी संस्करण आया, जो कि राजगोपाल द्वारा एकदम निर्दोष रूप से संपादित था, तो अमेरिका के जाने-माने लेखक और पत्रकार फ्रांसिस हैकेट ने 'के' के बारे में न्यू रिपब्लिक में लिखा : "मुझे लगता है कि उनके हाथों में जादुई रहस्य है...वे वही हैं जो लगते हैं, एक मुक्त पुरुष, प्रथम श्रेणी के; हीरों की तरह वार्धक्य को प्राप्त करते हुए, लेकिन उसी रत्न सरीखी लपट की तरह जो कभी पुरानी नहीं पड़ती और हमेशा जीवंत रहती है।" पुस्तक के ब्रिटिश संस्करण के बारे में टाइम्स लिटरेरी सप्लीमेंट के समीक्षक ने लिखा : "कथ्य में जो आध्यात्मिक और काव्यात्मक अंतर्दृष्टि है, उसे उतनी ही सादगी से अभिव्यक्त किया गया है, जितनी गहरी खोजबीन की इसमें मांग है।"

लेडी एमिली को लिखे पत्रों में 'के' ने कभी अपनी किसी प्रकाशित पुस्तक का ज़िक्र नहीं किया है, हालांकि 1930 के दशक में अपनी वार्ताओं को शुद्ध करने की बात उन्होंने लिखी है। यह वह काम था जिसे वह कब का छोड़ चुके थे। अपनी छपी पुस्तकों में 'के' की ज़रा भी रुचि नहीं रहती थी। कभी-कभार जब उनसे अनुरोध किया जाता था तो वह पुस्तक के लिए शीर्षक सुझा दिया करते थे। क्या याददाश्त की यह गैरमौजूदगी इस तथ्य के कारण थी कि किसी चीज़ के खत्म होने के बाद वह उसके बारे में फिर कभी नहीं सोचते थे?

अक्टूबर 1954 से अप्रैल 1955 के बीच 'के' की भारत में फिर वार्ताएं हुईं। भारत में राजगोपाल उनके साथ थे। फिर वे 'इल लेच्चो' गए। इसके बाद एम्स्टरडम में उनकी वार्ताएं हुईं। जून में 'के' लंदन आए। 'फ्रेंड्स मीटिंग हाउस' में वह छः बार बोले। (इस बार लंदन में वह श्रीमती जीन बिंडली के यहां ठहरे जो कि 'स्टार' के दिनों की मित्र थीं। इसका कारण था कि लेडी एमिली एक छोटे फ्लैट में चली गई थीं जहां 'के' के लिए पर्याप्त जगह नहीं थी। फिर भी 'के' उनसे रोज़ मिलते थे।) लंदन की इन वार्ताओं की तीसरे नंबर की वार्ता में 'के' ने पहली बार सार्वजनिक रूप से जीवित रहते हुए मृत्यु के घर में प्रवेश करने की बात कही। यह एक ऐसा विषय था जिसके बारे में वह आगे चलकर प्रायः बोलने वाले थे। यह विषय एक प्रश्न-उत्तर के दौरान आया। प्रश्न था : "मैं मृत्यु से भयभीत हूं। क्या आप मुझे किसी प्रकार का आश्वासन दे सकते हैं?" 'के' ने जो उत्तर दिया उसका एक अंश यहां प्रस्तुत है :

> आप जिन चीज़ों को जानते हैं उन्हें छोड़ने से डरते हैं...आप पूर्ण रूप से उन सारी चीज़ों को छोड़ने से डरते हैं जो आपके बहुत भीतर, आपके अस्तित्व की गहराइयों में जड़ जमाए हुए हैं, आप अज्ञात के साथ रहने से डरते हैं जो कि अंततः मृत्यु है... क्या आप, जो कि ज्ञात का परिणाम हैं, अज्ञात में अर्थात मृत्यु में प्रवेश कर

सकते हैं? यदि आप यह करना चाहते हैं तो आपको यह जीवित रहते हुए ही करना होगा, न कि अंतिम क्षणों में...जीवित रहते हुए मृत्यु के घर में प्रवेश करना—यह कोई भयानक विचार मात्र नहीं है, बल्कि यही एक समाधान है। एक संपन्न, परिपूर्ण—इसका जो भी अर्थ हो—जीवन जीते हुए, अथवा एक दयनीय, दरिद्र जीवन जीते हुए क्या हम उस चीज़ को नहीं जान सकते जो कि अपरिमेय, शब्दों से परे है और जिसकी झलक अनुभवकर्ता केवल कुछ विरले क्षणों में ही पाया करता है? क्या ऐसा हो सकता है कि मन क्षण प्रति क्षण हर उस चीज़ के प्रति मर जाए जिसका कि उसने अनुभव किया है, और संग्रह करे ही नहीं?

बाद में कमेंटरीज़ ऑन लिविंग के दूसरे खंड (1959) में 'के' ने इस विचार को और सरल रूप में प्रस्तुत किया : "यह कितना ज़रूरी है कि हम प्रत्येक दिन, प्रत्येक मिनट हर चीज़ के प्रति, उन बीते हुए दिनों के प्रति और अभी-अभी गुज़रे क्षण के प्रति भी मर जाएं! बिना मृत्यु के नवीनता नहीं है, बिना मृत्यु के सृजन नहीं। अतीत का बोझ स्वयं अपनी निरंतरता को बनाए रखता है, और कल की चिंताएं आज की चिंताओं को नया जीवन देती हैं।"

अगले दो वर्षों में ओहाय, भारत और इंग्लैंड के अलावा 'के' और कई स्थानों पर गए जहां उनकी सार्वजनिक वार्ताएं हुईं, उन्होंने निजी साक्षात्कार दिए, सम्मेलनों और सामूहिक परिचर्चाओं में हिस्सा लिया। ये स्थान थे सिडनी, अलेक्जेंड्रिया, एथेंस, हाम्बुर्ग, हॉलेंड और ब्रसेल्स। 1956 का जून का पूरा महीना उन्होंने अपने एक बेल्जियन मित्र रॉबर्ट लिंसेन के साथ ब्रसेल्स के पास स्थित उनके एक विला (हवेली) में बिताया। लिंसेन महोदय ने ब्रसेल्स के "पलै दे बो-आर्त' में 'के' की छः वार्ताओं की व्यवस्था की। बेल्जियम की महारानी एलिज़ाबेथ ने इन सभी वार्ताओं में भाग लिया और 'के' के साथ एक निजी साक्षात्कार की इच्छा प्रकट की।

1956-57 की सर्दियों में 'के' राजगोपाल और रोज़ालिंड के साथ भारत में थे। वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूम रहे थे, साथ में भारतीय अनुयायियों का एक दल भी था। 1956 में इक्कीस वर्षीय दलाई लामा तेंज़िन ग्येत्सो ने भारत आने और बुद्ध से संबंधित स्थानों का भ्रमण करने का न्योता स्वीकार किया था। ऐसा पहली बार हुआ था कि किसी दलाई लामा ने तिब्बत को छोड़ा था—इसके तीन साल बाद जब चीन ने उन्हें जान से मारने की धमकी दी तो वह भारत चले आए थे। दलाई लामा अपने अनुयायियों के एक विशाल दल के साथ एक विशेष ट्रेन में यात्रा कर रहे थे। उनके साथ सिक्किम के एक राजनीतिक अधिकारी अप्पासाहेब पंत थे जिन्होंने दलाई लामा को कृष्णमूर्ति और उनकी शिक्षा के बारे में बताया। दिसंबर में जब दलाई लामा मद्रास पहुंचे तो उन्हें पता चला कि कृष्णमूर्ति 'वसंत विहार' में ठहरे हुए हैं। हालांकि यह प्रोटोकॉल के बिलकुल विपरीत था फिर भी उन्होंने कृष्णमूर्ति से मिलने की आग्रहपूर्ण इच्छा प्रकट की। अप्पासाहेब के अनुसार, जैसा कि पुपुल जयकर ने वर्णन किया है, "कृष्णजी उनसे सामान्य रूप से मिले। उनके बीच तत्क्षण पैदा हुए वैद्युत स्नेह को महसूस करना

विस्मयकारी था।" दलाई लामा ने नम्रतापूर्वक लेकिन सीधे पूछा : 'श्रीमान आप किसमें विश्वास करते हैं?' इसके बाद बातचीत बिना किसी वाक्पटुता के लगभग एक शब्दीय वाक्यों में चलती गई। युवा लामा स्वयं को परिचित धरातल पर पा रहे थे क्योंकि कृष्णजी उन्हें 'अनुभूति' के स्तर पर ले आए थे। आगे चलकर दलाई लामा ने उनके बारे में कहा, 'एक महान आत्मा, एक महान अनुभूति' और कृष्णमूर्ति से पुनः मिलने की इच्छा प्रकट की।[48] लेकिन अगली मुलाकात की व्यवस्था दिल्ली में 31 अक्टूबर 1984 से पहले नहीं की जा सकी, और उसी दिन श्रीमती इंदिरा गांधी की हत्या की वजह से यह फिर कभी न हो सकी।

जनवरी 1957 में कोलंबो में 'के' की जो पांच वार्ताएं हुईं उन सभी को श्रीलंका सरकार ने प्रसारण की अनुमति दे दी। वे वार्ताएं इतनी विस्फोटक थीं कि 'के' को यह बड़ी आश्चर्यजनक बात लगी। इस साल की उनकी अंतिम वार्ता मार्च में, बंबई में हुई। इसके बाद कुछ ऐसा हुआ कि सितंबर 1958 से पहले उनकी कहीं वार्ता नहीं होनी थी। ऐसा परिस्थितिवश हुआ था, न कि किसी निर्णय के कारण। उनके बाहरी जीवन में एक बड़ा परिवर्तन होने जा रहा था।

6 मार्च को राजगोपाल के साथ बंबई से वह रोम के लिए रवाना हुए। वहां से वह 'इल लेच्चो' गए जहां उन्हें मार्च के अंत तक रहना था और इसके बाद उन्हें एक सम्मेलन के लिए राजगोपाल के साथ हेलसिंकी, फिनलैंड जाना था। भारत में ही वह थोड़े-बहुत बीमार चल रहे थे। अचानक उन्होंने हेलसिंकी सहित अपने आगे के सारे कार्यक्रम रद्द कर दिए जिसमें लंदन, बियारिट्स (फ्रांस), ओहाय, न्यूज़ीलैंड और आस्ट्रेलिया की वार्ताएं शामिल थीं। 'इल लेच्चो' में वह हफ्तों रहे, बिना कुछ किये, यहां तक कि उन्होंने कोई पत्र भी नहीं लिखा होगा। (उनके वहां रहने के दौरान ही वांदा स्कारावेल्ली के पति का फ्लोरेंस में देहांत हुआ।) मई के अंत में वह राजगोपाल से ज़्यूरिख में मिले और वहीं से एक-साथ गश्टाड गए जहां उन्हें रहने के लिए आमंत्रित किया गया था। इस जगह से 'के' का यह पहला परिचय था और यह परिचय शीघ्र ही घनिष्ठता में बदलने जा रहा था। ओमन कैंप की तर्ज़ पर यहां (स्विट्ज़रलैंड में) हर साल एक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन करने का विचार शायद इसी समय उनके दिमाग में आया हो। इससे वह बहुत अधिक यात्रा करने से बच सकते थे। (ओमन को कॉन्संट्रेशन कैंप में परिवर्तित कर दिए जाने के बाद वह फिर कभी वहां लौटना नहीं चाहते थे।)

11 जून को 'के' और राजगोपाल विलर्स के होटल मोंटेसनो में चले गए। यहीं पर 'के' पहली बार 1921 में नित्या के साथ रुके थे। दो हफ्ते बाद राजगोपाल 'के' को अकेला छोड़कर ओहाय लौट आये। राजगोपाल ने उनके पास केवल इतना धन छोड़ा जितना कि होटल का बिल चुकाने के लिए काफी था। ज़ाहिर था कि उनके संबंधों में कोई दरार आ गई थी। 1949 से ही जब 'के' भारत से लौटे थे उनके बीच तनाव बढ़ना शुरू हो गया था। तार-तार हो चुके संबंध की हकीकत उस समय सामने आ गई जब राजगोपाल को, जिन्हें यह विश्वास नहीं था कि 'के' वास्तव में 'लेच्चो' में बीमार थे,

अचानक सारे कार्यक्रम रद्द करने पड़े जबकि सारा इंतज़ाम राजगोपाल ने कर लिया था। ऐसा लगता है कि विलर्स में राजगोपाल ने 'के' को यह स्पष्ट कर दिया कि वह उनके 'ट्रैवल एजेंट' का रोल अदा करने से ऊब चुके हैं और भविष्य में उनका यह काम लंदन में 'कृष्णमूर्ति राइटिंग्स' की सेक्रेटरी डोरिस प्रैट संभालेंगी जो कि ओमन के शुरुआती दिनों से 'के' के लिए काम करती आ रही थीं। 'के' के काम के लिए कुछ शेयर भेंटस्वरूप मिले थे। उसके लाभांश से लंदन में 'के' का खर्चा और लंदन से बाहर उनकी यात्राओं का खर्चा चुकाया गया। सारा इंतज़ाम डोरिस प्रैट ने किया। इंग्लैंड में राजगोपाल के खर्चे भी इसी फंड से चुकाए गए। डोरिस प्रैट को राजगोपाल का यह निर्देश था कि 'के' पर जो खर्च होता था उसका पूरा-पूरा हिसाब रखे। भारत में 'के' के खर्चों के लिए राजगोपाल ओहाय से फंड भेज देते थे।

'के' और राजगोपाल के बीच जो कुछ भी हुआ उससे 'के' में ओहाय लौटने के प्रति अनिच्छा पैदा हो गई। विलर्स में 'के' को छोड़ते हुए राजगोपाल ने कह दिया था कि अकेलापन क्या होता है उन्हें अब पता चलेगा। लेकिन 'के' को अकेलापन कभी महसूस नहीं हुआ। पूरे एक महीना वह अकेले विलर्स में रहे और पूर्णतया प्रसन्नचित्त रहे। लेडी एमिली को उन्होंने लिखा : 'मैं एकांतवास में हूँ। किसी से भी नहीं मिलता। बातचीत होती भी है तो वेटर से। कितना अच्छा है कि मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूँ तो कुछ और ही कर पा रहा हूँ। सैर के लिए यहां शानदार रास्ते हैं और उन पर शायद ही कोई होता है। कृपया किसी को न बताएं कि मैं कहां हूँ।' 'कुछ और करने' से उनका तात्पर्य ध्यान से था जो कि तब तीव्रता से घटित होता था जब वह मौन होकर अपने भीतर गहरे और गहरे उतरते जाते थे। डोरिस प्रैट को 'के' का पता मालूम था। वह उन्हें सारे पत्र भेज देती थीं। 'के' पत्रों को पढ़कर वापस भेज देते थे। वह किसी भी पत्र का उत्तर नहीं देने वाले थे। उनका स्वास्थ्य ठीक था फिर भी वह एक लंबा और पूर्ण विश्राम चाहते थे। प्रैट को उन्होंने निर्देशित कर दिया था कि पत्रों को पढ़े बगैर उनका जवाब कैसे देना है।

20 जुलाई को विलर्स में 'के' की मुलाकात लिओन दे विदास और उनकी पत्नी से हुई जिन्हें 'के' कुछ समय से जानते थे (इनका पेरिस में टेक्स्टाइल का काम था)। इन लोगों को जब पता चला कि 'के' के पास पैसे खत्म हो गये हैं तो वे 'के' को डोरडोन में अपने घर ले आए। ('के' राजगोपाल से धन भेजने के लिए कह सकते थे, पर स्पष्ट था कि वह उससे यह कहना नहीं चाहते थे, और विनिमय पाबंदियों के कारण इंग्लैंड से धन भेजने में कठिनाई भी थी।) डोरडोन में 'के' नवंबर तक रहे। अक्टूबर के अंत में वह लेडी एमिली को लिख रहे थे : "यहां बहुत शांति है और अपने दो मेजबानों के अतिरिक्त मैं किसी से नहीं मिलता। यह शहर से बिल्कुल बाहर है। मैं पूर्णतया अवकाश में रहा। केवल घूमना होता था और एकांत। यह बहुत ही अच्छा रहा। भारत में भी यही करूंगा।"

उस जाड़े में राजगोपाल 'के' के साथ अंतिम बार भारत गये। पर रुके केवल जनवरी 1958 तक। सितंबर तक 'के' अवकाश में ही रहे, पहले ऋषि वैली में, फिर राजघाट में, और उसके बाद एक महीना अकेले उत्तर के एक हिल-स्टेशन रानीखेत में। इसके बाद

उन्होंने अपनी सार्वजनिक वार्ताएं देना शुरू किया। 13 नवंबर को 'वसंत विहार' में उन्होंने एक दस्तावेज पर हस्ताक्षर किए। यह दस्तावेज मद्रास हाई कोर्ट के नोटरी पब्लिक द्वारा अनुप्रमाणित था। और इसके अनुसार उस तिथि के पहले और बाद के उनके सारे लेखन का कॉपीराइट अधिकार 'कृष्णमूर्ति राइटिंग्स' को जाता था और 'कृष्णमूर्ति राइटिंग्स' के अध्यक्ष राजगोपाल को उनकी पुस्तकों के प्रकाशन के लिए अधिकृत किया गया था। 'के' को यह याद नहीं था कि कब उन्होंने 'कृष्णमूर्ति राइटिंग्स' के ट्रस्टी पद से इस्तीफा दे दिया था और क्यों दिया था। ऐसे समय में 'के' द्वारा दस्तावेज पर हस्ताक्षर किया जाना जबकि राजगोपाल के साथ उनके संबंध सहज नहीं चल रहे थे बड़ा अजीब लगता है। हालांकि शायद इसी कारण से राजगोपाल अपनी स्थिति को कानूनी रूप देना चाहते थे। एक दूसरा कारण यह हो सकता था कि उसी साल एक अंतरराष्ट्रीय कॉपीराइट अनुबंध अस्तित्व में आया था।

1959 के शुरू में 'के' दिल्ली में वार्ताएं दे रहे थे और पूर्व की भांति अपने पुराने मित्र शिवा राव के यहां ठहरे थे। वहां गरमी इतनी तेज़ थी कि मार्च में उनके लिए एक घर श्रीनगर (कश्मीर) में ले लिया गया। लेकिन जब उस घर में गंदगी और चूहों की भरमार पाई गई तो उन्हें पहलगांव जाना पड़ा। समुद्र से 7200 फुट ऊंची इस घाटी में वह एक सरकारी हट में रहे। "विलासितापूर्ण कतई नहीं," जैसा कि उन्होंने लेडी एमिली को बताया, "लेकिन जगह शानदार थी, बर्फ से ढकी चोटियाँ और मीलों तक फैले देवदार के जंगल।" श्रीनगर में पुपुल जयकर और माधवाचारी उनके साथ थे, लेकिन पहलगांव में वह अकेले थे। साथ में केवल ऋषि वैली के मुख्य रसोइये परमेश्वरन थे। अगस्त के मध्य में गुर्दे में पुनः संक्रमण हो जाने से वह बीमार पड़ गए और बहुत तेज बुखार की हालत में उन्हें श्रीनगर लाया गया और वहां से शिवा राव के घर नई दिल्ली। जीवन में पहली बार उन्होंने एंटीबायोटिक दवाइयां खाईं और इसका उन पर इतना तेज़ असर हुआ कि उनकी टांगे अस्थायी रूप से लकवे की शिकार हो गईं (बाद में उन्होंने स्वीकार किया कि उन्हें ऐसा लगा था कि वह जीवन भर के लिए अपाहिज हो गए और इस तथ्य को उन्होंने शांत भाव से स्वीकार भी कर लिया था) और वह इतने कमज़ोर हो गए थे कि परमेश्वरन एक बच्चे की तरह उन्हें खिलाते थे। सात हफ्तों तक वह बिस्तर में रहे। इसके बाद ऋषि वैली में उन्हें स्वास्थ्य लाभ हुआ और तब वह भारत के विभिन्न हिस्सों में वार्ताएं दे पाए। आखिरकार 11 मार्च 1960 को जाकर वह रोम के लिए उड़ान भर सके जहां वांदा स्कारावेल्ली उनसे मिलीं और उन्हें 'लेच्चो' ले गईं।

'के' की योजना के बारे में राजगोपाल को कुछ भी नहीं पता था। 'के' ने उन्हें पत्र लिखकर बताया कि कुछ हफ्ते 'लेच्चो' में बिताने के बाद वह म्यूनिख के बर्चर बेनर क्लीनिक में भर्ती होंगे। राजगोपाल को यह पता नहीं था कि गर्मियों में वह ओहाय लौटना चाहेंगे या नहीं। डोरिस प्रैट को राजगोपाल ने इंग्लिश फंड से धन भेजने के लिए कहा लेकिन विनिमय पाबंदियों के चलते यह संभव नहीं हो सका। 'के' ने डोरिस प्रैट से चिंता न करने के लिए कहा क्योंकि 'पुएर्तो रीको' के मित्रों ने क्लीनिक का सारा खर्चा उठाने

की पेशकश कर दी थी।

11 अप्रैल को 'के' क्लीनिक में भर्ती हुए और 1 मई तक उसमें रहे। उन्हें इस दौरान एक बहुत ही निर्धारित खुराक पर रखा गया। इसके बाद वह लंदन होते हुए अमेरिका के लिए रवाना हुए। लंदन के हीथ्रो हवाई अड्डे पर डोरिस प्रैट उनसे मिलीं और यह देखकर स्तब्ध रह गईं कि 'के' कितने थके-हारे और कमज़ोर लग रहे थे। उनके पैर इतने दुर्बल हो गए थे कि उन्हें नए जूते पहनने पड़े थे। 'दुर्बलता के बावजूद उन्होंने स्पष्ट रूप से प्रथम श्रेणी में यात्रा करने से इनकार कर दिया', इस आशय की सूचना डोरिस प्रैट ने राजगोपाल को भेजी। जिस दिन 'के' ने लंदन छोड़ा उसी दिन डोरिस ने राजगोपाल को लिखा : "अत्यंत व्यक्तिगत स्तर पर मुझे यह महसूस होता है कि वह अत्यधिक बीमार हैं और ऐसी हालत में कतई नहीं है कि ओहाय में वार्ताएं दे सकें, फिर भी वह ऐसा करने का निश्चय किये हुए लग रहे हैं...ऐसा सुनने में आया था कि दिल्ली में वह मरते-मरते बचे थे और उनकी वर्तमान हालत देखकर मैं इस पर विश्वास कर सकती हूँ। मुझे यह अत्यंत आवश्यक लगता है कि ओहाय में उनका अत्यधिक स्नेह व कोमलता के साथ खयाल रखा जाए।"[49]

न्यूयॉर्क में 'के' ने अपनी यात्रा को विराम दिया। वहां वह अपने एक मित्र के साथ ठहरे। मित्र ने उन्हें आगाह किया कि यदि उनके द्वारा अभी कोई कदम नहीं उठाया गया तो वह शीघ्र ही पाएंगे कि 'कृष्णमूर्ति राइटिंग्स' के मामलों में उनका कोई दखल नहीं रह गया है। मित्र महोदय ने उनसे प्रार्थना की कि वह और अधिक ज़िम्मेदारियों को अपने हाथ में लें क्योंकि 'कृष्णमूर्ति राइटिंग्स' को दान में जो इतना सारा धन मिलता है वह उनके काम के लिए ही है। लेकिन पैंतीस सालों से 'के' के मामलों को अत्यंत कुशलता और सफलता से संभालने वाले राजगोपाल को 'के' द्वारा अचानक किए गए हस्तक्षेप का कोई कारण समझ में नहीं आया। यह सच था कि राजगोपाल ने उपाध्यक्ष पद के साथ-साथ ट्रस्टियों के एक बोर्ड का भी गठन किया हुआ था, पर वह उन सब पर निरंकुशता से शासन करता था। 'के' ने राजगोपाल से जब कुछ जानकारियां मांगी तो राजगोपाल ने कोई भी जानकारी देने से मना कर दिया, और जब 'के' ने आगे अनुरोध किया कि उन्हें फिर से ट्रस्टी पद पर आने दिया जाए तो इस अनुरोध को ठुकरा दिया गया। यह लगभग निश्चित था कि यदि राजगोपाल ने 'के' को पुनः बोर्ड में शामिल कर लिया होता तो 'के' की सारी दिलचस्पी इन सब मामलों से बहुत जल्दी हट जाती। जैसा कि हुआ, राजगोपाल की हठधर्मिता ने संदेह की नींव डाल दी, और इस तरह परस्पर विश्वास पर आधारित यह संबंध और अधिक आहत हुआ।

राजगोपाल के साथ हमें सहानुभूति हो सकती है क्योंकि यह 'के' का ही आग्रह था कि वह ओहाय में वार्ताएं देंगे और उन्होंने आठ वार्ताएं देना स्वीकार भी कर लिया था, लेकिन तीसरी वार्ता में ही उन्होंने यह घोषणा कर दी कि वह केवल एक और वार्ता दे सकेंगे। (यह तीसरी वार्ता बेमिसाल थी। इसमें उन्होंने चर्चा की थी कि मन को कैसे ज्ञात के अंत के द्वारा निष्कलुष बनाया जा सकता है तथा मानव चित्त में मूलभूत परिवर्तन की

कितनी अधिक आवश्यकता है।) शेष चार वार्ताओं के रद्द होने से एक प्रकार की खलबली मच गई और उन लोगों को काफी निराशा हुई जो बहुत दूर से पूरी वार्ता-शृंखला सुनने के लिए आए थे। राजगोपाल तो और अधिक नाराज़ था क्योंकि उसके मुताबिक 'के' ने ये वार्ताएं, जैसा कि राजगोपाल ने डोरिस प्रैट को बताया, इसलिए नहीं रद्द की थीं कि वह बीमार थे, बल्कि केवल इसलिए कि उनके पास वार्ता देने के लिए 'पर्याप्त ऊर्जा नहीं थी', फिर भी 'वह तीन दिनों तक घंटों साक्षात्कार देते रहे'। राजगोपाल को क्या 'के' के वास्तविक आंतरिक जीवन की कुछ भी समझ थी—यदि वह 'के' से यह आशा कर रहा था कि वह जितनी आसानी से निजी साक्षात्कार दे रहे थे उतनी ही आसानी से सार्वजनिक वार्ता भी दे सकते थे? यह बिलकुल साफ है कि भारी संख्या में श्रोताओं के सामने वार्ता देने में विशेष ऊर्जा की आवश्यकता होती है।

जून के अंत में बर्चर-बेनर क्लीनिक लौटने की 'के' ने योजना बनाई थी लेकिन वह इसे टालते गए। राजगोपाल को इससे भयंकर नाराज़गी हुई। वह अब कोई साक्षात्कार नहीं दे रहे थे और न ही किसी पत्र का जवाब दे रहे थे, यहां तक कि उन पत्रों का भी नहीं जो लेडी एमिली और वांदा स्कारावेल्ली भेज रही थीं। आख़िरकार वह तब तक वहीं रहे जब तक कि वह नवंबर में भारत नहीं चले गए। हालांकि 'आर्य विहार' का वातावरण बहुत असुखद रहा होगा क्योंकि न केवल राजगोपाल और 'के' के बीच तनाव बढ़ रहा था, बल्कि राजगोपाल और रोज़ालिंड भी आपस में झगड़ रहे थे और शीघ्र ही उनका तलाक होने वाला था।

'के' अभी भी भारत में वार्ताएं देने के लिए अपने को तैयार नहीं पा रहे थे, हालांकि छोटे समूहों को संबोधित करने के लिए वह तैयार थे। लगता है कि आने वाले साल में इंग्लैंड में एक सम्मेलन की व्यवस्था करने के लिए उन्होंने भारत से राजगोपाल को लिखा। राजगोपाल ने उन्हें जवाब एक तार से भेजा, "व्यक्तिगत रूप से अब कोई भी इंतज़ाम करने में अक्षम हूँ। डोरिस प्रैट से बात कर ली है, वह मदद करेगी। कृपया उसे लिखें। नव वर्ष की शुभकामनाएं।" यूरोप में 'के' का कोई भी काम करने से राजगोपाल ने हाथ झाड़ लिये थे। लंदन से ही उसने यह तार भेजा था और तब तक डोरिस प्रैट से उसके कई कड़वे संवाद हो चुके थे। डोरिस प्रैट के अनुसार वह काफी परेशान स्थिति में था। मेरी भी राजगोपाल से एक मुलाकात हुई। मुझे यह नहीं पता था कि 'के' के साथ उसके संबंध ख़राब हो चुके हैं और मुझे तब अत्यधिक वेदना हुई जब उसने 'के' के लिए अपशब्दों का इस्तेमाल करना शुरू कर दिया। राजगोपाल को मैं ख़ास तौर पर पसंद करती रही थी, तब से जब वह केम्ब्रिज में था; मैं अक्सर उससे मिलने जाया करती थी। मेरी मां भी उसे इसी तरह पसंद करती थीं और उन्हें भी इसी तरह वेदना हुई जब राजगोपाल ने उनके सामने भी 'के' के लिए अपशब्दों का प्रयोग किया। हमने सोचा कि यह केवल एक अस्थायी दौर होगा।

1960 के अंत में नई दिल्ली में और 1961 के आरंभ में बंबई में, 'के' ने छोटे-छोटे समूहों को संबोधित किया। इस बार उनका गहरा सरोकार था मानव मन में आमूलचूल

परिवर्तन से और एक नये मन के सृजन से। मार्च के मध्य में उन्होंने भारत छोड़ दिया और 'लेच्चो' चले गए। वहां कुछ सप्ताह बिताकर मई में लंदन आ गए। एक सम्मेलन के आयोजन के लिए डोरिस प्रैट जितना अधिक कर सकती थीं उतना उन्होंने किया। विम्बलडन में डोरिस ने एक घर किराए पर ले लिया क्योंकि उन्हें पुराने दिनों की याद थी जब 'के' मिस डॉज के साथ 'वेस्ट साइड हाउस' में रहते थे और उन्हें विम्बलडन कॉमन में सैर करना बहुत अच्छा लगता था। छोटी-छोटी बारह बैठकों के लिए उन्होंने 'टाउन हॉल' किराए पर ले लिया था और 150 लोगों को व्यक्तिगत निमंत्रण भेज दिया था। उन्होंने और एक डच मित्र एनेका कॉर्नडॉर्फर ने, जिन्हें 'के' कई वर्षों से जानते थे, मिलकर 'के' की देखभाल की। इन बैठकों में पहली बार 'के' ने अपनी वार्ताओं की टेप-रिकॉर्डिंग की अनुमति दी।

आठ हफ्तों तक डोरिस और एनेका विम्बलडन में उनके साथ ही थीं। उस समय वे दोनों बहुत परेशान हो गईं जब उन्होंने रात में 'के' के चिल्लाने की आवाज़ें सुनीं, और यह देखा कि खाना खाते समय प्रायः कांटा-छुरी उनके हाथ से छूट जाते हैं और वह 'जड़वत्' से दिखने लगते हैं, ऐसा लगता है जैसे कि वह मूर्च्छित होने वाले हों। डोरिस ने जब उनसे पूछा कि क्या वह कुछ कर सकती हैं तो उन्होंने कहा कि कुछ नहीं, सिवाय इसके कि वह शांत व निश्चिंत रहें और उन्हें स्पर्श न करें। उन्होंने यह भी कहा कि यद्यपि वह ठीक-ठीक जानते हैं कि क्या हो रहा है पर वह उन लोगों को समझा पाने में असमर्थ हैं। 18 मई को नंदिनी मेहता को वह लिख रहे थे : "आश्चर्य है कि जो चीज़ें ऊटी में घटित हुईं वे ही यहां हो रही हैं। हालांकि इसके बारे में कोई नहीं जानता है; यह बहुत तीव्र है।"[50]

14 जून को 'के' न्यूयॉर्क के रास्ते से ओहाय के लिए रवाना हुए। राजगोपाल के अनुरोध पर विम्बलडन वार्ताओं की टेप वे अपने साथ ले गए। अगले दिन डोरिस ने सिन्योरा वांदा ('के' उन्हें इसी नाम से पुकारते थे) को लिखा कि वह अपने ओहाय दौरे को लेकर आशंकित थे क्योंकि (जैसा कि डोरिस ने निष्कर्ष निकाला) उन्हें वहां किसी चीज़ का आमना-सामना करना पड़ सकता था। वह यह कहकर गए कि वह बहुत जल्दी भी लौट सकते हैं।

18 जून को, यानी न्यूयॉर्क से लॉस एंजिलिस रवाना होने से एक दिन पूर्व, 'के' ने अपनी चेतना की अंतर-अवस्थाओं का अद्भुत विवरण लिखना आरंभ किया। अभ्यास पुस्तिकाओं में पेंसिल से लिखते हुए और बिना एक शब्द को काटे वह सात महीने तक इसे लिखते रहे। पहले कभी उन्होंने इस तरह का विवरण लिपिबद्ध नहीं किया था। उन्हें यह भी स्मरण नहीं था कि किस चीज़ ने उन्हें यह करने के लिए प्रेरित किया। उनकी अवस्था में होने का क्या अर्थ है इसका सबसे नज़दीकी विवरण यदि हमें कहीं मिलता है तो यहीं है। यह इस बात को दर्शाता है कि बाहरी जीवन की घटनाएं उनके अंतर को कितना कम प्रभावित करती थीं।[*] पुस्तक को कहीं से भी खोलने पर व्यक्ति आश्चर्य और रहस्य की मिली-जुली भावना से अभिभूत रह जाता है। पुस्तक एकाएक शुरू होती है: "संध्या में 'यह' अचानक वहां था, कमरे को एक महान सौंदर्य बोध, शक्ति और कोमलता

से भरता हुआ। बाकी लोगों को भी इसका एहसास था (न्यूयॉर्क में जिन मित्रों के साथ वह ठहरे हुए थे)।" 'विशालता', 'पवित्रता', 'आशीष', 'अन्यत्व', 'अन्य', 'व्यापकता'—ये सभी ऐसे शब्द थे जिनके द्वारा 'के' ने उस रहस्यमय 'यह' की तरफ संकेत किया जिसे खोजा नहीं जा सकता था, पर वह नित्य उनके पास इतने आवेग में आता था कि कभी-कभार अन्य लोग भी इसे महसूस किये बिना नहीं रहते थे। उन्होंने उस रहस्यमय प्रक्रिया 'प्रॉसेस' और सिर एवं रीढ़ में होने वाली तीव्र पीड़ा का भी ज़िक्र किया जिससे वह गुज़र रहे थे। प्रकृति के बड़े ही ख़ूबसूरत वर्णनों के साथ उनकी संपूर्ण शिक्षा इस नोटबुक में आ जाती है। ओहाय में 21 जून को वह नोटबुक में लिख रहे थे : "दो बजे के करीब उठा। अजीब सा दबाव था, पीड़ा और तीक्ष्ण होकर सिर के लगभग केंद्र में आ रही थी। एक घंटे तक यह रहा। दबाव की तीव्रता के साथ कई बार बीच में उठा। प्रत्येक बार विस्तीर्ण होते हुए परमानंद का बोध हुआ—और यह आनंद जारी रहा।" इसके अगले दिन उन्होंने लिखा : "एक सुकोमल पत्ती की शक्ति और उसका सौंदर्य विनाश के प्रति उसकी नमनीयता में है। जिस तरह घास की पत्ती फर्श में से निकल आती है, उसमें वह शक्ति है जो अनियत-आकस्मिक मृत्यु को सहन कर सकती है।" 23 जून को उन्होंने लिखा : "बिस्तर पर जाते हुए वही पूर्णता व्याप्त थी जो 'लेच्चो' में थी, धैर्यपूर्वक, सौम्यता और बहुत ही सुकुमार भाव से प्रतीक्षा करती हुई।" इन दो अंतिम अंशों से यह पता चलता है कि जो कुछ उनमें तब चल रहा था, उसका अनुभव वह पूर्व में 'लेच्चो' में कर चुके थे। रात में वह अक्सर अपने आप को चीखते हुए पाते थे और चूंकि वह पाइन कॉटेज में अकेले सोते थे इसलिए 'आर्य विहार' में उन्हें कोई सुन नहीं सकता था।

हालांकि 'के' ओहाय में उन्नीस दिन रहे, रोज़ अपनी नोटबुक में लिखते हुए, पर उन्होंने इसका कोई ज़िक्र नहीं किया कि इस दौरान उन्होंने क्या किया, सिवाय एक बार दंत चिकित्सक के पास जाने पर, जब कुर्सी पर बैठे हुए उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि 'वह' उनके साथ मौजूद था, और एक बार जब वह सैर पर निकले थे और "इन बैंगनी रंग की नंगी चट्टानी पहाड़ियों से घिरे हुए सहसा देखा कि एकांत था; उस एकांत में अथाह समृद्धि थी; उसमें वह सौंदर्य था जो विचार और अनुभूति से परे है...वह विलक्षण रूप से एकाकी था, उसमें पृथकता का भाव नहीं, बस एकाकीपन था—उसी प्रकार जिस तरह पानी की एक बूंद होती है जिसमें पृथ्वी का सारा जल समाया है।" यह नोटबुक पढ़ी ही जानी चाहिए। उद्धरणों की कोई भी संख्या उस पुस्तक के साथ न्याय नहीं कर सकती। यह अत्यंत अमूल्य दस्तावेज है, पूरे इतिहास में अब तक के महान गूढ़ कार्यों में से एक, जिसकी अंतर्निहित महत्ता एक दिन निश्चित रूप से पहचानी जाएगी।

ओहाय में 'के' ने रोज़ालिंड को बतलाया कि वह चाहे तो 'आर्य विहार' में जीवनपर्यंत रह सकती है। वह अब भी 'हैप्पी वैली' स्कूल चला रही थी पर वह काफी समय से कृष्णमूर्ति विद्यालय नहीं रहा था। राजगोपाल घाटी के पश्चिमी सिरे पर अपने बनाए घर में चला गया था। यह ओकग्रोव से ज़्यादा दूर नहीं था। रोज़ालिंड अब आत्मनिर्भर थी क्योंकि रॉबर्ट लोगान ने, जिनकी पत्नी मर चुकी थीं, अपनी मृत्यु के समय

अपनी धन और संपत्ति रोज़ालिंड के हवाले कर दी थी। (लोगान महाशय ने पाटेक-फिलिप कंपनी की दो घड़ियां 'के' को दी थीं। एक सोने की थी जिसे उन्होंने कभी नहीं पहना, और एक पॉकेट स्टील घड़ी थी जिसमें एक छोटी-सी चेन लगी थी जिसके सिरे पर एक प्राचीन ग्रीक सिक्का लगा था। इस घड़ी को उन्होंने अपनी अंतिम बीमारी के समय तक पहना।)

8 जुलाई की रात को 'के' हवाई जहाज से लंदन के लिए रवाना हुए। अगले दिन उन्होंने अपनी नोटबुक में लिखा :

> सारे शोरगुल, धुएं और ऊंची बातचीत के बीच, बहुत ही अप्रत्याशित ढंग से 'लेच्चो' में महसूस हुए उस अनंतता और असाधारण आशीष का, पवित्रता की उस सन्निकट अनुभूति का बोध होना शुरू हो गया। भीड़भाड़ और शोरगुल के कारण देह स्नायविक रूप से तनाव में थी, लेकिन इस सबके बावजूद यह वहां था। दबाव और तनाव तीव्र था और सिर के पीछे तीक्ष्ण दर्द था। केवल वह अवस्था थी, और द्रष्टा कोई न था। संपूर्ण देह इसमें पूर्णतया निमग्न थी और पवित्रता का बोध इतना तीव्र था कि देह से एक कराह निकल पड़ी, जबकि आगे की सीटों पर यात्री बैठे हुए थे। कई घंटों तक, देर रात्रि तक यह जारी रहा। ऐसा लग रहा था मानो एक अवलोकन हो रहा हो न केवल आंखों से बल्कि सहस्र शताब्दियों के साथ—यह एक पूर्णतया विचित्र घटना थी। मस्तिष्क पूरी तरह खाली था, सारी प्रतिक्रियाएं रुक गई थीं। उस सारे समय इस खालीपन का आभास नहीं था, और यहां लिखते हुए ही इसका ज्ञान हुआ, पर यह ज्ञान वर्णनात्मक मात्र है, वास्तविक नहीं। यह एक विलक्षण घटना है कि मस्तिष्क स्वयं को खाली कर सकता है। आंखें बंद होने के कारण ऐसा लग रहा था जैसे शरीर और मस्तिष्क अथाह गहराइयों में डूब रहे हैं, असाधारण सौंदर्य और संवेदनशीलता की अवस्थाओं में उतर रहे हैं।

---

* उस घर के बगीचे में एक विशाल सदाबहार ओक (लेच्चो) का वृक्ष था। इसी के नाम पर घर का यह नाम पड़ा था।

* ये विवरण कृष्णमूर्तीज़ नोटबुक के नाम से सन् 1976 में प्रकाशित हुए।

13

दुख का अंत

लंदन में तीन रात बिताने के बाद 'के' वांदा स्कारावेल्ली से जिनेवा में मिले। वह उनके साथ गश्टाड चले गए जहां वांदा ने उनके लिए गर्मियां बिताने के लिए 'शले टान्नेग' नाम का एक घर किराये पर ले लिया था। सानेन के नज़दीक एक गांव के टाउन हॉल में उनके लिए एक छोटी-सी संगोष्ठी का इंतज़ाम था। हीथ्रो में डोरिस प्रैट जब 'के' से मिली थीं, तो उन्हें लगा था कि वह 'पूर्णतया थके हुए' थे। यह बात डोरिस ने वांदा को बतलायी। डोरिस से 'के' ने कहा था : "सिन्योरा वांदा जैसे किसी व्यक्ति के होने का क्या मतलब है, शायद आपको नहीं पता। इतने अद्‌भुत ढंग से मेरा ख्याल पहले किसी ने नहीं रखा।" डोरिस ने अनुमान लगा लिया था कि ओहाय में उनका वक़्त अच्छा नहीं गुज़रा होगा। डोरिस से उन्होंने यह भी कहा था कि राजगोपाल को इस बारे में कोई और जानकारी न भेजी जाए कि इंग्लैंड में उन पर कितना खर्च हुआ। (मई और जून का उनका सारा खर्चा, विंबल्डन वाले घर और हॉल के किराये को मिलाकर, 477 पौंड आया था, जबकि अनुदान राशि 650 पौंड इकट्‌ठी हुई थी।) 'कृष्णमूर्ति राइटिंग्स' के संबंध में उनकी राजगोपाल से बात हुई थी या नहीं, इस बात की जानकारी नहीं है, लेकिन बाद में वह राजगोपाल को यह लिखने वाले थे कि उन्हें सारे मामलों की जानकारी दी जानी चाहिए और उनका यह पत्र सारे ट्रस्टियों को दिखाया जाना ज़रूरी है तथा बोर्ड में अपने पुनः शामिल किये जाने की बात वह इस पत्र में फिर से दोहराने वाले थे। उनको कोई जवाब नहीं मिला; हालांकि बाद में जब वह भारत आए तो राजगोपाल ने एक बैलेंस शीट उनको भेज दी; ज़ाहिर था कि 'के' को उस बैलेंस शीट में कुछ नहीं समझ आया।

उन्नीस अलग-अलग देशों के साढ़े तीन सौ लोगों ने सानेन के इस पहले सम्मेलन में हिस्सा लिया—टाउन हॉल में जितने लोग आ सकते थे यह संख्या उतनी ही थी। (अगले चौबीस सालों के लिए सानेन गैदरिंग अंतरराष्ट्रीय स्तर की एक सालाना घटना बनने जा रही थी, जिसमें हर वर्ष लोगों की संख्या बढ़ती गई।) सम्मेलन शुरू होने से पहले 'के' करीब दो सप्ताह 'शले टान्नेग' में बिता चुके थे। वहां पहुंचने के अगले दिन, 14 जुलाई 1961 को उन्होंने अपनी नोटबुक में लिखा था : "अनुभव चाहे जितना सुखद, ख़ूबसूरत और फलदायी क्यों न हो, उसकी पुनरावृत्ति की लालसा वह मिट्टी है जिसमें दुख फलता-

फूलता है।” और दो दिन बाद उन्होंने लिखा :

> रात के अधिकांश पहर प्रक्रिया जारी रही; यह कुछ ज़्यादा ही तीव्र थी। देह कितना सह पाएगी! पूरी देह में सिहरन थी। सुबह उठा तो सिर कांप रहा था।
>
> आज की सुबह वह असाधारण पावनता कमरे को भर रही थी। अपनी अपार तीक्ष्णता के साथ वह स्वयं के अस्तित्व के हर हिस्से में प्रवेश कर रही थी, उसको भर दे रही थी, शुद्ध कर रही थी और उसको अपना बना दे रही थी। इसे दूसरे (वांदा) ने भी महसूस किया। यह वह वस्तु है जिसे पाने के लिए हर मनुष्य लालायित रहता है, और चूंकि वह लालायित रहता है इसलिए वह उसके पास आने से बचती है। साधु, संन्यासी, पुरोहित उसको प्राप्त करने की चाहत में अपने शरीर को, अपने आप को यंत्रणा देते हैं पर यह उनकी पकड़ में नहीं आती। क्योंकि इसे ख़रीदा नहीं जा सकता; किसी त्याग, सद्‌गुण, या प्रार्थना से इस प्रेम को बुलाया नहीं जा सकता। मृत्यु का जब एक साधन के रूप में उपयोग होने लगे, तब ऐसा जीवन, ऐसा प्रेम संभव नहीं। सारी खोज का और सारी मांग का पूरी तरह से अंत हो जाना आवश्यक है।
>
> सत्य को सुनिश्चित नहीं किया जा सकता। जिसे मापा जा सके वह सत्य नहीं है। जो जीवित नहीं है उसे मापा जा सकता है और उसकी ऊंचाई को आंका जा सकता है।

इसी दिन वांदा को ‘के’ जिस प्रक्रिया (प्रॉसेस) से गुज़रते थे उसका पहला अनुभव हुआ और इसे उसने ऐसे अंकित किया :

> लंच के बाद हम लोग बातचीत कर रहे थे। घर में और कोई नहीं था। अचानक ‘के’ मूर्च्छित हो गए। उसके बाद क्या हुआ, इसका वर्णन करना अत्यंत कठिन है, क्योंकि शब्द उसके निकट नहीं पहुंच सकते। लेकिन यह इतनी गंभीर, इतनी महत्त्वपूर्ण और इतनी असाधारण चीज़ है कि इसे छिपाया नहीं जा सकता, इसे गुप्त नहीं रखा जा सकता, इसे ख़ामोशी में दबाया नहीं जा सकता। ‘के’ के चेहरे में एक परिवर्तन हुआ। उनकी आंखें बड़ी, चौड़ी और गहरी होती गयीं। उनमें एक असाधारण दृष्टि थी जो किसी भी संभव दायरे के पार जाती थी। ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे कोई शक्तिशाली सत्ता व्याप्त थी जिसका संबंध किसी और आयाम से था। एक साथ रिक्तता और पूर्णता की अवर्णनीय अनुभूति हो रही थी।

स्पष्ट था कि ‘के’ जा चुके थे और जो सत्ता पीछे छूट गयी थी उसकी टिप्पणियों को वांदा ने नोट कर लिया : “जब तक वह वापस न आ जाए मुझे अकेला मत छोड़ना। यदि वह तुमको मुझे छूने देता है तो वह तुम्हें अवश्य प्रेम करता होगा क्योंकि इस बारे में वह बहुत सख्त है। जब तक वह न आ जाए मेरे नज़दीक किसी को न आने देना।” वांदा ने आगे लिखा : “क्या हो रहा था मुझे कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था, और मैं बहुत चकित थी।”

अगले दिन ‘के’ उसी समय फिर से ‘चले गये’ और वांदा ने पीछे छूट गयी ‘देह’ की

टिप्पणियों को नोट कर लिया : "मैं बड़ा अजीब अनुभव कर रहा हूँ। मैं कहां हूँ? मुझे मत छोड़ो। क्या तुम कृपा करके मेरे साथ रह सकती हो, जब तक कि वह वापस न आ जाए? क्या तुम आरामपूर्वक हो? एक कुर्सी ले लो। क्या तुम उसको अच्छी तरह जानती हो? क्या तुम उसकी देखभाल करोगी?" वांदा ने आगे लिखा : "मैं अब भी नहीं समझ पा रही थी कि क्या हो रहा है। यह सब अत्यंत अनपेक्षित और मेरी समझ से परे था। जब 'के' की चेतना वापस आई तो उन्होंने मुझसे जो कुछ हुआ उसे बताने के लिए कहा, और इस कारण मैंने ये नोट्स तैयार किए, इस प्रयास में कि जो कुछ मैंने देखा और महसूस किया उसकी कुछ धुंधली स्मृति को संप्रेषित कर सकूं।"[51]

जुलाई के आख़िर में आल्डस हक्स्ले और उनकी दूसरी पत्नी गश्टाड में थे और सानेन के टाउन हॉल में 'के' को सुनने कई बार आए। हक्स्ले के अनुसार अब तक उनके द्वारा सुनी गयी सबसे प्रभावकारी वार्ताओं में से यह एक थी। उन्होंने लिखा : "यह बुद्ध के प्रवचन को सुनने जैसा था—इतनी अधिक शक्ति, इतनी ज़बरदस्त प्रामाणिकता, तथा किसी भी तरह के पलायनों, किसी भी तरह के प्रतिनिधियों, गुरुओं, उद्धारकों, धार्मिक नेताओं या मठ-मंदिरों को स्वीकार करने से दृढ़ इनकार। 'मैं आपको दिखाऊंगा कि दुख क्या है और दुख का अंत क्या है'—और यदि आप दुख के अंत के लिए ज़रूरी शर्तों को पूरा नहीं करते हैं तो फिर आप दुख के निरंतर बने रहने के लिए तैयार रहिए, फिर चाहे आप किन्हीं भी गुरुओं या मठ-मंदिरों में विश्वास करते रहें।"[52]

स्पष्ट है कि हक्स्ले उनकी 6 अगस्त 1961 की छठी वार्ता का ज़िक्र कर रहे थे जिसमें 'के' दुख के बारे में बोले थे : 'समय दुख का अंत नहीं कर सकता। हम किसी ख़ास पीड़ा को भुला तो सकते हैं, पर बहुत गहराई में दुख सदा मौजूद रहता है, और मैं समझता हूँ दुख का पूर्ण अंत किया जा सकता है—कल नहीं, वक्त गुज़रने के साथ नहीं, बल्कि वर्तमान के यथार्थ को गहराई से देखते हुए, और उसके पार जाते हुए।"

15 अगस्त की आख़िरी वार्ता के बाद 'के' ने अपनी नोटबुक में लिखा : "आज सुबह जागने पर फिर से वह अभेद्य शक्ति मौजूद थी जिसकी सामर्थ्य ही वह आशिष है... अस्पर्शित और विशुद्ध, वार्ता के समय भी वह विद्यमान रही।"

पुस्तक में छप जाने पर यह वार्ता अन्य वार्ताओं जितनी शक्तिशाली नहीं लगती। कारण, ऐसा प्रायः होता था कि किसी वार्ता में मौजूद कुछ लोगों को वह वार्ता अत्यंत असाधारण प्रतीत हुई, लेकिन बाद में उसके छप जाने पर जब लोगों ने उसे पढ़ा तो वह साधारण सी जान पड़ी। यह बिलकुल संभव है कि कई बार वार्ता के समय 'के' उस विलक्षण आशिष का अनुभव कर रहे हों और श्रोताओं पर शब्दों से अधिक उसी का असर पड़ा हो।

गर्मियों में एक सानेन कमेटी बनायी गयी जिसका कार्य हर वर्ष 'के' की वार्ताओं के लिए आवश्यक प्रबंध करना था। यह ख़बर सुनकर राजगोपाल परेशान हुआ। उसे यह भय हुआ कि 'के' ओहाय से पूरी तरह नाता तोड़ने तो नहीं जा रहे। हालांकि उनका ऐसा

कोई इरादा नहीं था, फिर भी संयोग से ऐसा हुआ कि वह पांच साल तक ओहाय नहीं जा सके।

वार्ताओं के बाद 'के' शांतिपूर्वक वांदा के साथ 'शले टान्नेग' में रहे। उस काल में वांदा को स्वयं उस 'आशिष', उस 'अन्यत्व' का निरंतर आभास मिलता रहा जिसके बारे में 'के' रोज़ाना लिख रहे थे। सितंबर में वह अकेले पेरिस गए। वहां वह अपने पुराने मित्र कार्लो और नादिने सुआरेस के साथ एवन्यू लबूडोन्ने की आठवीं मंज़िल पर उनके अपार्टमेंट में रहे। अपने प्रिय पर्वतों की शांति को महसूस करने के बाद एक ऐसे शहर में आना भीषण परिवर्तन था, फिर भी, जैसा कि उन्होंने लिखा : "चुपचाप बैठे हुए...छतों को देखते हुए, अत्यंत अप्रत्याशित रूप से वह आशिष, वह अन्यत्व सौम्य स्पष्टता के साथ उपस्थित हो गया; पूरे कमरे में वह छा गया और वहां से हटा नहीं। यह लिखे जाते समय वह यहां मौजूद है।"

पेरिस में उनकी नौ वार्ताएं हुईं। इसके बाद फिर वह 'लेच्चो' चले गए। वहां से वह अक्टूबर में बंबई गये, फिर ऋषि वैली गये एक महीने के लिए, इसके बाद 'वसंत विहार', राजघाट और दिल्ली। नोटबुक में उनके वर्णनों को पढ़कर ऋषि वैली और राजघाट के बारे में जो जानकारी मिलती है उससे ऐसा लगता है जैसे हम स्वयं वहां होकर आए हों। दिल्ली में 23 जनवरी 1962 को उनकी नोटबुक उसी तरह अचानक समाप्त हो गयी जैसे वह शुरू हुई थी। शिवा राव के घर में इतनी भीषण सर्दी थी कि वह पेंसिल तक नहीं पकड़ पा रहे थे। नोटबुक की इस अंतिम प्रविष्टि के कुछ अंश इस प्रकार हैं :

> ... एकाएक वह अज्ञेय अनंतता वहां थी, न केवल कमरे में और उसके बाहर बल्कि गहरी अंतरतम जगहों में जो कभी मन था...उस अनंतता ने अपना कोई चिह्न नहीं छोड़ा; वह अत्यंत स्पष्टता और शक्ति के साथ, अभेद्य और अगम्य वहां थी, उसकी तीव्रता वह ज्वाला थी जो कोई राख नहीं छोड़ती। उसके साथ-साथ आनंद था... अतीत और अज्ञात कभी किसी बिंदु पर नहीं मिलते; किसी भी क्रिया द्वारा वे एक साथ नहीं लाये जा सकते; इन दोनों के बीच न कोई सेतु है, न कोई मार्ग। दोनों न कभी मिले हैं और न कभी मिलेंगे। उस अज्ञेय के आगमन के लिए, उस अनंतता के होने के लिए, अतीत को समाप्त होना होगा।

1976 में यह अद्‌भुत दस्तावेज प्रकाशित हुआ, पर न तो इंग्लैंड में और न अमेरिका में प्रेस का कोई ध्यान इस पर गया। केवल अमेरिका की पब्लिशर्स वीकली में एक पैराग्राफ छपा जिसकी आख़िरी पंक्ति थी : "कृष्णमूर्ति की शिक्षा आडंबरविहीन है, एक मायने में सब कुछ मिटा देने वाली।" पुस्तक की पांडुलिपि पढ़ने के बाद एकाध लोग इसे छापने के पक्ष में नहीं थे। उन्हें डर था कि इससे 'के' के अनुयायी हतोत्साहित होंगे क्योंकि 'के' दृढ़तापूर्वक कहते आए थे कि मनुष्य तत्क्षण प्रत्यक्ष बोध के द्वारा अपने में आमूल परिवर्तन ला सकता है जिसमें समय की या क्रमिक विकास की कोई भूमिका नहीं है, जबकि नोटबुक से यह प्रदर्शित होता था कि 'के' कोई सामान्य मनुष्य नहीं थे जिसका रूपांतरण हुआ हो बल्कि भिन्न आयाम में रहने वाले एक असाधारण व्यक्तित्व थे। यह

तर्कसंगत बात थी, और जब उनके सामने इसे रखा गया तो उन्होंने जवाब दिया, “बिजली का बल्ब जला लेने के लिए हम सभी को एडीसन बनने की आवश्यकता नहीं है।” बाद में रोम में एक संवाददाता ने जब उनसे पूछा कि आप तो जिस अवस्था में हैं उसी में आपका जन्म हुआ था, तब फिर अन्य लोग उस चेतना की अवस्था तक कैसे पहुंच सकेंगे, इस पर ‘के’ ने कहा—“क्रिस्टोफर कोलंबस समुद्री जहाज से अमेरिका गया, हम लोग अब जेट से वहां जा सकते हैं।”

सर्दियों में भारत में ‘के’ ने तेईस सार्वजनिक वार्ताएं दीं और इसके अलावा अनगिनत परिचर्चाएं कीं, इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं कि जब मार्च के मध्य में वह रोम पहुंचे तो पूरी तरह थके हुए थे। वहां वांदा उनसे मिलीं। उसके अगले दिन वह ज्वर से पीड़ित हो गए। उस अवस्था में वह शरीर से ‘बाहर’ चले गए, उसी तरह जैसे कि वह ‘प्रॉसेस’ के समय जाते थे। उनके जाने के बाद शरीर की देख-रेख के लिए जो सत्ता पीछे छूट गयी, उसके वक्तव्यों को वांदा ने नोट कर लिया। लेकिन अब यह किसी बच्चे के बोलने की आवाज़ नहीं रह गयी थी, बल्कि यह बिलकुल सहज आवाज़ थी :

> मुझे छोड़ना नहीं। वह दूर चला गया है, बहुत दूर। उसकी देखभाल का ज़िम्मा तुम्हें सौंपा गया है। उसे बाहर नहीं जाना चाहिए था। तुम्हें उसे यह बता देना चाहिए था। मेज़ पर वह पूरी तरह से मौजूद नहीं रहता। तुम्हें उसे यह अवश्य बताना चाहिए, पर नज़र के इशारे से ताकि अन्य लोगों का इस पर ध्यान न जाए, वह इसे समझ लेगा। उसका चेहरा ऐसा है कि देखते ही रह जाएं। एक आदमी के वास्ते आंख की उन बरौनियों को व्यर्थ ही गंवा दिया गया। तुम उन्हें ले क्यों नहीं लेतीं? उस चेहरे को बड़ी सावधानी से गढ़ा गया है। ऐसी देह को बनाने में उन लोगों ने कितना लंबा समय, कितनी शताब्दियां लगाई हैं। क्या तुम उसे जानती हो? तुम उसे नहीं जान सकतीं। बहते हुए पानी को भला तुम कैसे जान सकती हो? तुम बस सुनो। सवाल मत पूछो। यदि वह तुम्हें अपने इतने नज़दीक आने दे रहा है तो वह तुम्हें अवश्य प्यार करता होगा। वह इसका बहुत ध्यान रखता है कि कोई भी उसकी देह को स्पर्श न कर ले। तुम्हें पता है वह तुम्हें कितना मानता है। वह चाहता है कि तुम्हें कुछ भी न होने पाए। अतिशय कुछ भी न करो। इतनी सारी यात्राएं उसके लिए बहुत अधिक हो गईं। प्लेन में इतने सारे लोग, धुआं उड़ाते, और इतनी सारी पैकिंग सारे समय, आना और जाना, शरीर के लिए यह कुछ ज़्यादा ही था। उस महिला (वांदा) के लिए वह रोम पहुंचना चाहता था। क्या तुम उसे जानती हो? वह उसके वास्ते जल्दी पहुंचना चाहता था। अगर वह बीमार पड़ती है तो इसका असर उस पर होता है। उफ़, वे सारी यात्राएं; नहीं, मैं शिकायत नहीं कर रहा। तुम्हें पता है वह कितना निर्मल है। वह अपने लिए कुछ नहीं करने देता। इस सारे समय देह मृत्यु के बिलकुल करीब रही। इन सारे महीनों में इसे रोके रखा गया, असामान्य ढंग से इसकी निगरानी की गयी। और यदि यह (देह) चली जाती है तो वह बहुत दूर निकल जाएगा। मृत्यु समीप है। मैंने उससे कहा कि यह सब बहुत अधिक है। जब

वह उन हवाई अड्डों पर होता है तो वह बस अपने में होता है। वह वहां होते हुए भी नहीं होता। भारत की गरीबी और मरते लोग, यह भयानक है। यह देह भी मर गयी होती अगर इसे खोजा नहीं गया होता। कितनी सारी गंदगी थी चारों तरफ। वह कितना स्वच्छ है। उसकी देह कितनी स्वच्छ रखी गयी है। कितने ध्यान से वह इसे साफ करता है। आज सुबह वह तुमको कुछ बताना चाहता था। उसे मत रोको। उसे तुम्हें प्यार करना चाहिए। बताओ तुम उसे। एक पेंसिल लो और उसे बताओ : "मृत्यु सदा वहां है, तुम्हारे बहुत नज़दीक, पर तुम्हें बचाने के लिए। और ज्यों ही तुम आश्रय खोजोगे, मृत्यु को प्राप्त हो जाओगे।"

जब 'के' काफी हद तक ठीक महसूस करने लगे तो वे लोग 'लेच्चो' चले गए। पर वहां वह बहुत बीमार पड़ गए। उन्हें फिर गुर्दे की समस्या ने जकड़ लिया। समस्या तब और जटिल हो गई जब मम्प्स का भी तीव्र आक्रमण हो गया। वह इतने बीमार पड़ गए कि रात में वांदा को उनके दरवाज़े के पास सोना पड़ा। मई के मध्य तक ही वह इंग्लैंड पहुंच सके। वहां डोरिस प्रैट ने उनके लिए एक सुसज्जित घर विंबल्डन में किराए पर ले लिया था। लेडी एमिली अब सत्तासी वर्ष की थीं और अपनी याददाश्त पूरी तरह खो चुकी थीं। फिर भी 'के' प्रायः उनके पास जाते, घंटे भर या अधिक समय तक उनका हाथ पकड़ कर बैठते और स्तोत्र सुनाते। लेडी एमिली उन्हें पहचान लेती थीं और उनकी उपस्थिति उन्हें बहुत पसंद आती। 1964 के आरंभ में उनकी मृत्यु हुई।

कभी-कभार मैं विंबल्डन जाकर उन्हें अपने साथ ले आती थी। गाड़ी में बैठाकर मैं उन्हें हमारे ब्लूबेल के जंगल की सैर कराने ससेक्स ले जाती। हम कभी कोई गंभीर बात नहीं करते थे और सैर करते समय तो बिलकुल ही नहीं बोलते थे। मुझे मालूम था कि उन्हें वहां की निस्तब्धता पसंद है, ब्लूबेल फूलों की सुंदरता और सुगंध, उपवन की शांति, पक्षियों का कलरव और बीच वृक्ष की कोमल नवजात पत्तियां उन्हें प्रिय हैं। वह अक्सर रुक जाते और पैरों के बीच से पीछे के नीले कुहासे को निहारते। मेरे लिए आज भी वह वही थे जो हमेशा से रहे थे—कोई शिक्षक नहीं बल्कि एक बहुत ही प्यारे मनुष्य, जो मेरे किसी भी सगे भाई-बहन से ज़्यादा करीब थे। मुझे यह सोचकर खुशी मिलती थी कि शायद मैं वह व्यक्ति थी, जिसके साथ उन्हें कभी कुछ सोचना नहीं पड़ता था।

जब मैंने सुना कि 'फ्रैंड्स मीटिंग हाउस' और विंबल्डन दोनों जगह उनकी वार्ताएं हो रही हैं तो मुझे एकाएक लगा कि मुझे जाकर उन्हें सुनना चाहिए। ओमन में सन् 1928 के बाद मैंने उन्हें कभी बोलते हुए नहीं सुना था। हॉल पूरा भरा था, लोग पीछे खड़े हो गए थे। मैंने उन्हें मंच पर आते हुए नहीं देखा; एक क्षण के लिए मैंने देखा कि मंच के बीचों-बीच लकड़ी की एक सादी कुर्सी रखी है, और दूसरे ही क्षण वे मुझे कुर्सी पर अपनी हथेलियां टिकाये हुए बैठे दिखाई दिए। पता नहीं कब वह चुपचाप आए और बैठ गए; बहुत ही करीने से पहने हुए गहरे रंग के सूट, सफेद कमीज़ और गहरे रंग की टाई में एक दुबली-पतली आकृति; पैरों में खूब पॉलिश किए हुए भूरे रंग के जूते जो एक-दूसरे की बगल में कुशलतापूर्वक रखे नज़र आ रहे थे। मंच पर वह अकेले थे (उनका परिचय कभी

नहीं दिया जाता था, और जैसा कि मैं पहले कह चुकी हूँ, वह कभी कुछ लिखकर नहीं लाते थे)। श्रोताओं में प्रत्याशा की तीव्र सिहरन दौड़ पड़ी और हॉल में पूर्ण निस्तब्धता छा गयी। वह वहां पूरी तरह शांत बैठे थे, देह में कोई हरकत नहीं थी, सिर को बस हल्के से इधर-उधर ले जाते हुए वह अपने श्रोताओं को निरख रहे थे। एक मिनट बीता, दो मिनट बीते; मैं उनके लिए संत्रस्त महसूस करने लगी। क्या वह पूरी तरह टूट गये थे? मुझे उनके लिए चिंता का एहसास मानो खाये जा रहा था, तभी एकाएक उन्होंने मौन तोड़ा और बोलना शुरू किया। आवाज़ कुछ-कुछ उठती-गिरती हुई लय में थी, उसमें शीघ्रता ज़रा भी न थी। उच्चारण में अस्पष्ट-सा हिंदुस्तानी असर था।

मुझे यह बाद में पता चला कि उनकी हर वार्ता के प्रारंभ में यह लंबी ख़ामोशी होती थी। यह अत्यंत प्रभावकारी होती थी लेकिन यह प्रभाव डालने के उद्देश्य से नहीं होती थी। बोलने से पहले उन्हें शायद ही कभी यह पता होता था कि वह क्या बोलने जा रहे हैं, और इसके लिए शायद वह श्रोताओं के मार्गदर्शन की प्रतीक्षा करते हुए नज़र आते थे। शायद यही कारण था कि उनकी हर वार्ता प्रायः इस तरह शुरू होती थी, जैसे 'पता नहीं इस तरह की वार्ता का क्या मकसद हो सकता है?' अथवा, 'आप इससे क्या उम्मीद रखते हैं?' या, 'मैं समझता हूँ कि अच्छा हो अगर हम लोग वक्ता और श्रोता के बीच एक सच्चा संबंध स्थापित कर पाएं।' ऐसा भी होता था जब उन्हें ठीक-ठीक मालूम होता था कि वह क्या बोलने जा रहे हैं, जैसे : "आज की शाम मैं ज्ञान, अनुभव और समय पर बात करना चाहूंगा।" लेकिन जैसे-जैसे वार्ता आगे बढ़ती थी वह केवल इन्हीं विषयों तक सीमित नहीं रह जाती थी। उनका यह हमेशा आग्रह होता कि वह कोई उपदेश नहीं दे रहे हैं, बल्कि वह और श्रोता साथ मिलकर छानबीन कर रहे हैं। वार्ता के दौरान दो या तीन बार वह अपने श्रोताओं को इस बात की याद दिलाते।

उस शाम को 'फ्रैंड्स मीटिंग हाउस' में उन्हें यह मालूम था कि वह क्या बोलने जा रहे हैं :

> आज और आने वाली शामों में हम जिस चीज़ पर बात करेंगे उसे समझने के लिए एक स्पष्ट मन की ज़रूरत है, एक ऐसे मन की जो प्रत्यक्षबोध की क्षमता रखता हो। समझ कोई रहस्यमय मसला नहीं है। इसके लिए बस एक ऐसे मन की ज़रूरत होती है जो चीज़ों को पूर्वाग्रहों, व्यक्तिगत झुकावों और मतों के बिना सीधे देखने में सक्षम हो। आज शाम को जो मैं कहना चाहता हूँ उसका संबंध संपूर्ण आंतरिक क्रांति से है, समाज के, यानी हमारे, मनोवैज्ञानिक ढांचे के ध्वंस से है। लेकिन समाज, जो कि हम और आप हैं, उसके मनोवैज्ञानिक ढांचे का अंत किसी प्रयास के ज़रिये नहीं हो सकता, और मैं समझता हूँ कि हममें से अधिकांश के लिए यह समझना ही सबसे मुश्किल है।

मुझे ऐसा लगता है कि अधिकांश लोगों के लिए 'के' के शब्दों के पीछे छिपे अर्थों का संप्रेषण स्वयं उनकी भौतिक मौजूदगी के कारण होता था। उनसे कुछ ऐसा निःसृत होता था जो व्यक्ति के मन के पार जाता हुआ सीधे उसकी आंतरिक समझ को स्पर्श करता था

और उसमें एक अर्थ उत्पन्न कर देता था, तथा कोई वार्ता किसी व्यक्ति के लिए कितनी अर्थपूर्ण सिद्ध हुई है, यह उनके शब्दों पर उतना निर्भर नहीं करता था जितना कि स्वयं उस व्यक्ति की ग्रहणशीलता पर। जब वह मंच पर आते तो पहले वह कुर्सी पर अपनी हथेलियों के सहारे शरीर को संयत कर बैठते, लेकिन इसके बाद वार्ता के दौरान उनके एक या दोनों हाथ खुलकर अलग-अलग भंगिमाओं में होते, और प्रायः उनकी उंगलियां खुलकर फैल जातीं। उनके हाथों को देखने का एक अलग आनंद था। वार्ता के समाप्त होते ही वह उसी प्रकार चुपचाप चले जाते थे जैसे आए थे। पश्चिम की अपेक्षा भारत में उनके श्रोतागण हमेशा से कहीं अधिक भावप्रदर्शक रहे थे। यदि वह वहां खुली जगह में बोल रहे होते थे तो उनके लिए मंच छोड़ना और भी कठिन हो जाता था। भारत में अपने लिए प्रदर्शन से भरी श्रद्धा को देखकर वह बेहद उलझन महसूस करते थे, जब वह देखते कि लोग उन्हें साष्टांग प्रणाम कर रहे हैं, या उनको अथवा उनके वस्त्रों को स्पर्श करने की कोशिश कर रहे हैं। बंबई में जब वह किसी सभा से वापस जा रहे होते तो लोगों के हाथ उनकी कार की खुली खिड़की से अंदर चले आते और उनके हाथों को स्पर्श करने की कोशिश करते। एक बार वह सहम गए जब किसी ने उनका हाथ पकड़कर अपने मुंह में भर लिया।

सानेन की दूसरी गैदरिंग गर्मियों में एक विशाल टेंट में हुई। (सानेन नदी के समीप जिस किराये की भूमि पर टेंट खड़ा किया गया था, उस भूमि को 'कृष्णमूर्ति राइटिंग्स' संस्था ने 1965 में खरीद लिया और इसके लिए फंड राजगोपाल ने मुहैया कराया।) वांदा स्कारावेल्ली ने 'शले टान्नेग' को फिर किराये पर ले लिया—ऐसा वह प्रत्येक गर्मियों में 1983 तक करती रहीं। साथ में वह घर चलाने के लिए अपने एक सेवानिवृत्त रसोइये फोस्का को ले आती थीं। अगस्त के आख़िर में जब सभी वार्ताएं हो चुकीं तो 'के' का स्वास्थ्य बिगड़ा हुआ था। उन्होंने उस साल भारत जाना रद्द कर दिया और वे 'शले टान्नेग' में क्रिसमस तक रहे। अक्टूबर में राजगोपाल उनसे मिलने आया, इस उम्मीद के साथ कि कोई समझौता हो जाए। पर राजगोपाल समझौता अपनी शर्तों पर चाहता था और 'के' अभी भी 'कृष्णमूर्ति राइटिंग्स' के बोर्ड में वापस लिये जाने की अपनी मांग पर अडिग थे, अतः दोनों के बीच गतिरोध आ गया। राजगोपाल वहां से लंदन आया और मुझसे 'के' के बारे में पहले से भी ज़्यादा कटु होकर बुरा-भला कहा। उसने 'के' पर पाखंडी होने का आरोप लगाया, पर इसके लिए कोई प्रमाण नहीं दिया, और कहा कि मंच पर जाने से पहले वह अपने बाहरी दिखावे की ज़्यादा चिंता करते हैं, आईने के सामने अपने सिर का एक-एक बाल संवारते हैं। राजगोपाल को यह पता था और मुझे भी कि 'के' हमेशा से न केवल अपने बल्कि दूसरों के भी बाहरी रूप का ख्याल रखते थे। जब कोई उनसे मिलने जाता तो वह हमेशा इसका सबसे अधिक ध्यान रखता कि वह कैसा दिख रहा है, क्योंकि 'के' हर चीज़ पर ध्यान देते थे। यह केवल उनका शिष्टाचार ही हो सकता था कि जब वह श्रोताओं के समक्ष जाएं तो वह जितना ज़्यादा हो सके साफ-सुथरे नज़र आएँ। मैंने राजगोपाल से अनुरोध किया कि यदि वह ऐसा महसूस करता है तो उसे

'के' के लिए काम करना बंद कर देना चाहिए, और यूरोप में, जहाँ उसके तमाम मित्र हैं, सैटल हो जाना चाहिए। (उसने मुझे ऐसा एहसास दिलाया कि धन उसके लिए समस्या नहीं हे) लेकिन उसकी वास्तविक समस्या यह लगती थी कि वह 'के' से एकतरफा प्रेम-घृणा के संबंध में जकड़ा हुए था और 'के' से विलगाव ने यह और कठिन बना दिया था कि वह उस संबंध से बाहर निकल पाए।

'शले टान्नेग' छोड़ने के बाद 'के' वांदा के साथ रोम चले गये जहां वांदा ने उनका परिचय तमाम विशिष्ट हस्तियों से कराया जिनमें फिल्म निर्देशक, लेखक और संगीतकार थे। इनमें प्रमुख नाम थे : फेलीनी, पोंतेकोर्वो, अल्बेर्तो मोराविया, कार्लो लेवी, सेगोविया और कॅज़ल्स, जिन्होंने उनके लिए कार्यक्रम प्रस्तुत किया। (लेच्चो से वांदा उन्हें कई बार बर्नार्ड बेरेन्सन से मिलवाने 'ई तात्ती' ले जा चुकी थी।)*

मार्च में हक्स्ले रोम में थे और प्रायः 'के' से उनकी भेंट होती थी। यह उनकी अंतिम मुलाकात थी क्योंकि नवंबर में लॉस एंजिलिस में हक्स्ले की मृत्यु हो गयी। हक्स्ले की मृत्यु के एक माह बाद 'के' ने मुझे लिखा : "कुछ साल पहले आल्डस हक्स्ले ने मुझे बताया था कि उन्हें जीभ का कैंसर है; उन्होंने मुझसे कहा था कि यह बात उन्होंने किसी को नहीं बतायी है, अपनी पत्नी को भी नहीं। मैं इस वसंत में उनसे रोम में मिला था और वह काफी ठीक लग रहे थे। इसलिए मुझे धक्का-सा लगा जब मुझे पता चला कि वह नहीं रहे। मैं आशा करता हूँ कि उन्हें कष्ट नहीं उठाना पड़ा होगा।"

मई के अंत में 'के' गश्टाड लौट आए। कार से वेनिस जाते हुए मैं और मेरे पति एक रात के लिए गश्टाड में रुके। हम लोग 'शले टान्नेग' उनसे मिलने गए। उनके साथ फोस्का के अलावा वहां कोई नहीं था। उन्होंने हमारा बहुत अधिक सत्कार किया और सानेन कमेटी द्वारा खरीदी गयी मर्सिडीज़ कार में घुमाने ले गए। यह साफ दिखाई दे रहा था कि कार को बहुत संजोकर रखा गया है, कभी-कभार ही इसका इस्तेमाल होता है, और जब कभी यह थोड़ी दूर के लिए भी बाहर जाती है तो लौटने पर इसकी साफ-सफाई और पॉलिश खुद उनके द्वारा की जाती है। इटली में अपनी यात्रा जारी रखते हुए हम पर्जिन के कासल होटल में रुके। यह वही जगह थी जहां कृष्णा, नित्या और हम सब 1924 में ठहरे थे। जिस राउंड टावर में वह यहां ठहरे थे, उसका एक पोस्टकार्ड मैंने उन्हें भेजा। उनका उत्तर आया : "मुझे इसके बारे में कुछ भी याद नहीं आता—यह कोई और कासल भी हो सकता है। मेरे मस्तिष्क में इसकी ज़रा-भी स्मृति नहीं है।"

उस साल सानेन गैदरिंग में एक नये व्यक्ति का आगमन हुआ जिनकी कुछ वर्षों तक 'के' के बाहरी जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। यह थे पैंतीस वर्षीय एलन नॉडे जो साउथ अफ्रीका के पेशेवर पियानो वादक थे। इन्होंने पेरिस और सिएना में अपनी पढ़ाई की थी और यूरोप में अपने कार्यक्रम दे चुके थे। उस समय वह प्रिटोरिया यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर थे। लड़कपन से उनकी रुचि धार्मिक जीवन के प्रति थी। कृष्णमूर्ति के बारे में उन्होंने सुन रखा था, इसलिए छुट्टियों में उन्हें सुनने सानेन आए थे। 'के' से वह व्यक्तिगत रूप से मिले और सर्दियों में जब 'के' भारत में थे तो वह भी वहां थे। 1964 की

शुरुआत में प्रिटोरिया लौटने पर उन्होंने यूनिवर्सिटी से इस्तीफा दे दिया, ताकि वह अपनी आध्यात्मिक नियति का अनुसरण कर सकें।

1964 की गर्मियों में नॉडे पुनः सानेन में थे। उसी समय वहां मेरी ज़िंबलिस्ट (पूर्व में मेरी टेलर) भी आई थीं जो फिल्म निर्माता सैम ज़िंबलिस्ट की विधवा थीं। यूरोपियन संस्कृति में ढलीं वह न्यूयॉर्क के एक प्रतिष्ठित व्यावसायिक घराने की सौम्य, सुरुचिपूर्ण महिला थीं। अपने पति के साथ 1944 में उन्होंने 'के' को पहली दफा ओहाय में सुना था। 1958 में हृदयाघात से जब उनके पति की मृत्यु हुई तो वह पुनः 1960 में ओहाय में 'के' को सुनने आईं—उस समय भी वह भीषण शोक और विषाद में थीं। उसके बाद उन्होंने 'के' के साथ एक लंबी निजी मुलाकात की जिसमें 'के' ने उनसे मृत्यु के संबंध में जो कहा उसे समझने के लिए वह तैयार थीं : पलायन के सामान्य रास्तों से व्यक्ति मृत्यु से भाग नहीं सकता; मृत्यु के तथ्य को समझना ही होगा; अकेलेपन या मृत्यु का तथ्य नहीं बल्कि अकेलेपन से पलायन ही दुख उपजाता है, वह दुख आत्म-दीनता है, प्रेम नहीं। मेरी ने यह उम्मीद की थी कि वह पुनः 'के' को ओहाय में सुन सकेंगी। लेकिन जब उन्हें पता चला कि अभी ऐसा नहीं होने वाला है तो उन्होंने सानेन की यात्रा की। वहां उनकी मित्रता एलन नॉडे से हुई और 'के' ने उन दोनों को गैदरिंग के बाद रुके रहने का निमंत्रण दे दिया ताकि वे लोग 'शले टान्नेग' में होने वाली छोटी निजी परिचर्चाओं में शामिल हो सकें। मेरी ने फिर एक लंबी निजी बातचीत उनसे की।

'के' के खर्चों के लिए इंग्लैंड में जो शेयर सुरक्षित रखे गए थे, उनसे अब लाभांश मिलना बंद हो गया था। इस पर डोरिस प्रैट ने राजगोपाल को सुझाया कि 'के' का भारत और यूरोप में सारा यात्रा व्यय भविष्य में 'कृष्णमूर्ति राइटिंग्स' संस्था द्वारा सानेन कमेटी को अदा किया जाना चाहिए और साथ में 'कृष्णमूर्ति राइटिंग्स' संस्था द्वारा यूरोप में उगाहे गये फंड भी कमेटी को मिलने चाहिए; डोरिस ने यह भी सुझाया कि 'के' के स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए उन्हें आगे से प्रथम श्रेणी में यात्रा करनी चाहिए। राजगोपाल ने पहले प्रस्ताव पर तो सहमति जताई, लेकिन 'के' के प्रथम श्रेणी में यात्रा करने के प्रस्ताव का कोई जवाब नहीं दिया। यदि इस बात को ध्यान में रखा जाए कि जो भी पैसा 'कृष्णमूर्ति राइटिंग्स' संस्था को मिलता था, अनुदान, वसीयत या किताबों की रायल्टी के तौर पर, वह सब स्वयं 'के' का उपार्जित था, तब यह बात बड़ी हैरानी की लगेगी कि 'के' की निजी सुविधाओं पर धन खर्च करने की इजाज़त भी राजगोपाल से लेनी पड़ती थी। इसके अलावा, जब 'के' 1964-65 की सर्दियों में एलन नॉडे से फिर मुलाकात के बाद उन्हें अपना सचिव और यात्रा-सहचर बनाना चाहते थे, तब उन्हें एक साधारण वेतन देने तक के लिए पुनः राजगोपाल की इजाज़त मांगनी ज़रूरी थी। यह इतना स्पष्ट था कि सत्तर की आयु में, और विशेषकर बहुत-सी बीमारियों से गुज़रने के बाद, 'के' के लिए अकेले सफर करना मुनासिब नहीं रह गया था।

मैं 1965 के वसंत में एलन नॉडे और 'के' से एक साथ सेविल रो में उनके दर्ज़ी हंट्समन के यहां मिली। एलन 'के' के साथ ठहरे हुए थे, और डोरिस विंबल्डन में ही एक

दूसरे घर में रहने चली गयी थीं और उन्होंने ‘के’ की विंबल्डन वार्ताओं की रिकॉर्डिंग का ज़िम्मा संभाला हुआ था। जब ‘के’ मेरे साथ उसी ब्लूबेल के उपवन की सैर के लिए गये, तो पिछले कई सालों की अपेक्षा बहुत अधिक प्रफुल्लित दिखे। उन्होंने बताया कि एलन के आने से उनके जीवन में कितना बदलाव आ गया है वह साथ में यात्रा करते हैं और सामान की देखभाल भी। ‘के’ को उनके साथ एक सहज घनिष्ठता महसूस होती थी; वह प्रसन्नचित्त, गंभीर, ऊर्जावान और खुले दिमाग के व्यक्ति थे, भाषाएं सीख लेने की उनमें जन्मजात प्रतिभा थी। मेरी ज़िंबलिस्ट भी तब लंदन में थीं लेकिन मैं उनसे अगले साल ही मिल पायी। मेरी ने एक कार किराये पर लेकर ‘के’ और एलन को इंग्लैंड के ख़ूबसूरत स्थलों की सैर करवायी। और जब तीनों लंदन के बाद पेरिस गये तो मेरी उन्हें कार से बर्साई, शार्ट्र, रांबूइए और अन्य जगहों पर घुमाने ले गयीं। ये कुछ ऐसी सुखद यात्राएं थीं, जिनसे ‘के’ अपने बाहरी तौर पर एकरस जीवन में बरसों से वंचित रहे थे।

---

* बेरेन्सन की डायरी में 7 मई 1956 की प्रविष्टि इस प्रकार है, जब वह नब्बे वर्ष के थे : ‘कृष्णमूर्ति चाय पर : सौजन्यता से पूर्ण, संवेदनशील, मेरी सारी आपत्तियां मानते हुए; निश्चय ही हमारी चर्चा बहुत कम विवादग्रस्त रही। यद्यपि उन्होंने ‘परे’ (‘बियोंड’) पर जोर दिया और कहा कि यह अवस्था निश्चल है, यह घटनाविहीन अस्तित्व है, जहां कोई विचार नहीं, कोई प्रश्न नहीं, कोई—क्या? उन्होंने मेरे इस दावे को ख़ारिज कर दिया कि ऐसी अवस्था मेरे पश्चिमी ढांचे में ढले मस्तिष्क के लिए परे की बात है। मैंने उनसे यहां तक पूछ लिया कि कहीं वह मात्र एक शाब्दिक चीज़ के पीछे तो नहीं हैं। उन्होंने इसका दृढ़तापूर्वक खंडन किया, लेकिन बिना गर्म हुए।’ (सनसेट एंड ट्वायलाइट निकी मरिएनो (सं.), हेमिश हेमिल्टन, 1964)

14

आदर्श तो क्रूरता है

मेरी ज़िंबालिस्ट और एलन नॉडे उस जाड़े में 'के' के साथ भारत आए। दोनों ने 'के' और अनेक भारतीय मित्रों के साथ उन सभी जगहों की यात्रा की जहां 'के' वार्ताएं देते थे और परिचर्चाएं करते थे। दिसंबर 1965 में 'के' अभी भारत में ही थे कि उन्हें एक अनपेक्षित निमंत्रण राजगोपाल से प्राप्त हुआ जिसे उन्होंने स्वीकार लिया। यह निमंत्रण था ओहाय में अक्टूबर 1966 में वार्ता करने का। 11 जनवरी 1966 को भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री का देहांत हो गया और पुपुल जयकर की निकट मित्र इंदिरा गांधी प्रधानमंत्री बनीं।

1966 के वसंत में मेरी मुलाकात मेरी जिंबलिस्ट से इंग्लैंड में हुई। एक दोपहर वह अनपेक्षित रूप से 'के' और एलन के साथ हमारे देहात वाले घर के दरवाज़े पर गाड़ी से आ गईं। वे लोग पिकनिक मनाकर आ रहे थे। 'के' ने उन्हें हमारे घर का रास्ता दिखाया था। जब तीनों आख़िर में चले गए, तो मुझे याद आया कि अद्भुत रूप से कितना सुखी और मैत्रीपूर्ण साथ है इन तीनों का, और 'के' के स्वास्थ्य व प्रसन्नता के लिए कितना लाभदायक है इनका संग। हास्य से भरपूर था उनका यह आना। 'के' के इन नये मित्रों के साथ मेरी दोस्ती बहुत तेज़ी से बढ़ी। इसके बाद 'के' जहां कहीं भी जाते उनके साथ रहना चाहते। ग्रीष्मकाल में वे लोग गश्टाड में थे यद्यपि वे अलग बंगले में ठहरे थे। न्यूयॉर्क में 'के' उनके साथ मेरी के भाई के अपार्टमेंट में ठहरे, और उसके बाद कैलिफोर्निया में स्वयं मेरी के ख़ूबसूरत घर में जो कि मालिबू के समुद्र के किनारे एक खड़ी चट्टान के ऊपर था। 28 अक्टूबर को तीनों ओहाय पहुंचे और अगले दिन ओकग्रोव में 'के' की पहली वार्ता हुई। कुल छः वार्ताएं हुईं। 1960 के बाद 'के' पहली बार यहां बोल रहे थे। तीसरी वार्ता से पूर्व एक टेलीविज़न टीम आ गई और पहली बार 'के' की वार्ता का फिल्मांकन हुआ। इस वार्ता का संबंध भी उनकी अन्य सारी वार्ताओं की तरह मूलभूत रूप से मनुष्य के चित्त में आमूल परिवर्तन से था। बिना ऐसे परिवर्तन के समाज में कोई वास्तविक परिवर्तन नहीं हो सकता, कोई वास्तविक खुशी नहीं आ सकती, संसार में कोई शांति नहीं हो सकती। उन्होंने वही कहा जो पहले अनेकों बार कह चुके थे। उनके शब्द दर्पण की भांति थे जिसमें लोग अपने भीतर जो वस्तुतः घटित हो रहा था उसे देख सकते

थे।

'के' और राजगोपाल के बीच जिस समझौते की उम्मीद थी, दुर्भाग्यवश वह नहीं हो सका। हालांकि वे कई बार अकेले में मिले। 'कृष्णमूर्ति राइटिंग्स' के बोर्ड में स्वयं को शामिल करने का 'के' का आग्रह अब भी बना हुआ था, जबकि राजगोपाल इससे इनकार कर रहे थे कि संगठन के प्रति 'के' की कोई ज़िम्मेदारी है। 'कृष्णमूर्ति राइटिंग्स' के उपाध्यक्ष और एक ट्रस्टी से भी 'के' ने बात की। इन दोनों को वह वर्षों से अच्छी तरह जानते थे, लेकिन दोनों सहयोग करने में असमर्थ थे या अनिच्छुक थे। 'के' के दो नये मित्रों के प्रति ईर्ष्या ने स्थिति में कोई सुधार नहीं होने दिया।

दिसम्बर में 'के' अकेले दिल्ली के लिए रवाना हुए। (एलन नॉडे अपने माता-पिता को देखने प्रिटोरिया चले गए थे।) उस साल भारत में जो वार्ताएं हुईं वे 'कृष्णमूर्ति राइटिंग्स' द्वारा प्रकाशित 'के' की अन्तिम वार्ताएं थीं। इसके बाद मार्च 1967 में, रोम में, मेरी और एलन दोबारा 'के' के साथ हो लिये। वहां से वे लोग पेरिस गए जहां मेरी ने एक घर किराए पर ले लिया था। सुआरेस दंपति के यहां 'के' अब आगे नहीं ठहरने वाले थे; पेरिस वार्ताओं के प्रबंध को लेकर लिओन दे विदास से कुछ झगड़ा होने के बाद ये लोग उनके जीवन से बाहर निकल गए। पेरिस के बाद 'के' अपने दोनों मित्रों के साथ हॉलैंड गए। वहां वह ग्यारह सालों में पहली बार एम्स्टरडम में बोले। हयूज़ेन में एक फार्महाउस में वे रुके, यह वही शहर था जहां वेजवुड अपने संप्रदाय के साथ रहे थे, पर 'के' को इसकी कोई स्मृति नहीं थी। संयोग से मेरे पति मेरे साथ उस समय हॉलैंड में थे और हम लोग उनसे मिलने गए। जैसे ही हम लोग मिलकर जा रहे थे, 'के' ने अप्रत्याशित रूप से मुझसे पूछा कि क्या मैं उनके लिए एक किताब लिख सकूंगी। मैं विस्मित रह गई जब मैंने अपने को यह कहते हुए सुना, "हां। कैसी किताब?" उन्होंने कहा, "वार्ताओं पर आधारित कोई किताब। मैं तुम्हारे ऊपर छोड़ता हूँ।" मुझे विश्वास है कि एलन ने उन्हें यह सुझाया होगा। अपने लेखन-कार्य के बारे में मैंने 'के' से कभी बात नहीं की थी और मुझे नहीं लगता कि बिना एलन के बताए 'के' को यह पता चला होगा कि मैं पेशेवर लेखिका हूँ। लेकिन दोनों में से किसी को भी शायद यह पता नहीं था कि 1928 के बाद मैंने 'के' का एक शब्द भी नहीं पढ़ा था। ग्रीष्मकाल का बाकी समय मेरा उस कार्य की विशालता की चिंता से घिरकर बीता जिसका बीड़ा मैंने उठा लिया था, हालांकि पीछे जाने की बात मैंने बिलकुल नहीं सोची। जब मैं लंदन लौटी तो मैंने डोरिस प्रैट से पूछा कि पिछले दो वर्षों के दौरान उनकी दृष्टि में सबसे अच्छी वार्ताएं कौन-सी हैं। डोरिस को मैं ओमन कैंप के दिनों से जानती थी। उन्होंने 1963-64 की वार्ताएं सुझाईं और इस काल की भारत और यूरोप की वार्ताओं के प्रामाणिक विवरणों ('ऑथेंटिक रिपोर्ट्स') के चार पेपरबैक संस्करण मुझे भिजवा दिए।

मैंने इन विवरणों को घोर उत्सुकता के साथ पढ़ा। यह कुछ ऐसा था जैसे कि मैं कई खिड़कियों वाले एक कमरे में रह रही हूँ, वे खिड़कियां पर्दों से ढकी हों और जैसे-जैसे मैं पढ़ती गयी, ये पर्दे एक-एक करके हटते चले गये। 'आदर्श तो क्रूरता है', 'मैं कोशिश

करूंगा—इससे ज़्यादा बेहूदी बात हो ही नहीं सकती', इस प्रकार की उद्घोषणाओं ने मेरी सोच को हिलाकर रख दिया। 'के' ने मूल रूप से एक ही विषय सभी वार्ताओं में प्रस्तुत किया था इसलिए उनमें काफी अधिक पुनरावृत्ति थी, यद्यपि वे पुनरावृत्तियां कभी एक समान शब्दों में नहीं थीं। अतः मैंने इन विषय-वस्तुओं को करीब सौ शीर्षकों के अंतर्गत—जैसे सजगता, संस्कारबद्धता, चेतना, मृत्यु, भय, मुक्ति, ईश्वर, प्रेम, ध्यान आदि—सूचीबद्ध किया, और उनमें से उन अंशों को चुना जिनमें मुझे लगा कि 'के' ने स्वयं को सबसे अधिक स्पष्टता और सुंदरता से व्यक्त किया है, फिर उन अंशों को मैंने 124 पृष्ठों की पुस्तक में बुन दिया। मैंने इसमें न तो 'के' का एक शब्द बदला और न अपनी तरफ से कोई शब्द जोड़ा; फिर भी यह संग्रह-पुस्तिका नहीं थी। बल्कि इसे हम कृष्णमूर्ति प्रवेशिका (प्राइमर) कह सकते हैं। मैंने कभी इससे अधिक कठिन, सघन या रोमांचक कार्य अपने हाथ में नहीं लिया था। एक वाक्य जो मुझे अच्छे से याद हो गया था वह था : "स्वयं की और दूसरों की सत्ता से मुक्त होने का अर्थ है अतीत की प्रत्येक वस्तु के प्रति मर जाना, ताकि आपका चित्त सदा तरोताज़ा, युवा, निर्दोष और उत्साह व उत्कट आवेग से भरा रहे।" यह छोटी-सी किताब जिसका शीर्षक फ्रीडम फ्रॉम द नोन स्वयं 'के' द्वारा चुना गया था सन् 1969 में प्रकाशित हुई।

इस किताब में सबसे अधिक हृदयस्पर्शी और सुंदर अध्याय मुझे जो लगता है वह है प्रेम पर। बहुत लोगों को कृष्णमूर्ति की शिक्षा नकारात्मक लगती है क्योंकि कभी-कभी वे किसी चीज़ तक उन चीज़ों को केवल नकारते हुए पहुंचते हैं जो कि स्वयं वह चीज़ नहीं है। प्रेम इसका एक मुख्य उदाहरण है : प्रेम ईर्ष्या नहीं है, प्रेम आधिपत्य नहीं है, प्रेम प्रेम की मांग नहीं करता, प्रेम भय नहीं है, प्रेम यौन सुख नहीं है; दूसरे पर निर्भरता प्रेम नहीं है, विचार प्रेम का पोषण नहीं कर सकता, प्रेम सुंदरता नहीं है, प्रेम आत्म-दया नहीं है। (इससे हमें उनके एक बाद के वक्तव्य को समझने में मदद मिलती है : "नाखुश प्रेम जैसी कोई चीज़ नहीं होती।") वे कहते हैं : "क्या आपको नहीं पता कि प्रेम करने का वास्तव में क्या अर्थ होता है—बिना घृणा के, बिना ईर्ष्या के, बिना क्रोध के, बिना हस्तक्षेप की चाहत के कि अमुक व्यक्ति क्या सोच रहा है या कर रहा है, बिना निंदा के, बिना तुलना के प्रेम करना? जब आप किसी को अपने संपूर्ण हृदय से, मन से, शरीर से, अपने समूचे अस्तित्व से प्रेम करते हैं तो क्या वहां तुलना होती है?"

जिस विचार को समझने में मुझे सबसे अधिक दिक्कत महसूस हुई वह था : 'द्रष्टा ही दृश्य है'। अंततः मैंने अपने लिए उसकी इस प्रकार टीका की : स्व अपने अस्तित्व की अंतर-अवस्थाओं का अवलोकन स्वयं अपने संस्कारबद्ध मन से करता है और इसलिए वह जो देखता है वह उसी की प्रतिकृति होती है; हम जो हैं वही देखते हैं। उच्चतर स्व द्वारा व्यक्ति के अन्य स्व का दिशा-निर्देशन किये जाने की अवधारणा एक भ्रांति है, क्योंकि स्व केवल एक है। जब 'के' अन्य वार्ताओं में कहते हैं कि 'अनुभव ही अनुभवकर्ता है' अथवा 'विचारक ही विचार है' तो वह उसी विचार को व्यक्त करने के लिए केवल भिन्न शब्दों का इस्तेमाल कर रहे होते हैं।

जून 1967 के आरंभ में मेरी जिंबलिस्ट 'के' और एलन नॉडे को कार में लेकर गश्टाड पहुंचीं। वहां वे तीनों एक साथ दूसरे बंगले में रहे, जब तक कि वांदा ने आकर 'के' के लिए शले टान्नेग नहीं खोल दिया। टान्नेग जाने से कुछ दिन पूर्व वह बुखार के कारण बिस्तर में पड़े रहे। मेरी ने अपनी डायरी में लिखा कि उस समय 'के' उसे उन्मादग्रस्त प्रतीत हुए जब उन्होंने उसकी तरफ न पहचानते हुए देखा और एक बच्चे के स्वर में कहा, "कृष्णा दूर जा चुका है।" उन्होंने मेरी से पूछा कि क्या उसने कृष्णा पर कोई सवाल उठाया है और साथ में जोड़ा, "उसे यह पसंद नहीं है कि कोई उस पर सवाल उठाये। इन सारे सालों के बाद मैं उसका अभ्यस्त नहीं हुआ हूँ।" ज़ाहिर है कि मेरी को 'प्रॉसेस' के बारे में नहीं पता था। यद्यपि इसके बाद मेरी को 'के' की मृत्यु होने तक किसी भी अन्य व्यक्ति की अपेक्षा सबसे अधिक उन्हीं के साथ रहना था, ऐसा प्रतीत होता है कि केवल यही एक समय था जब 'प्रॉसेस' मेरी के सामने प्रकट हुआ। हालांकि उन्होंने मेरी को सावधान कर दिया था कि कभी-कभी वह मूर्च्छित हो जाते हैं, उस समय भी जब वह गाड़ी में होते हैं; ऐसे समय मेरी को कोई ध्यान नहीं देना है और धीमी गति से गाड़ी चलाते जाना है। ऐसा कई बार हुआ भी। वह मेरी की गोद में या कंधे पर गिर जाते लेकिन शीघ्र ही स्वस्थ हो जाते और इसके लिए कुछ बुरा अनुभव नहीं करते।

यूरोप में 'के' एक स्कूल स्थापित करना चाहते थे और उसके ऊपर काफी अधिक चर्चा उस ग्रीष्मकाल के दौरान गश्टाड में हो रही थी। एक पुराने मित्र ने 'के' को रिटायर होने पर एक घर बनवाने के लिए 50,000 पाउंड की राशि भेंट की थी। कभी भी रिटायर न होने की मंशा के साथ उन्होंने मित्र से अनुरोध किया कि क्या वह इस राशि को एक स्कूल खोलने में खर्च कर सकते हैं—जिसे तुरंत मान लिया गया। अभी हाल ही में इसका प्रिंसिपल बनने के लिए एक उपयुक्त व्यक्ति से उनकी भेंट भी हो गई थी। यह थीं डोरोथी सिमन्स जो अपने पति मॉन्टेग्यू के साथ अठारह साल तक एक सरकारी स्कूल चलाने के बाद अभी सेवानिवृत्त हुई थीं। यह जल्दी तय कर लिया गया कि यह नया स्कूल इंग्लैंड में खोला जाएगा क्योंकि श्रीमती सिमन्स को किसी विदेशी भाषा में कुशलतापूर्वक स्कूल चलाने में दिक्कत होगी। अंततः हैम्पशियर में जॉर्जियन शैली में बना एक विशाल घर 'ब्रॉकवुड पार्क' 42000 पाउंड में खरीद लिया गया। इसके साथ छत्तीस एकड़ में फैला पार्क और बगीचा भी था। 1968 के आख़िर में सिमन्स दंपति, डोरिस प्रैट और एक विद्यार्थी वहां जाकर रहने लगे।

'के' ने स्कूल चलाने का निर्णय अपने आर्थिक सलाहकार और मेडिटेरिनी क्लब के संस्थापक जेरार्ड ब्लिट्ज़ की विपरीत सलाह के बावजूद लिया था। जेरार्ड ने उन्हें बतलाया था कि स्कूल के साजो-सामान के लिए जब तक और फंड एकत्रित नहीं हो जाते, तब तक स्कूल खोलना एकदम नामुमकिन होगा। जबकि 'के' की नीति आजीवन जो उन्हें सही महसूस हुआ उसे करने की रही थी और इसके लिए धन का इंतज़ाम कैसे भी हो जाना था। और ऐसा सामान्यतः हुआ भी।

लेकिन इससे पूर्व राजगोपाल के साथ पूर्ण संबंध-विच्छेद हो चुका था और 'के' ने

एक नया ट्रस्ट अपनी शिक्षाओं के प्रसार के लिए स्थापित कर दिया था। ट्रस्ट के विलेख में यह सुनिश्चित कर दिया गया कि राजगोपाल वाली स्थिति पुनः न खड़ी हो सके। 1968 की सानेन गैदरिंग में यह घोषणा कर दी गई :

> कृष्णमूर्ति की यह इच्छा है कि यह सभी को ज्ञात हो जाए कि उन्होंने 'कृष्णमूर्ति राइटिंग्स इन्कॉर्पोरेटेड', ओहाय, कैलिफोर्निया से स्वयं को पूर्णतया अलग कर लिया है।
>
> वह आशा करते हैं कि इस सार्वजनिक घोषणा के परिणामस्वरूप, जो उनके कार्यों और शिक्षाओं से जुड़े रहना चाहते हैं वे नये, अंतरराष्ट्रीय 'कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ऑव लंदन, इंग्लैंड' को सहायता प्रदान करेंगे, जिसके क्रियाकलाप में एक स्कूल शामिल होगा। इस विलेख ('डीड') के द्वारा, जो फाउंडेशन की स्थापना करता है, यह सुनिश्चित किया जाता है कि कृष्णमूर्ति की मंशाओं का सम्मान किया जाएगा।

चालीस साल तक अत्यंत समर्पित स्वैच्छिक सेवा करने के बाद डोरिस प्रैट अवकाश प्राप्त कर 'ब्रॉकवुड पार्क' आ गईं। सन् 1958 से डोरिस प्रैट की मदद कर रहीं एक शादीशुदा महिला मेरी कैडोगन, जिनकी एक पुत्री थी, इस नये फाउंडेशन की सेक्रेटरी बनीं। शादी से पूर्व मेरी कैडोगन ने बी.बी.सी. के लिए काम किया था और उनकी योग्यताएं उच्चतम स्तर की थीं। (तब से अब तक फाउंडेशन की सेक्रेटरी रहते हुए वे पांच कामयाब किताबें प्रकाशित कर चुकी हैं।)

जब तक नये स्थापित फाउंडेशन के लिए अनुदान आना आरंभ नहीं हो गया तब तक एक कठिन दौर चला। 'कृष्णमूर्ति राइटिंग्स' की संपत्तियां अनुपलभ्य हो गई थीं लेकिन सौभाग्य से डोरिस प्रैट और मेरी कैडोगन ने एक छोटा-सा फंड जमा कर लिया था जिसके सहारे नया फाउंडेशन आगे गति कर सका। इसी समय 'के' ने एक प्रकाशन समिति का गठन किया जिसका अध्यक्ष जॉर्ज विंगफील्ड डिग्बी को बनाया जो कि उस समय विक्टोरिया और अल्बर्ट संग्रहालय के टेक्स्टाइल क्यूरेटर (संरक्षक) थे, इसके अलावा ओरिएंटल पोर्सलेन के अच्छे जानकार व विलियम ब्लेक की जीवनी के रचयिता थे। यह समिति बाद में 'के' की वार्ताओं के संपादन के लिए उत्तरदायी बनी। इसका कार्य इन पुस्तकों की मुद्रण के दौरान देख-रेख और एक बुलेटिन निकालना भी था। इसके बाद 'ऑथेंटिक रिपोर्ट्स' का मुद्रण भारत की बजाय हॉलैंड में होने लगा।

सन् 1969 में कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ऑव अमेरिका (के. एफ. ए.) की स्थापना की गई और 1970 में कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ऑव इंडिया (के. एफ. आई.) की। जिसकी संभावना थी वह हुआ—'कृष्णमूर्ति राइटिंग्स' और अमेरिकी फाउंडेशन के बीच मुकदमा शुरू हुआ और यह 1974 तक खिंचता गया जब तक कि अदालत के बाहर इसको सुलझा नहीं लिया गया। समझौते की मुख्य शर्तें इस प्रकार थीं : 'कृष्णमूर्ति राइटिंग्स' को समाप्त कर दिया जाएगा और राजगोपाल के नियंत्रण वाले दूसरे संगठन 'के. एंड आर. फाउंडेशन' के पास 1 जुलाई 1968 से पूर्व के कृष्णमूर्ति साहित्य पर कॉपीराइट अधिकार होगा;

ओहाय घाटी के पश्चिमी सिरे पर स्थित 150 एकड़ भूमि, साथ में ओकग्रोव और ऊपरी सिरे पर स्थित ग्यारह एकड़ भूमि जिस पर पाइन कॉटेज और आर्य विहार बने थे, के. एफ. ए. को हस्तांतरित कर दिए जाएंगे; पेंशन और राजगोपाल के कानूनी मदों के लिए एक निश्चित धन राशि काट कर 'कृष्णमूर्ति राइटिंग्स' की चल संपत्ति के. एफ. ए. को हस्तांतरित कर दी जाएगी, तथा राजगोपाल को आजीवन अपने घर पर अधिकार रहेगा।

मुकदमे के दौरान भी 'के' की यात्राएं जारी रहीं। अन्तर केवल इतना आया था कि जब वे इंग्लैंड में होते तो 'ब्रॉकवुड पार्क' में रुकते और जब कैलिफोर्निया में होते तो मेरी जिंबलिस्ट के साथ मालिबू में ठहरते और ओक ग्रोव की बजाय सांता मोनिका में बोलते। 1969 की शरद ऋतु से एलन नॉडे ने 'के' के लिए काम करना बंद कर दिया और सैन फ्रैंसिस्को रहने चले गए जहां वह संगीत सिखाते थे। कभी-कभी वह मालिबू में आकर ठहरते और जब कभी 'के' सैन फ्रैंसिस्को जाते मुलाकात ज़रूर होती। 'के' के लिए उन्होंने बहुत बड़ा काम किया था। हार्वर्ड और बर्कले सहित अनेक विश्वविद्यालयों में उनकी वार्ताओं का इंतज़ाम करके वे 'के' को अमेरिका की युवा पीढ़ी के संपर्क में लाए। एलन ने लिखा : "बहुत स्वाभाविक रूप से, हालांकि कुछ आश्चर्य के साथ, कृष्णमूर्ति एकाएक इन विद्यार्थियों के हीरो और मित्र हो गए हैं क्योंकि उनसे मिलने के बहुत पूर्व ही वे चीज़ें जिनकी वह बात कर रहे हैं उन विद्यार्थियों के लिए खाने व सांस लेने के समान महत्त्वपूर्ण हो गई थीं। जो वह बोलते हैं उसे वे बहुत पसंद करते हैं और बिना श्रद्धा या भय के 'के' के प्रति एक बहुत ही सहज स्नेह महसूस करते हैं।"[53]

1970 के वसंत में 'के' जब ब्रॉकवुड में थे तो उन्होंने मुझसे अपने आरंभिक जीवन के बारे में लिखने के लिए कहा। पहले उन्होंने अपने मित्र शिवा राव से इसे लिखने के लिए कहा था और इसके लिए शिवा राव ने अड्यार स्थित थियोसोफिकल आर्काइव्ज़ से बहुत सारी सामग्री भी इकट्ठी कर ली थी। लेकिन वह बीमार पड़ गए और उन्हें यह आभास हो गया कि पुस्तक पूरी करने के लिए पर्याप्त रूप से वह कभी ठीक नहीं हो पाएंगे। (अगले साल उनकी मृत्यु हो गई।) तब उन्होंने अपने सारे कागज़ात मुझे सौंपने की पेशकश की। जब मैं पहली बार 1923 में भारत गई थी तभी से उन्हें मैं जानती थी और तब से हम दोनों घनिष्ठ मित्र रहे थे। 'के' ने कहा कि जब अगले साल के शुरू में वह भारत से लौटेंगे तो कागज़ात लेते आएंगे। जब मुझसे यह लिखने के लिए कहा गया तो निःसंदेह मुझे बहुत प्रसन्नता हुई, लेकिन इसे स्वीकार करने से पूर्व मैंने यह अनुबंध कर लिया कि उसके मूल पाठ को किसी को भी दिखाना मेरे लिए आवश्यक नहीं होगा। इस पर सहमत होने के बाद 'के' ने अपने पत्रों और 1922 के ओहाय अनुभवों के अप्रकाशित विवरणों को उद्धृत करने की मुझे लिखित अनुमति प्रदान की। हालांकि शिवा राव की सामग्री प्राप्त होने से पूर्व मैं पुस्तक आरंभ करना नहीं चाहती थी, फिर भी मैं जून में इस सिलसिले में 'के' का पहला साक्षात्कार लेने ब्रॉकवुड गई। जब उन्होंने अपना उल्लेख किया तो वह 'उस बालक' में अत्यधिक रुचि लेते प्रतीत हुए और उन्हें आश्चर्य हुआ कि लेडबीटर ने उन्हें क्यों चुना। उस बालक के चित्त की क्या विशेषता थी? इन सारे

वर्षों के दौरान उसे किस चीज़ ने सुरक्षित रखा? ऐसा क्यों था कि इतनी सारी खुशामद के बीच रहने के बाद भी वह बालक विकृत या संस्कारित नहीं हुआ? वह एक 'दंभमय व्यक्तित्व' बन सकता था। उस बालक के प्रति यह जिज्ञासा तीव्र होने के बावजूद भी बिल्कुल व्यक्तिगत नहीं थी। शायद उन्हें उम्मीद थी कि वास्तविक कहानी का लिखित दस्तावेज़ संभवतः उस व्यक्ति के होने की घटना के बारे में कुछ उद्घाटित कर सके जिसमें उनकी भी समान रूप से अवैयक्तिक रुचि थी। इसे लिखने में वह और अधिक मददगार नहीं हो सकते थे और दुख की बात तो यह थी कि उन्हें अपने आरंभिक जीवन के बारे में कुछ याद नहीं था सिवाय उसके जो शिवा राव और अन्य लोगों से उन्होंने सुन रखा था।

1970 में 'के' की एक पुस्तक प्रकाशित हुई जिसका नाम था द अर्जेन्सी ऑव चेंज। इसमें एलन नॉडे ने गहराई से जांच-पड़ताल करने वाले प्रश्नों को 'के' के समक्ष रखा था और उन्होंने उनके उत्तर दिए थे। यह सब मालिबू में हुआ। एलन हाथ से प्रश्न और उत्तरों को लिख लेते थे फिर टेप रिकॉर्डर के सामने बोल देते थे और शाम को पुनः 'के' को पढ़कर सुना देते थे ताकि कहीं सुधार करना हो तो किया जा सके। इसलिए इस पुस्तक की कीमत उन संपादित वार्ताओं की पुस्तकों से कहीं ज़्यादा है, जिन्हें 'के' ने कभी संशोधित नहीं किया अथवा देखा तक नहीं। इस पुस्तक में एक परिच्छेद है जिसमें 'के' ने अपने एक सबसे अधिक पुनरावर्तित विषय को उठाया है और जो समझ में आ सकने वाले सबसे कठिन विषयों में से एक है, और यह है—विचार का अंत :

> प्रश्नकर्ता : पता नहीं विचार का अंत करने से आपका वास्तव में क्या अभिप्राय है। मैंने अपने एक मित्र से इस बारे में बात की और उसने कहा कि यह एक तरह की पूर्वी बकवास है। उसके लिए विचार अनिवार्य है, वह प्रज्ञा और क्रिया का सर्वोच्च रूप है। उसी ने सभ्यता का निर्माण किया है और सारे संबंध उस पर आधारित हैं। हम सब इसे स्वीकार करते हैं...जब हम विचार नहीं कर रहे होते हैं तो सोते हैं, निष्क्रिय जीवन जीते हैं या दिवास्वप्न देखते हैं; हम खाली, निरुत्साह और अनुत्पादक होते हैं, और जब हम जाग्रत होते हैं तो सोचते हैं, कार्य करते हैं, जीते हैं, लड़ते हैं—केवल इन्हीं दो अवस्थाओं को हम जानते हैं। आप कहते हैं दोनों से परे हो जाइए, विचार से भी और खाली निष्क्रियता से भी। आपका इससे क्या तात्पर्य है?
>
> कृष्णमूर्ति : बहुत सरलता से कहा जाए तो विचार स्मृति का, अतीत का प्रत्युत्तर है। जब विचार क्रिया करता है तो यह अतीत है जो स्मृति, अनुभव, ज्ञान और अवसर के रूप में क्रिया करता है। जब विचार कार्य कर रहा है तो यह अतीत है जो क्रियाशील है और इसलिए यहां कुछ भी नया नहीं है, यह तो अतीत का ही वर्तमान में रहना है, स्वयं में और वर्तमान में कुछ फेर-बदल करते हुए। तो इस प्रकार के जीवन में कुछ भी नया नहीं है और नये की संभावना के लिए अतीत का हटना ज़रूरी है और साथ में यह भी आवश्यक है कि मन में विचार, भय, सुख

> और तमाम अन्य चीज़ों का कोलाहल न हो। केवल तभी जब मन कोलाहलमुक्त है कुछ नया, नूतन अस्तित्व में आ सकता है। यही कारण है कि हम कहते हैं कि विचार को ख़ामोश होना चाहिए, जब आवश्यक हो उसे तभी कार्य करना चाहिए, और वह भी वस्तुनिष्ठ ढंग से और कुशलतापूर्वक। जितनी भी निरंतरता है वह विचार है—निरंतरता के साथ नया कुछ भी नहीं है। क्या आप देख पा रहे हैं कि यह कितना महत्त्वपूर्ण है? यह प्रश्न वास्तव में जीवन से एकदम जुड़ा है। या तो आप अतीत में जीते हैं अथवा पूर्णतया भिन्न रूप से—यही सारा मुद्दा है।

अपनी 'नोटबुक' में 'के' ने लिखा है : 'एक पवित्रता है जो न तो विचार से पैदा हुई है, न विचार द्वारा पुनर्जीवित किसी भावना से। इसे न तो विचार द्वारा जाना जा सकता है और न इस्तेमाल किया जा सकता है। विचार इसे सूत्रबद्ध नहीं कर सकता। अतः एक ऐसी पवित्रता है जो प्रतीक या शब्द से अछूती है। यह संप्रेषणीय नहीं है।' विचार के अंत जैसी अवधारणा के साथ सबसे बड़ी कठिनाई यही है कि इसे सिवाय विचार के किसी और माध्यम से संप्रेषित नहीं किया जा सकता।

आगे जाकर 'के' ने यह भी कहा—'विचार दूषित करता है' तथा 'विचार विकृति है'। ऐसे बेबाक वक्तव्य बिना किसी व्याख्या के अबोधगम्य हैं। विचार विकृत है क्योंकि यह 'टूटा हुआ' और 'खंडित' है। यह निश्चित है कि वह मनोवैज्ञानिक विचार की ही बात कर रहे थे। सारे व्यवहारजन्य प्रयोजनों के लिए जिस प्रकार स्मृति आवश्यक है, उसी प्रकार विचार भी।

द अर्जेंसी ऑव चेंज में 'के' ने एक प्रश्न के उत्तर में सेक्स के प्रति अपना दृष्टिकोण भी व्यक्त किया। प्रश्न था : "क्या विचार-निर्मित इच्छा के बिना सेक्स संभव है?" :

> आपको अपने-आप से इसकी छानबीन करनी पड़ेगी। सेक्स की हमारे जीवन में असाधारण रूप से महत्त्वपूर्ण भूमिका है क्योंकि संभवतः मात्र यही एक गहरा और प्रत्यक्ष अनुभव होता है जिसे हम पाते हैं। बौद्धिक और भावनात्मक रूप से हम अनुकरण, अनुसरण, आज्ञापालन यही सब कर सकते हैं। हमारे जितने भी संबंध हैं उनमें पीड़ा और संघर्ष है, लेकिन सेक्स ही एक ऐसी क्रिया है जिसमें यह सब नहीं है। चूंकि यह क्रिया इतनी विशिष्ट और ख़ूबसूरत है, हम इसके आदी हो जाते हैं और परिणामस्वरूप यह क्रिया एक बंधन बन जाती है। यह बंधन है उस क्रिया की निरंतरता की मांग और यह पुनः उसी केंद्र ('मैं') की क्रिया है जो कि विभाजक है। मनुष्य ने अपने चारों तरफ ऐसा घेरा बना लिया है, बौद्धिकता का, परिवार का, समुदाय का, सामाजिक नैतिकता और धार्मिक विधि-विधान का, कि उसके पास बस यही एक संबंध बचा है जिसमें स्वतंत्रता और प्रगाढ़ता है। इसलिए हम इसे बहुत अधिक महत्त्व देने लगे हैं। लेकिन यदि हर स्तर पर स्वतंत्रता होती तो यह इतनी बड़ी तृष्णा या समस्या नहीं बनती। हम इसे एक समस्या बना लेते हैं क्योंकि हमें यह भरपूर हासिल नहीं है, अथवा इसे पा लेने पर हम दोषी महसूस करते हैं, अथवा इसे पाने में हम समाज द्वारा बनाए गए कानूनों को तोड़ते हैं।

> पुराना समाज नये समाज को उन्मुक्त कहकर पुकारता है क्योंकि नये समाज के लिए सेक्स जीवन का हिस्सा है। अनुकरण, सत्ता, अनुपालन और धार्मिक आदेशों के बंधन से चित्त को मुक्त करने में सेक्स की अपनी भूमिका है लेकिन यही सब कुछ नहीं है। इससे हम यह समझ सकते हैं कि प्रेम के लिए स्वतंत्रता आवश्यक है। लेकिन यह स्वतंत्रता न तो विद्रोह की स्वतंत्रता है, न मनचाहे काम करने की अथवा खुले में या गुप्त रूप से अपनी लालसाओं को तृप्त करने की, बल्कि यह ऐसी स्वतंत्रता है जो केंद्र ('मैं') के इस पूरे ढांचे और प्रकृति को समझ लेने पर आती है। तब स्वतंत्रता ही प्रेम है।[54]

1971 की सर्दियों में भारत न जाने का 'के' ने फैसला किया, इसलिए नहीं कि भारत और पाकिस्तान के बीच युद्ध की आशंका थी बल्कि इसलिए कि उनका शरीर अत्यंत थका हुआ था—जैसा कि उन्होंने मेरी ज़िंबलिस्ट को बताया कि 'ऊर्जा से फट पड़ रहे' अपने मस्तिष्क के साथ हो पाने के लिए उन्हें एक अवसर की ज़रूरत थी। अतः उन्होंने 20 नवंबर से अगले कुछ हफ्तों तक मालिबू में मेरी के घर पर पूर्णतया विश्राम किया। वह सिनेमा गए, तट पर टहले, टेलीविज़न देखा और जासूसी उपन्यास पढ़े। लेकिन हमेशा की तरह जब वह शांति से विश्राम करते तो उनके सिर की हालत खराब होती। प्रायः रात में ध्यान की तीव्रता के कारण वह घंटों जगे रहते और कई बार वह 'विशिष्ट आनंद' की अनुभूति के साथ सोकर उठते और उन्हें कमरा 'महान पवित्र विभूतियों' से भरा प्रतीत होता। स्पष्ट था कि 'प्रॉसेस' अपनी मंद गति से चल ही रहा था पर वह शरीर से बाहर नहीं जा रहे थे। उन्हें महसूस हुआ कि उनके मस्तिष्क के विस्तार के लिए कुछ क्रिया चल रही है क्योंकि उन्होंने 'अपने मस्तिष्क में एक अद्‌भुत प्रकाश प्रज्वलित' होते देखा। इस सबके बावजूद उन्होंने घोषणा की कि इतना आराम उन्होंने युद्ध के बाद से कभी महसूस नहीं किया। यद्यपि उनकी देह इतनी संवेदनशील हो गई थी कि एक शाम को जब टेलीविज़न खुला हुआ था और वह 'दूर' जा चुके थे, और जब मेरी ने उन्हें पुकारा तो उन्हें ऐसा आघात लगा कि वह कांपने लगे और इस आघात का असर उन्होंने सारी रात महसूस किया।[*] ये ध्यान इतने तीव्र थे कि उन्हें घंटों जगाकर रखते थे और ये तब तक चलते रहे जब तक कि वह मई 1972 में न्यूयॉर्क वार्ताएं देने नहीं चले गये।

इसी साल भारत से 'के' की पहली किताब प्रकाशित हुई : ट्रेडिशन एंड रेवलूशन। ओरियंट लौंगमैन से प्रकाशित इस किताब का संपादन किया था पुपुल जयकर और सुनंदा पटवर्धन ने। सन् 1970-71 के दौरान नई दिल्ली, मद्रास, ऋषि वैली और बंबई में छोटे समूहों के साथ हुए तीस परिसंवाद इसमें संकलित थे। इन समूहों में कलाकार, राजनीतिज्ञ, संन्यासी और पंडित शामिल थे, जिनसे 'के' सन् 1947 से अपनी भारत की यात्राओं के दौरान मिलते रहे थे। यद्यपि इन परिसंवादों में कुछ नया नहीं कहा गया था फिर भी भारतीय शब्दों की एक पारिभाषिक सूची दे देने से इसकी शैली में नवीनता और ताजगीयुक्त भिन्नता थी। इसमें एक विशेष रूप से स्मरणीय परिच्छेद यह है : "दुख का सामना करने का केवल एक रास्ता है। पलायन के जिन रास्तों से हमारा परिचय है वे

वस्तुतः दुख की विशालता से बचने के उपाय हैं। दुख से बचने का एकमात्र तरीका है किसी भी प्रतिरोध से रहित हो जाना, बाह्य या आंतरिक रूप से दुख से परे ले जाने वाली किसी भी गति के बिना रह पाना, अर्थात, दुख से परे जाने की चाहत के बगैर पूर्णतया दुख के साथ होना।"

चूंकि 'के' भारतीय देह में पैदा हुए थे इसलिए उन्हें भारतीय मानने की प्रवृत्ति हमेशा उनके भारतीय अनुयायियों में रही थी जबकि उन्होंने स्वयं इसका विरोध किया और इस बात पर ज़ोर दिया कि वह किसी भी जाति, राष्ट्रीयता या धर्म से जुड़े नहीं हैं। भारतीय पासपोर्ट के कारण उन्हें यूरोप और अमेरिका के लिए वीज़ा प्राप्त करने में दिक्कत होती थी, लेकिन 1977 में जब उन्हें तथाकथित ग्रीन कार्ड प्राप्त हो गया जिसके ज़रिये वह बिना वीज़ा के अमेरिका जा सकते थे, तो उन्हें राहत महसूस हुई।

1973 की फरवरी में बंबई से लॉस एंजिलिस जाते समय 'के' कुछ दिनों के लिए ब्रॉकवुड रुके। उस समय मैं उनके आरंभिक जीवन का विवरण लिखने में तल्लीन थी और यह तीन खंडों वाली जीवनी का पहला खंड बनने जा रहा था। कहानी एक साथ इतनी अविश्वसनीय फिर भी किसी रूप में इतनी पवित्र थी कि इसके प्रकाशन के औचित्य को लेकर मुझमें आशंकाएं उठने लगीं। इसलिए उनसे बात करने एक दिन के लिए मैं ब्रॉकवुड गई। वहां दोपहर के खाने के बाद 'वेस्ट विंग' की लम्बी-चौड़ी बैठक में मैं उनसे अकेले में मिली—इंग्लैंड में जब वह होते थे तो यही हिस्सा उनका घर होता था। (हमेशा की तरह उन्होंने लकड़ी की कुर्सी पर बैठना पसंद किया और कुर्सी सोफे के समीप खींच लाए जिस पर मैं बैठी थी।) मैंने अपनी शंकाएं उनके सामने रखीं। उन्होंने तुरंत उत्तर दिया, 'क्या तुम इस कमरे में इसे महसूस नहीं करतीं? यही तुम्हारा समाधान होगा।' मेरे अंदर ज़रा भी अतींद्रिय-संवेदना नहीं रही है लेकिन कमरे में मैंने हलका-सा कंपन ज़रूर महसूस किया जो आसानी से कल्पनाप्रसूत भी हो सकता था। स्पष्ट रूप से वह इसे अपने से बाहर से आता हुआ महसूस कर रहे थे, और इसका अनुमोदन भी। "यह क्या चीज़ है?" मैंने पूछा, "यह शक्ति? आपके पीछे कौन-सी शक्ति है? मुझे पता है कि आपको यह हमेशा महसूस होता रहा है कि आपकी सुरक्षा की जा रही है लेकिन वह क्या है अथवा कौन है जो आपकी सुरक्षा कर रहा है?" "यह वहां है, जैसे कि पर्दे के पीछे हो", अपनी बांह पीछे की ओर फैलाते उन्होंने इस तरह उत्तर दिया मानो किसी अदृश्य पर्दे को स्पर्श करना चाहते हों, "मैं इसे हटा सकता हूँ पर मुझे नहीं लगता कि यह मेरा काम है।"

दोपहर बाद जब मैं वहां से चली तो 'के' विश्राम के लिए अपने कमरे में जा चुके थे और बाहर मेरी बेटी, जो लंदन से मुझे यहां तक लाई थी, गाड़ी में अधीरता से मेरा इंतज़ार कर रही थी। स्कूल में लोगों से अलविदा कहने के बाद मुझे अपना कोट लेने पुनः 'वेस्ट विंग' जाना पड़ा। उस समय मैं बहुत जल्दी में थी और दिमाग में कोई विचार नहीं था लेकिन जैसे ही मैं बैठक के खुले दरवाज़े से गुजरी, एक बहुत बड़ी शक्ति ने जैसे मुझे अपनी लपेट में ले लिया जिसकी प्रबलता प्रचंड थी। क्या यह मेरी विरोधी थी? एक चीज़

मैं निश्चित रूप से जानती हूँ कि यह काल्पनिक या किसी तरह के आत्मसुझाव से निर्मित नहीं थी। मैं इस नतीजे पर पहुंची कि यह व्यक्तिगत रूप से विरोधी नहीं थी। यह कुछ ऐसा था, जैसा कि मैंने अनुमान लगाया, जैसे कि किसी प्रोपेलर से आती तेज़ घूमती हवा में फंस जाना। क्या यही वह स्रोत, वह ऊर्जा थी जो 'के' से होकर प्रायः गुजरती रहती थी? मुझे उस समय यह नहीं पता था कि यही प्रश्न उनसे ओहाय में पिछले वर्ष अमेरिकी फाउंडेशन के ट्रस्टियों के एक समूह ने पूछा था जिनमें अर्ना लिलीफेल्ट और उनके पति थियोडोर सबसे प्रमुख थे; वास्तव में अर्ना के बिना अमेरिकी फाउंडेशन शायद ही आरंभ हो पाता। 'के' ने उस अवसर पर स्वयं को अन्य पुरुष में रखते हुए कहा था :

> सबसे पहली बात यह है कि हम ऐसी चीज़ की छानबीन में जा रहे हैं जिसमें 'के' कभी नहीं गया है। उसने यह कभी नहीं कहा कि 'मैं कौन हूँ?' मुझे लगता है कि हम किसी ऐसी चीज़ की खोज में जा रहे हैं जिसे चेतन मन कभी नहीं समझ सकता; लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि मैं इसे एक रहस्य बना रहा हूँ। कुछ है अवश्य। वह इतना विशाल है कि उसे शब्दों में नहीं रखा जा सकता। एक तरह से कहें तो एक अथाह भंडार है जिसे यदि मानव मस्तिष्क छू लेता है तो उससे कुछ ऐसा उद्घाटित होगा जिसे कोई भी बौद्धिक मिथकशास्त्र, खोज, मत-सिद्धांत कभी नहीं उद्घाटित कर सकते हैं। मैं इसे रहस्य नहीं बना रहा हूँ—ऐसा करना मूर्खतापूर्ण, बचकानी हरकत, एक बहुत ही निकृष्ट कार्य होगा क्योंकि इसका अर्थ होगा लोगों का शोषण करना। कोई व्यक्ति या तो तभी किसी चीज़ को रहस्य बनाता है जब वह वस्तुतः नहीं होती, अथवा रहस्य वास्तव में होता है जिस तक आपको असाधारण कोमलता और संकोच के साथ पहुंचना होता है; जबकि चेतन मन वैसा नहीं कर सकता। वह तो है। वह है, पर उस तक आप पहुंच नहीं सकते, उसे आप आमंत्रित नहीं कर सकते। उसे क्रमशः हासिल नहीं किया जा सकता। कुछ है, पर मस्तिष्क उसे नहीं समझ सकता।

'के' को तब अत्यधिक रोष हुआ जब इसी बैठक में यह सुझाया गया कि वह एक माध्यम भी हो सकते हैं। "निश्चय ही मैं माध्यम नहीं हूँ—यह बिलकुल स्पष्ट है। यह (व्याख्या) बहुत ही बचकानी और अपरिपक्व होगी।" उनसे पूछा गया कि क्या उनको आभास था कि उनका उपयोग किया जा रहा है? "नहीं। यह पेट्रोल पंप के समान होगा जिसका अन्य लोग इस्तेमाल करते हैं।" अपनी बारी आने पर उन्होंने पूछा : "क्या बिन मेरे बुलाए, मस्तिष्क में कुछ चलता रहता है—जैसे ओहाय तथा अन्य जगह के तमाम अनुभव? उदाहरण के लिए, मैं सुबह साढ़े तीन बजे उठा और पाया कि ऊर्जा का असाधारण बोध हो रहा है, ऊर्जा का जैसे विस्फोट हो रहा है, महान सौंदर्य है, तमाम तरह की चीज़ें घटित हो रही हैं। जब देह बहुत अधिक थकी नहीं होती तो इस प्रकार का अनुभव सारे समय चलता रहता है।"[55]

इस दौरान 'के' ने अधिक विस्तार से अपने इस रात्रि जागरण का वर्णन मेरी ज़िंबलिस्ट से किया। मेरी ने इसे लिख लिया और एक पत्र में मुझे भेज दिया : "एक

असाधारण शक्ति के बोध के साथ मैं तीन बजे उठा—चित्त में ज्वाला प्रदीप्त थी। कोई द्रष्टा मौजूद नहीं था। इसका परखना बाहर से हो रहा था पर द्रष्टा था ही नहीं। केवल उसी की मौजूदगी थी, और कुछ नहीं। वह शक्ति पूरे वजूद में समा गई थी। मैं बैठ गया और वह तीन घंटे तक रही।" उन्होंने मेरी को बताया कि एक नूतन और विराट ऊर्जा के बोध के साथ वह अक्सर जाग जाते हैं। कुछ सालों बाद उन्होंने मेरी से एक अन्य अनुभव लिख लेने के लिए कहा जिससे वह गुज़रे। यह भी मुझे एक पत्र में भेज दिया गया :

> आसन* आरंभ करने से पहले वह ('के') सामान्यतः शांतिपूर्वक, बिना कुछ सोचे चुपचाप बैठ जाते हैं। लेकिन आज प्रातः एक विचित्र बात घटित हुई, बहुत ही अनपेक्षित ढंग से और बिन बुलाए—वैसे भी यह कुछ ऐसा है जिसे आप बुला नहीं सकते। एकाएक वह उपस्थित हो गई, मानो उनके मस्तिष्क, सिर के बीचोंबीच, उसके बिलकुल भीतर। वहां विराट आकाश था जिसमें अकल्पनीय ऊर्जा थी। वह वहां बस थी—पर कुछ भी अंकित नहीं हुआ क्योंकि जो चीज़ अंकित होती है वह ऊर्जा को बरबाद करती है। यदि उसे इस तरह कहा जा सके तो वह विशुद्ध ऊर्जा की निस्सीम अवस्था थी, ऐसा आकाश था जिसमें निस्सीमता के बोध के सिवा कुछ नहीं था। मालूम नहीं कि वह कितने समय तक रही पर पूरे प्रातःकाल वह थी और जब यह लिखा जा रहा है तो वह इस तरह उपस्थित है जैसे वह अपनी जड़ें जमाकर मज़बूत हो रही हो। ये शब्द स्वयं वह चीज़ नहीं हैं।

अपने भीतर प्रवेश कर रही जिस ऊर्जा का 'के' वर्णन करते हैं उसका अध्ययन सावधानीपूर्वक उस वक्तव्य को ध्यान में रखकर करना चाहिए जिसकी टेपरिकॉर्डिंग उन्होंने अपनी मृत्यु से कुछ समय पहले ही करवाई थी। इस संदर्भ में वह उनका अंतिम वक्तव्य था।

---

* मेरी की डायरी के उद्धरण

* शुरू में 'के' ने बी. के. एस. अय्यंगार से योगासन की शिक्षा ली थी लेकिन 1965 के बाद कई वर्षों तक अय्यंगार के भतीजे टी. के. बी. देसिकाचार ने 'वसंत विहार' और शले टान्नेग में उन्हें योगासन सिखाया। योगाभ्यास वह केवल शारीरिक व्यायाम की दृष्टि से करते थे।

15

भविष्य इसी क्षण है

सन् 1973 में 'के' की दो और किताबें प्रकाशित हुईं। यद्यपि इस समय तक उनकी किताबों की समीक्षाएं पत्र-पत्रिकाओं में आना बिलकुल बंद हो गई थीं फिर भी उनकी बिक्री लगातार अच्छी होती रही। इन किताबों की समीक्षा करने की कठिनाई को समझा जा सकता है, फिर भी 'के' के लिए अनजान एक समीक्षक जॉन स्टुअर्ट कॉलिस ने इस चुनौती को तब स्वीकार कर लिया जब उन्होंने मार्च 1973 में संडे टेलीग्राफ में पहली छोटी पुस्तक बियोंड वायलंस ('हिंसा से परे') की समीक्षा की :

> स्फूर्तिदायक होने के लिए ताज़ा, नूतन होना आवश्यक है। कला के क्षेत्र तक में यह काफी हद तक दुर्लभ है। और धार्मिक-दार्शनिक व नीति-विषयक विचारों के क्षेत्र में तो यह शायद ही कभी देखने को मिले। जे. कृष्णमूर्ति हमेशा तरो-ताज़ा हैं, हमेशा आश्चर्यजनक। मुझे नहीं लगता कि कभी उनके मुंह से कोई रूढ़ोक्ति निकली हो।
>
> वह मुश्किल भी बहुत हैं। इसलिए नहीं कि वह किन्हीं भारी-भरकम शब्दों का इस्तेमाल करते हों बल्कि इसलिए कि वह 'विश्वासों' में यकीन नहीं करते। जो वाद और शास्त्र पर भरोसा करते हैं उनके लिए यह भयानक होगा। वह 'धर्म' में, इस शब्द का जो मौलिक अर्थ है उसमें, विश्वास करते हैं, न कि धर्मों या विचारों के किसी तंत्र में।
>
> पुस्तक का उप-शीर्षक है : 'सान्ता मोनिका, सैन डिएगो, लंदन, ब्रॉकवुड पार्क और रोम में हुई वार्ताओं और परिचर्चाओं की प्रामाणिक प्रस्तुति।' कृष्णमूर्ति पहले बोलते हैं फिर प्रश्नों के उत्तर देते हैं। ये प्रश्न तो साधारण होते हैं लेकिन उत्तर कभी साधारण नहीं होते। एक प्रश्न : "सभी चीज़ों की एकता में विश्वास क्या उतना ही मानवीय नहीं है जितना कि उन सारी चीज़ों के विभाजन में विश्वास?"
>
> उत्तर : "मानव की एकता में आप क्यों विश्वास करना चाहते हैं?—जबकि तथ्य यह है कि हम एक नहीं हैं। आप किसी ऐसी चीज़ में क्यों विश्वास करना चाहते हैं जो अवास्तविक है? यह सारा मुद्दा विश्वास का है। ज़रा सोचिए : आपके पास अपने विश्वास हैं और दूसरे के पास उसके अपने, और उस विश्वास के लिए

आप आपस में लड़ रहे हैं, मर रहे हैं।"

एक प्रश्न और लीजिए : "अतींद्रिय अनुभव हमें कब होने चाहिए?"

"कभी नहीं। आपको पता है कि अतींद्रिय अनुभव होने का क्या अर्थ है? इसके लिए आपको असाधारण रूप से परिपक्व, संवेदनशील और प्रबुद्ध होना होगा, और यदि आप ऐसे हैं तो आप कोई अतींद्रिय अनुभव चाहेंगे ही नहीं।"

"यह किताब मुख्य रूप से स्वयं के परिवर्तन से संबंधित है जिससे कि हर तरफ फैली हिंसा से परे जाया जा सके :

"हिंसा से परे जाने का अभिप्राय है मनुष्य ने जो कुछ भी एक-दूसरे के समक्ष रखा है, अर्थात विश्वास, सिद्धांत, कर्मकांड, मेरा देश, तुम्हारा देश, तुम्हारा भगवान, मेरा भगवान, मेरा मत, तुम्हारा मत, उन सबसे मुक्ति।"

इस मुक्ति को कैसे हासिल किया जाए? मुझे अत्यंत खेद है कि कृष्णमूर्ति के संदेश को एक साफ-सुथरे सीधे वाक्य में बयान नहीं किया जा सकता। इसके लिए उन्हें पढ़ना होगा। उनको पढ़ने की क्रिया ही पाठक में परिवर्तन का कार्य करती है। एक संकेत है—सोचने के स्थान पर 'अवधान' को, 'अवलोकन' की क्षमता को जगह दें।

उनकी दूसरी पुस्तक द अवेकनिंग ऑव इंटेलिजेंस काफी बड़ी थी। संपादन जॉर्ज एवं कॉर्नेलिया विंगफील्ड-डिग्बी का था और मार्क एडवर्ड्स द्वारा लिये गए उसमें 'के' के सत्रह फोटोग्राफ थे। सन् 1930 के दशक की शुरुआत से लेकर अगले तीस वर्षों तक 'के' अपना कोई भी फोटो लिये जाने से इंकार करते रहे थे। सन् 1968 में जब इस संबंध में उनका रुख नरम पड़ा तो संयोग से उसी समय आर्ट स्कूल से निकले एक युवा फोटोग्राफर, मार्क एडवर्ड्स, ने उनकी फोटोग्राफी की अनुमति मांगी। तब से मार्क ने तीसरी दुनिया की तस्वीरें उतारने में ख्याति अर्जित की है और कृष्णमूर्ति फाउंडेशन के लिए बड़ी मात्रा में फोटोग्राफी का कार्य किया है। (बाद में सेसिल बीटन और ओटावा के कार्श ने 'के' की फोटोग्राफी की।)

इस पुस्तक में उनके तमाम लोगों के साथ साक्षात्कार हैं, जैसे सैन फ्रैंसिस्को स्टेट कॉलेज के दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर जेकब नीडलमन के साथ, स्वामी वेंकटेशानंद के साथ और एलन नॉडे के साथ। इसमें एक बातचीत उनकी प्रोफेसर डेविड बोह्म के साथ है। उस समय वे लंदन यूनिवर्सिटी के बर्कबेक कॉलेज में सैद्धांतिक भौतिकी के प्रोफेसर थे तथा 1940 के दशक में प्रिंस्टन में आइन्स्टाइन के मित्र रह चुके थे। एक पुस्तकालय में संयोग से द फर्स्ट एंड लास्ट फ्रीडम किताब देखने पर उनकी दिलचस्पी कृष्णमूर्ति में जगी थी। 1961 में विंबल्डन में 'के' को सुनने के बाद वह अक्सर सानेन और ब्रॉकवुड पार्क आते रहे। क्वांटम थ्योरी पर उन्होंने कई किताबें लिखीं और 1980 में उनकी होलनेस एंड द इंप्लीकेट ऑर्डर प्रकाशित हुई जिसमें उन्होंने जीवन की समग्रता के बारे में कृष्णमूर्ति की शिक्षा के सदृश भौतिकी के एक क्रांतिकारी सिद्धांत को प्रतिपादित किया।

प्रोफेसर नीडलमन के साथ अपनी पहली बातचीत में 'के' ने सभी धार्मिक

संस्कारबद्धताओं से मुक्त होने की आवश्यकता पर बल दिया : “जितने भी वचन, अनुभव, और रहस्यात्मक दावे हैं उन सबको अलग हटा देना होगा। मुझे लगता है कि हमें इस तरह शुरू करना होगा जैसे कि हम कुछ भी नहीं जानते।” नीडलमन ने बीच में टोका, “यह तो बहुत ही कठिन है।” ‘के’ ने जवाब दिया, “नहीं, श्रीमान, मुझे नहीं लगता कि यह कठिन है। यह उसी के लिए कठिन है जिसने खुद को दूसरों के ज्ञान से भरा हुआ है।” बाद की चर्चा में ‘के’ ने कहा, “मैं कोई भी धार्मिक, दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक किताबें नहीं पढ़ता। हम अपने भीतर बहुत गहराई तक जा सकते हैं और हर चीज़ का पता लगा सकते हैं।” ‘के’ की शिक्षा का यही मूलतत्त्व है कि हम अपने अंदर जीवन के समूचे बोध को पा सकते हैं, क्योंकि, जैसा कि उन्होंने एलन नॉडे के साथ अपनी बातचीत में कहा : “यह संसार मैं हूँ—मैं ही संसार हूँ; मेरी चेतना संसार की चेतना है, और संसार की चेतना मैं हूँ। इसलिए जब मनुष्य में व्यवस्था आती है तो संसार में व्यवस्था आती है।”

स्वामी वेंकटेशानंद के साथ अपनी बातचीत में ‘के’ ने गुरुओं के प्रति अपने रुख को स्पष्ट किया। स्वामी जी का प्रश्न था : “आपकी दृष्टि में गुरु की क्या भूमिका है, उपदेशक की या जगाने वाले की?” ‘के’ का उत्तर था : “श्रीमान, यदि आप गुरु शब्द का प्रयोग इसके मूल पुरातन अर्थ में कर रहे हैं, अर्थात अंधकार और अज्ञान को हटाने वाला, तब क्या कोई दूसरा—चाहे वह कोई भी हो, प्रबुद्ध हो या मूर्ख—हमारे भीतर के अंधकार को मिटाने में सचमुच मदद कर सकता है?” इस पर स्वामी ने पूछा, “पर कृष्णजी, क्या आप यह स्वीकार करेंगे कि इशारा करने की आवश्यकता थी?” ‘के’ का जवाब था : “बिलकुल, निश्चय ही। मैं इशारा करता हूँ। यह काम मैं अवश्य करता हूँ। हम सभी यह करते हैं। सड़क पर मैं किसी आदमी से पूछता हूँ—‘सानेन की तरफ जाने का कौन-सा रास्ता है, कृपया आप मुझे बताएंगे?’, और वह मुझे बता देता है; पर मैं वहां खड़े रहकर समय बर्बाद नहीं करता और न श्रद्धा प्रकट करते हुए यह कहता हूँ—‘हे भगवान, आप तो महानतम पुरुष हैं।’ यह सब बहुत बचकाना है।”

‘के’ और डेविड बोह्म के बीच वार्ताओं का सिलसिला बीच-बीच में अंतरालों के साथ कई वर्षों तक चला। इन संवादों के बाद ‘के’ समय के साथ-साथ विचार के अंत पर अधिक-से-अधिक बल देने लगे। इन चर्चाओं को लेकर वह खासे उत्साहित व रोमांचित थे, उन्हें लग रहा था कि धार्मिक एवं वैज्ञानिक चिंतन के बीच एक मार्ग खुल गया है। उनकी शिक्षा को समझने का यह तरीका अंतःप्रज्ञा पर आधारित होने के बजाय बौद्धिक अधिक था। डेविड बोह्म किसी शब्द के मूल अर्थ को सामने लाकर चर्चा का आरंभ पसंद करते थे ताकि उस शब्द द्वारा संप्रेषित चीज़ को समझने में मदद मिले। ‘के’ स्वयं आगे चलकर अपनी वार्ताओं में इस तरीके को प्रायः अपनाने लगे। पर इससे वह चीज़ सुबोधगम्य हो जाए, ऐसा नहीं हुआ, बल्कि एक बार तो कुछ भ्रांति भी पैदा हो गई। ‘के’ को बोह्म ने एक बार बताया कि रिऐलिटी (वास्तविकता) शब्द की उत्पत्ति ‘रेस’ से हुई है जिसका अर्थ है एक वस्तु, एक तथ्य, जबकि इसके पहले ‘के’ इस शब्द का प्रयोग प्रायः परम सत्ता या सत्य के लिए करते आए थे; पर बोह्म के साथ बातचीत के बाद वह तथ्य

या वास्तविकता के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग करने लगे; जैसे कुर्सी एक वास्तविकता है जिस पर हम बैठते हैं, कलम एक वास्तविकता है जिससे हम लिखते हैं, कपड़ा एक तथ्य है जिसे हम पहनते हैं और दांत का दर्द भी एक वास्तविकता है जिसे हम महसूस करते हैं। उदाहरण के लिए अंग्रेज़ी भाषा का कम्युनिकेट (संप्रेषित करना) शब्द लेटिन भाषा के जिस शब्द से आया है उसका अर्थ है 'साझा करना' या 'सामान्य करना'। किंतु यह जानकारी उस अकथनीय को संप्रेषित करने में 'के' की मदद नहीं कर पाई, जिसका वह हमेशा प्रयास करते रहे थे। इसके बावजूद बहुत सारे लोगों ने 'के' के इस नये बौद्धिक ढंग के प्रति पहले की तुलना में अधिक रुचि दिखाई। पहले उनमें काव्यमय रहस्यवाद की कुछ झलक मिलती थी और वह प्रकृति का चित्रण कुछ इस प्रकार करते हुए दिखते थे : "सांझ का सूरज नयी घास पर चमक रहा था तथा हर पत्ती में भव्यता थी। वसंत की पत्तियां सिर के बस ऊपर ही थीं; वे इतनी कोमल थीं कि उनको स्पर्श करने पर भी आप उन्हें महसूस नहीं कर पाते।"

'के' के अनुरोध पर ब्रॉकवुड और ओहाय में डेविड बोह्म ने वैज्ञानिकों और मनोवैज्ञानिकों के कई सम्मेलन आयोजित किये। उधर डॉ. डेविड शेनबर्ग ने न्यूयॉर्क में मनोवैज्ञानिकों के सेमिनार आयोजित किए जिनमें 'के' ने हिस्सा लिया। कुल मिलाकर ये सम्मेलन निराशाजनक रहे। वास्तव में 'के' की रुचि यह जानने में नहीं थी कि वैज्ञानिक और दार्शनिक लोग किन मनोवैज्ञानिक मतों व निष्कर्षों पर पहुंचे हुए हैं। उन्हें पसंद आ रही थी अन्य मस्तिष्कों द्वारा दी जाने वाली चुनौती ताकि वह अपने भीतर और गहरे पैठ सकें, जबकि स्वाभाविक था कि अन्य लोगों की रुचि अपने-अपने पेपरों को पढ़ने में थी। पर इसके साथ ही उस समय दुनिया-भर में जो भी वैज्ञानिक खोजें चल रही थीं उन सबकी जानकारी 'के' ने उत्सुकतापूर्वक हासिल की। इस प्रकार औषधि क्षेत्र के नोबेल पुरस्कार विजेता प्रो. मॉरिस विल्किन्स से उन्हें आनुवंशिक इंजीनियरिंग के संबंध में जितना कुछ संभव था उतना सीखने को मिला। प्रो. विल्किन्स ने ब्रॉकवुड पार्क के दो सम्मेलनों में हिस्सा लिया। इसके अलावा, आगे चलकर 'के' की जिज्ञासा कम्प्यूटर के बारे में सीखने की हुई और उन्होंने पुपुल जयकर के भतीजे असित चाँदमल से—जो कि भारत के मशहूर टाटा ग्रुप के साथ कम्प्यूटरों पर काम कर चुके थे—इस बारे में सीखा। इसी प्रकार पहले भी 'के' ने इंटरनल कंबश्चन इंजन तथा इसी प्रकार की अन्य यांत्रिक रचनाओं जैसे घड़ी, कैमरा आदि के बारे में सारा कुछ जानना चाहा था। एक दिन ब्रॉकवुड में किसी ने मार्क एडवर्ड्स से फोटोग्राफी के बारे में एक तकनीकी प्रश्न पूछा। 'के' भी वहीं बैठे हुए थे और यह देखकर मार्क को बड़ी हैरानी हुई कि उन्होंने तुरंत उस प्रश्न का सही और सटीक जवाब दे दिया।

'के' के बारे में एक अद्भुत बात यह थी कि वह एक समान निश्चिंतता से सभी से गंभीरतापूर्वक बात करते थे, चाहे वह स्वामी हो, बौद्ध भिक्षु हो, पश्चिमी वैज्ञानिक हो, करोड़पति उद्योगपति हो, प्रधानमंत्री हो या कोई महारानी। हालांकि स्वभाव से वह शर्मीले व संकोची थे, बहुत कम किताबें उन्होंने पढ़ी थीं और कोई बौद्धिक दावा नहीं, फिर भी

सार्वजनिक रूप से विश्व के महानतम वैज्ञानिकों, दार्शनिकों एवं धार्मिक गुरुओं के साथ गूढ़-से-गूढ़ मनोवैज्ञानिक समस्याओं पर बातचीत करते हुए उन्हें कोई भय या संकोच नहीं होता था। मेरी दृष्टि में यह कुछ इस प्रकार था कि अन्य लोग तो उस अज्ञात के सिद्धांतों पर व्याख्यान देते या तर्क प्रस्तुत करते, पर 'के' उसे इतनी स्पष्टता से देखते जैसे कि यह उनका ख़ुद का हाथ हो।

1973 के जून महीने में ब्रॉकवुड में तीनों फाउंडेशन के प्रतिनिधियों की एक अंतरराष्ट्रीय बैठक हुई। ऐसा पहली बार हो रहा था। 'के' की चिंता उन समस्याओं के बारे में थी जो उनकी मृत्यु के बाद तथा मौजूदा ट्रस्टियों की मृत्यु के बाद खड़ी हो सकती थीं। भविष्य के बारे में उनका दृष्टिकोण पहले की अपेक्षा पूर्णतया बदल चुका था। अगस्त, 1968 में एपिंग फॉरेस्ट में सैर करते हुए जब मेरे पति ने उनसे पूछा था कि उनकी मृत्यु के बाद उनके नये इंग्लिश फाउंडेशन का क्या होगा, तो उनका बड़ा बेफिक्र जवाब था : "यह सब मिट जाएगा।" उनकी शिक्षाएं रहेंगी, पुस्तकें और कैसेट रहेंगे; बाकी सब कुछ चला जा सकता है।

इस अंतरराष्ट्रीय बैठक में जब उन्हें यह सुझाया गया कि वह कुछ युवा लोगों को चुन लें जो शिक्षाओं को आगे ले जा सकें तो उनका जवाब था : "अधिकांश युवा लोग मेरे और अपने बीच एक ढाल बनाकर बात करते हैं। युवा लोगों की तलाश करना फाउंडेशन की ज़िम्मेदारी है। मेरी तुलना में आपके लिए यह करना आसान होगा, क्योंकि लोग मेरे प्रेम में पड़ जाते हैं, मेरे चेहरे के प्रेम में, व्यक्तिगत रूप से वे मेरी तरफ आकर्षित हो जाते हैं, या आध्यात्मिक रूप से आगे बढ़ने की चाह के कारण...पर इन विद्यालयों को निश्चित रूप से आगे चलते जाना है क्योंकि हो सकता है कि ये विद्यालय एक भिन्न प्रकार के मनुष्य को जन्म दे सकें।"[56]

एक भिन्न प्रकार के मनुष्य का निर्माण करना ही कृष्णमूर्ति की शिक्षा का उद्देश्य था। उस साल की सानेन गैदरिंग में उनका मुख्य विषय था कि कैसे 'एक मूलभूत, क्रांतिकारी, मनोवैज्ञानिक परिवर्तन' मन में लाया जाए। इसके अलावा उन्होंने अब यह कहना शुरू कर दिया था कि परिवर्तन तत्क्षण ही होना ज़रूरी है। यह कहना व्यर्थ होगा कि 'मैं बदलने की कोशिश करूंगा' अथवा 'मैं कल बदल जाऊंगा', क्योंकि आज आप जो हैं वही कल भी होंगे। 'भविष्य इसी क्षण है' उक्ति उनके प्रयोग का हिस्सा बन रही थी।

सानेन के बाद 'के' वार्षिक सम्मेलन में हिस्सा लेने के लिए ब्रॉकवुड लौट आए। ब्रॉकवुड में यह वार्षिक सम्मेलन पिछले चार वर्षों से हो रहा था। अक्टूबर में भारत जाने तक वे वहां टिके रहे। अब 'के' जब भी ब्रॉकवुड में होते तो प्रायः सप्ताह में एक बार मेरी ज़िंबलिस्ट के साथ लंदन जाते—कभी दांत के डॉक्टर के पास और कभी बांड स्ट्रीट में 'ट्रूफिट एंड हिल' हेयर-कटिंग सेलून में। पर वे अपने दर्जी 'हंट्समन' के यहां जाना कभी नहीं भूलते—अक्सर उन्हें कोई पतलून ठीक करवानी होती, या किसी सूट को फिटिंग के लिए पता नहीं कितनी बार देना होता जो कभी भी उनके मापदंड की कसौटी पर पूरी तरह खरा नहीं उतरता। नया सूट वह शायद ही सिलवाते थे। उस दुकान के माहौल को

शायद वह पसंद करते थे, इसलिए वहां से जल्दी जाने का नाम नहीं लेते और काउंटर पर पड़े कपड़ों के ढेर का पूरे ध्यान से निरीक्षण करते। वे लोग जब कभी लंदन आते तो मैं उनके साथ 'फोर्टनम एंड मेसन' की चौथी मंज़िल पर स्थित रेस्टोरेंट में लंच करने के लिए जाती। बरलिंग्टन आर्केड होकर सेविल रो से यहां पैदल सैर करते हुए थोड़ी ही देर में पहुंचा जा सकता था। यह रेस्टोरेंट हैचर्ड्स नाम की किताब की दुकान की बगल में था जहां से 'के' अपराधकथाओं के पेपरबैक संस्करण खरीदकर अपने संग्रह को नया करते रहते थे। इस रेस्टोरेंट में शाकाहारी व्यंजनों की सूची बहुत छोटी थी पर जगह शांत और फैली हुई थी; मेज़ों के बीच की दूरी इतनी थी कि एक की बातचीत दूसरे तक न पहुंचे। 'के' अपने चारों तरफ बैठे लोगों को बड़े ध्यान से देखते कि वे क्या पहने हैं, क्या खा रहे हैं और कैसे खा रहे हैं, और कैसे पेश आ रहे हैं। एक बार कोई मॉडल सभी मेज़ों का चक्कर लगाती हुई जा रही थी। 'के' मुझको और मेरी को कोहनी से छूकर इशारा करते हुए कहते : "देखो, देखो! वह चाहती है कि हम उसे देखें।"...पर हमसे अधिक उनकी इस बात में दिलचस्पी काफी ज़्यादा होती कि वह क्या पहने हुए है। कपड़ों में वह हमेशा बहुत अधिक दिलचस्पी लेते थे, केवल अपने कपड़ों में ही नहीं बल्कि औरों के भी। कभी-कभी मैं अपनी हीरे की अंगूठी उन्हें पहनने के लिए देती। इस अंगूठी को वह अच्छी तरह पहचानते थे, क्योंकि मेरी मां इसे हमेशा पहना करती थीं। इसे वह अपनी छोटी उंगली में पहन लिया करते थे। रेस्टोरेंट से निकलते समय जब वह अंगूठी को वापस करते तो वह इस तरह चमका करती थी जैसे अभी-अभी जौहरी ने उसकी सफाई की हो। यह कोई कल्पना नहीं होती थी। एक दिन इसी तरह लंच करने के बाद जब मैं अपनी नातिन से मिली तो उसने कहा—"आपकी अंगूठी कितनी ख़ूबसूरत लग रही है। क्या इसे अभी साफ करवाया है?"

1970 के दशक में 'के' के एक मित्र ने उनका वर्णन इस प्रकार किया :-

> उनसे जब कोई मिलता है तो उनमें क्या पाता है? सच में, सर्वाधिक ऊंचे दर्जे की श्रेष्ठता, शक्तिसंपन्नता, शालीनता और गरिमा। उनमें आप उत्कृष्ट कोटि की सौजन्यता पाएंगे, अत्यंत परिष्कृत सौंदर्यबोध और अपार संवेदनशीलता पाएंगे, तथा जो भी समस्या आप उनके पास लेकर जाएंगे उसमें उनकी एक तीक्ष्ण अंतर्दृष्टि आपको नज़र आएगी। कृष्णमूर्ति में कहीं भी आपको फूहड़ता, तुच्छता या सामान्य क्षुद्रता का रत्तीभर अवशेष नहीं मिलेगा। कोई उनकी शिक्षा को समझे या न समझे, कोई उनके बोलने के लहज़े या शब्दों में शायद कुछ दोष निकाल भी ले, पर यह बात तो कल्पना से परे है कि कोई भी उस श्रेष्ठता और शालीनता से इन्कार कर पाए जो उनके व्यक्तित्व से होकर बहती है। शायद यह कहना गलत न होगा कि उनका ढंग, उनका दर्जा साधारण व्यक्ति से काफी ऊपर और बहुत ही परे का रहा।
>
> ज़रा भी शक नहीं कि ये शब्द उनको संकोच में डाल देंगे। पर सच्चाई को आप कहां तक छुपाएंगे। उनका पहनावा, आचरण, व्यवहार, उनका उठना-बैठना और

> उनकी बोली उत्कृष्ट रूप से वैभवशाली है। जब भी वह किसी कमरे में प्रवेश करते हैं, तो वहां कुछ बहुत ही असाधारण घटित होता है।

'के' की अच्छे कपड़ों और कारों में रुचि देखकर, पलायनवादी उपन्यासों और फिल्मों में उनकी दिलचस्पी देखकर कुछ लोगों को उनमें किसी तरह की विसंगति नज़र आई। 'के' को यह सूझा ही नहीं कि इतनी छोटी-छोटी बातों में या तो वह अपने रुझान को बदल लें या ऐसा दिखाएं कि उनकी इन रुचियों के अलग ही मायने हैं।

एक दिन शरदकाल में जब वह लंदन में थे तो मैंने उनको सुझाया कि उन्हें फिर से दैनंदिनी ('जर्नल') लिखना शुरू करना चाहिए जैसा कि उन्होंने 1961 में किया। उन्हें यह विचार इतना पसंद आया कि उसी दोपहर को वह कुछ कापियां और चौड़ी निब वाला एक नया फाउंटेन पेन खरीद लाए और अगले दिन (14 सितंबर) सुबह से ही लिखना आरंभ कर दिया। छः हफ्तों तक वे रोज़ाना लिखते रहे। ज़्यादातर हिस्सा उन्होंने ब्रॉकवुड में लिखा और अक्टूबर में रोम जाने पर भी उन्होंने इसे जारी रखा। उनका यह दैनिक लेखन 1982 के आरंभ में कृष्णमूर्तीज़ जर्नल के नाम से प्रकाशित हुआ। इस किताब में 'के' जितना व्यक्तिगत रूप से सामने आते हैं, उतना और किसी किताब में नहीं। स्वयं का अन्य पुरुष के रूप में वर्णन करते हुए 15 सितंबर को उन्होंने लिखा : "उसे कुछ ही दिन पहले यह एहसास हुआ कि इन लंबी सैरों पर जाते वक्त उसके भीतर एक भी विचार नहीं चलता है...जब वह बालक था तभी से ऐसा है, कोई भी विचार उसके मन में प्रवेश नहीं करते थे। वह बस देखता था, सुनता था, और कुछ भी नहीं। विचार अपने तमाम साहचर्य के साथ उसमें उठते ही नहीं थे। किसी तरह की छवियों, प्रतिमाओं का निर्माण ही नहीं होता था। एक दिन उसे अचानक ही आभास हुआ कि यह कितना अद्‌भुत था; उसने अक्सर सोचने का प्रयास भी किया पर कोई विचार नहीं उठा। इन लंबी सैरों में, चाहे लोग साथ में हों या न हों, विचार की कोई गतिविधि मौजूद नहीं रहती है। यह एकाकी होना है।" 17 तारीख को उन्होंने लिखा : "उसे हमेशा वृक्षों, नदियों, पर्वतों के साथ एक अजीब सी एकात्मकता का बोध होता था। यह बोध जानबूझकर लाया नहीं गया था, आप ऐसी किसी चीज़ का संवर्धन नहीं कर सकते हैं। उसके और किसी अन्य के मध्य कभी कोई दीवार नहीं रही। उसको इस बात से कभी कोई आघात नहीं पहुंचा कि उन लोगों ने उसके साथ क्या किया, उसको क्या कहा, और न ही किसी प्रकार की खुशामद का उस पर असर हुआ। वह पता नहीं कैसे इस सबसे पूरी तरह अछूता रहा। उसने स्वयं को अलग-थलग नहीं रखा बल्कि वह नदी के प्रवाह के समान रहा। उसे विचार भी कितने थोड़े आते थे, सैर के समय तो बिलकुल ही नहीं।" 21 तारीख को उन्होंने लिखा : "पता नहीं कितना कुछ उसके साथ हुआ, प्रशंसा और अपमान, संकट और सुरक्षा, पर वह किसी बात से आहत नहीं हुआ। ऐसा नहीं कि वह संवेदनहीन और अबोध था, बल्कि उसके मन में अपने बारे में कोई छवि नहीं थी, कोई निष्कर्ष और सिद्धांत नहीं था। छवि प्रतिरोध है और जब यह नहीं होती तो सुकोमलता होती है पर कोई घाव नहीं होता।"

दो दिन बाद उन्होंने लिखा :

नदी के निचले तट पर वह अकेला खड़ा था... कोई भी आसपास नहीं, एकाकी, असंलग्न और सुदूर। वह लगभग चौदह साल या इससे कम का रहा होगा। उसे और उसके भाई को अभी हाल ही में खोजा गया था; सारा तामझाम उसके चारों तरफ था और उसे एकाएक इतनी अहमियत दे दी गई थी। आदर व श्रद्धा का वह केंद्र था। आने वाले सालों में उसे तमाम संस्थाओं और विशाल संपत्तियों का प्रमुख बनना था। यह सारा कुछ और इस सबको भंग किया जाना अभी काफी दूर था। उन दिनों और घटनाओं की बस यही एक स्मृति शेष है : वहां अकेले खड़े हुए, खोए से और आश्चर्यजनक रूप से विलग। अपना बचपन, विद्यालय और पिटाई, उसे कुछ भी याद नहीं है। बाद में उसी अध्यापक ने जो उसकी पिटाई किया करता था, उसको बताया कि कोई भी दिन ऐसा नहीं जाता था जब वह छड़ी से उसकी पिटाई नहीं करता हो। वह रोता था और स्कूल खत्म होने तक उसे बाहर बरामदे में खड़ा कर दिया जाता था। और जब तक अध्यापक बाहर निकलकर उसे घर जाने के लिए नहीं कहते, वह वहां से हिलता ही नहीं था। उसी आदमी ने बताया कि उसे इसलिए मार पड़ती थी कि जो कुछ भी वह पढ़ता या उसे बताया जाता, वह कुछ भी याद नहीं रख पाता था। अध्यापक को यह विश्वास ही नहीं हो रहा था कि यह वही लड़का है जिसकी वार्ता को उन्होंने अभी सुना था; उन्हें बेहद आश्चर्य हुआ था और वह अनावश्यक रूप से सम्मान प्रकट करने लगे। वे सारे वर्ष बीत गए उसके मन पर बिना कोई चिह्न और स्मृति छोड़े; उसकी मित्रताएं, उसका स्नेह और वे सारे वर्ष जब उसके साथ बुरा बर्ताव हुआ—मित्रतापूर्ण या क्रूरतापूर्ण, कैसी भी घटनाओं का उसके मन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अभी कुछ साल पहले जब किसी लेखक ने उससे पूछा कि क्या वह उन विचित्र घटनाओं को याद कर सकता है और जब उसने यह जवाब दिया कि उसे कुछ भी याद नहीं है और वह केवल उन्हीं बातों को दोहरा सकता है जो उसने दूसरे लोगों से सुनी हैं, तो उस व्यक्ति ने उपहासपूर्ण ढंग से कहा कि वह दिखावा कर रहा है, ढोंग कर रहा है। सुखद या दुखद किसी भी घटना को सचेत होकर उसने कभी अपने मन में आने से नहीं रोका। वे आयीं और बिना कोई चिह्न अंकित किये चली गयीं।

16

मृत्यु के साथ संवाद

पिछले कुछ वर्षों से 'के' जब मद्रास आते तो 'वसंत विहार' में नहीं ठहर पाते थे। कारण था कि राजगोपाल इसे 'कृष्णमूर्ति राइटिंग्स' की संपत्ति होने का दावा कर रहा था। अतः 'के' 'वसंत विहार' के पास ही ग्रीनवेज रोड पर रहने वाली एक भारतीय महिला के यहां ठहरते थे। (1975 में 'वसंत विहार' भारतीय फाउंडेशन को सौंपा गया।) उनको अब माधवाचारी से किनारा करना पड़ा जो कि राजगोपाल का दायां हाथ था। 'के' को यह पता लग गया था कि माधवाचारी की निष्ठा अभी भी राजगोपाल के साथ थी। 1973-74 की सर्दियों में एक भारतीय डॉक्टर ने 'के' के साथ भारत में यात्रा करना शुरू कर दिया। यह थे डॉ. टी. के. परचुरे जो बनारस में राजघाट स्कूल के हॉस्पिटल में चिकित्सक थे। ऋषि वैली स्कूल के प्रमुख रसोइये परमेश्वरन भी इसी प्रकार भारत में 'के' के साथ यात्रा करते थे। यह वही परमेश्वरन थे जिन्होंने 1959 में कश्मीर में 'के' की तब सेवा-शुश्रूषा की थी जब वह मरते-मरते बचे थे। राजघाट का यह हॉस्पिटल आसपास के बीस गांवों को निःशुल्क चिकित्सा सुविधा प्रदान करता है। यहां एक फार्म और कृषि विद्यालय भी है। महिलाओं के लिए एक कॉलेज और रहने के लिए होस्टल भी है। सात से अठारह साल की आयु के लगभग 300 लड़के-लड़कियों के लिए यहां एक आवासीय विद्यालय है।

ऋषि वैली भी मात्र स्कूल तक सीमित नहीं है। यहां भी एक ग्रामीण केंद्र है जहां आसपास के गांवों के सत्तर बच्चों को निःशुल्क शिक्षा एवं चिकित्सा सुविधाएं दी जाती हैं। उस वर्ष ऋषि वैली के शिक्षकों से बातचीत करते हुए 'के' से एक प्रश्न पूछा गया : "क्या पीड़ा मन को सुस्त, जड़ नहीं बना देती है?" इस प्रश्न के उत्तर में 'के' ने जो कहा उसे बाद में पढ़ा तो बात दिल की गहराई तक उतर गई। "मुझे ऐसा लगता है कि पीड़ा की निरंतरता मन को सुस्त, जड़ बनाती है, न कि पीड़ा का आघात...यदि आप पीड़ा का तुरंत समाधान नहीं कर लेते तो यह निश्चित तौर पर मन को जड़ बना देगी।"

'द स्कूल' के नाम से मद्रास में एक को-एड्यूकेशनल स्कूल अभी शुरू किया गया था जिसमें तीन से बारह वर्ष तक के 112 बच्चों की शिक्षा का इंतज़ाम था।

'के' अब ओहाय में एक स्कूल आरम्भ करने के लिए अत्यंत व्यग्र थे। वह 'कृष्णमूर्ति

राइटिंग्स' के साथ समझौता होने तक प्रतीक्षा नहीं करना चाहते थे। एक आर्किटेक्ट से सलाह-मश्वरा करने के साथ-ही-साथ एक प्रिंसिपल भी चुन लिया गया। अमेरिकन फाउंडेशन के ट्रस्टियों को इससे घबराहट होना स्वाभाविक था, जिनके पास ऐसे किसी साहसिक काम को अंजाम देने के लिए न धन था, न कोई ज़मीन। पर 'के' एक बार जब ठान लेते थे, तो ऐसी किसी बात को राह में नहीं आने देते थे। खुशकिस्मती से सितंबर में केस का निपटारा हो गया और तभी एक उपयुक्त जगह की तलाश भी कर ली गई। इस बीच 'के' मेरी ज़िंबालिस्ट के साथ मई में सैन डिएगो गए जहां अलग-अलग विषयों पर उनके और डॉ. एलन डब्ल्यू. एंडर्सन के बीच अठारह संवादों का आयोजन किया गया था। डॉ. एंडर्सन सैन डिएगो स्टेट कॉलेज में धार्मिक शिक्षा के प्रोफेसर थे। इस संवाद-शृंखला की रंगीन वीडियो रिकॉर्डिंग की गई।[57] इसके आखिरी दो संवाद ध्यान के बारे में थे जिनमें 'के' ने तीन बार ज़ोर देकर कहा कि ध्यान में संपूर्ण अस्तित्व का समावेश होता है तथा ध्यान के लिए किया जाने वाला कोई भी प्रयास ध्यान का निषेध है। कुछ साल पहले दी गई एक वार्ता में उनके द्वारा किया गया ध्यान का वर्णन ऐसे सर्वाधिक सुंदर वर्णनों में से एक है :

> ध्यान जीवन की महानतम कलाओं में से एक है—संभवतः सबसे महान कला, और इसे आप शायद किसी अन्य से नहीं सीख सकते हैं। यही तो इसका सौंदर्य है। इसकी कोई तकनीक नहीं है और इसलिए यहां किसी अधिकारी सत्ता की आवश्यकता नहीं है। अपने बारे में सीखते हुए आप स्वयं को ध्यानपूर्वक देखिए कि आप कैसे चलते हैं, कैसे खाते हैं, क्या बोलते हैं, कैसे गपशप करते हैं, किस तरह घृणा और ईर्ष्या करते हैं। अगर आप इन सबके बारे में अपने भीतर बिना कोई निर्णय लिये सजग हैं तो वही ध्यान है। अतः ध्यान कहीं भी हो सकता है, बस में बैठे हुए या प्रकाश-छायाओं से भरे जंगल में भ्रमण करते हुए, या पक्षियों का गान सुनते हुए, अथवा अपनी पत्नी या अपने बच्चे का चेहरा निहारते हुए।[58]

सैन डिएगो के तुरंत बाद 'के' सांता मोनिका में आखिरी बार बोले। एक वार्ता में उनसे पूछा गया : 'आपको सुनते हुए मुझे कुछ वक्त हो चुका है पर मुझमें कोई बदलाव नहीं आ रहा। कहां गड़बड़ी है?' 'के' ने उत्तर दिया :

> क्या ऐसा है कि आप गंभीर नहीं हैं? क्या ऐसा है कि आप कोई परवाह नहीं करते? क्या आप समस्याओं से इतना घिरे हुए हैं कि आपके पास कोई वक्त नहीं है, फुरसत का कोई क्षण नहीं है कि आप रुक कर एक फूल तक निहार सकें?... सर, आपने अपना पूरा जीवन नहीं दिया है इसके लिए। हम यहां जीवन की बात कर रहे हैं, न कि विचारों, सिद्धांतों, पद्धतियों या तकनीक की; हम यहां संपूर्ण जीवन की, जो कि आपका जीवन है, उसके ध्यानपूर्वक अवलोकन की बात कर रहे हैं।

'के' ने मेरी को बताया कि अभी उन्हें दस या पन्द्रह साल और जीना होगा क्योंकि अभी भी बहुत कुछ करना बाकी था। वे 79 वर्ष के हो गए थे। उन्होंने कहा, उनकी देह

क्षीण हो रही है हालांकि मस्तिष्क इससे 'अछूता' है। गर्मियों में शले टान्नेग पहुंचने के कुछ दिनों बाद वे एक दिन यह कहते हुए उठे, "कोई अद्‌भुत घटना उनके साथ हुई, सृष्टि को अपने भीतर लेने के लिए कोई चीज़ फैल रही थी।" उसी सुबह ओहाय के नये स्कूल के बारे में एक पत्र उन्होंने मेरी को लिखवाया : इस विद्यालय को धार्मिकता से परिपूर्ण ऐसे व्यक्तियों का सृजन करना होगा कि वे चाहे कोई भी काम करें, कहीं भी जाएं, कैसा भी व्यवसाय चुनें, पर धार्मिकता का यह गुण उनके साथ हमेशा रहे।" इस बार गश्टाड में काफी गरमी थी। सानेन गैदरिंग के समय 'के' प्रायः कहीं 'सुदूर' चले जाते थे तथा उनके सिर की हालत खराब थी। वह अब और अधिक संवेदनशील हो गए थे तथा किसी का स्पर्श भी बरदाश्त करना मुश्किल हो गया था। पर साथ ही ध्यान के अद्‌भुत अनुभव उन्हें हो रहे थे। मेरी को उन्होंने बताया, "मेरा मस्तिष्क ऐसा अनुभव कर रहा है जैसे यह धुलकर स्वच्छ व स्वस्थ बना दिया गया हो—और इससे भी बढ़कर—हर्ष और आनंदविभोरता का एक विस्मयकारी एहसास मौजूद है।"

नवंबर में 'के' दिल्ली के लिए अकेले रवाना हुए। जिस विमान में वह थे उसी में महर्षि (महेश योगी) भी सफर कर रहे थे। महर्षि हाथ में एक फूल लिये मुस्कराते हुए उनके पास बात करने के लिए आए। गुरुओं और ध्यान की पद्धतियों के प्रति 'के' के तिरस्कार ने बातचीत पर जल्दी ही विराम लगा दिया। 'के' ने बाद में हम लोगों को बताया कि वह महर्षि के जमा-खर्च की बही को देखना ज़रूर पसंद करते।

नवंबर में जब वह राजघाट में थे तो उनसे अपनी ही शिक्षा को परिभाषित करने का आग्रह किया गया। उन्होंने आश्चर्य के साथ जवाब दिया : "क्या आप मुझसे पूछ रहे हैं? क्या आप मुझसे पूछ रहे हैं कि शिक्षा क्या है? मुझे स्वयं नहीं पता। क्या मैं इसे कुछ शब्दों में बता सकता हूँ? मुझे लगता है कि गुरु और शिष्य की यह धारणा ही बुनियादी रूप से गलत है, कम-से-कम मेरे लिए तो। मुझे लगता है कि यहां बात सहभागी होने की है न कि कोई शिक्षा ग्रहण करने की।"[59]

जब मैं उनकी जीवनी का दूसरा खंड लिख रही थी तो मैं भी उनसे यही प्रश्न करना चाहती थी। इस उद्देश्य से मैंने एक छोटा-सा वक्तव्य तैयार किया जिसकी शुरुआत इस तरह हुई थी, 'कृष्णमूर्ति की शिक्षा का क्रांतिकारी सार...'। मैंने इसे उनके अनुमोदन के लिए भेज दिया। जैसी कि मुझे उम्मीद थी, उन्होंने इसे पूरा दोबारा लिखा, बस एक शब्द 'सार' ('कोर') को रहने दिया। उन्होंने जो लिखा वह यह था :

> कृष्णमूर्ति की शिक्षा का सार 1929 में दिए गए उस वक्तव्य में निहित है जब उन्होंने कहा था कि 'सत्य एक मार्गरहित भूमि है।' मनुष्य किसी भी संगठन, पंथ, धार्मिक मत, पुरोहित या कर्मकांड के माध्यम से, या किसी दार्शनिक ज्ञान और मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के द्वारा उस तक नहीं पहुंच सकता है। सत्य को खोजने के लिए संबंधों के दर्पण में देखना होगा, अपने ही मन की वस्तुओं को समझना होगा, उनका अवलोकन करना होगा। बौद्धिक विश्लेषण या आत्मविश्लेषण पर आधारित चीरफाड़ से सत्य कभी हासिल नहीं होगा। धार्मिक, राजनीतिक और

व्यक्तिगत सुरक्षा के तौर पर मनुष्य ने अपने भीतर छवियों, प्रतिमाओं का निर्माण किया है। ये छवियां प्रतीकों, विचारों एवं धारणाओं के रूप में व्यक्त होती हैं। इन सबके बोझ तले मनुष्य की सोच, मनुष्य के रिश्ते और उसका दैनिक जीवन दबा रहता है। हमारी समस्याओं के मूल में यही है क्योंकि इन्हीं की वजह से मनुष्य हर संबंध में बंटा हुआ है। जीवन के बारे में उसकी समझ उन धारणाओं से निर्धारित होती है जो उसके मन में पहले से ही जड़ें जमाए बैठी हैं। उसकी चेतना की अंतर्वस्तु ही यह चेतना है। यह अंतर्वस्तु समस्त मानवता में एक समान है। नाम, रूप और अपने वातावरण से ग्रहण की गयी सतही संस्कृति ही उसकी वैयक्तिकता है। व्यक्ति का अनूठापन सतही चीज़ों में नहीं है बल्कि चेतना की इस अंतर्वस्तु से पूर्णतया मुक्त होने में है।

मुक्ति प्रतिक्रिया नहीं है और न ही वह कोई चुनाव है। मनुष्य यह दिखावा करता है कि वह स्वतंत्र है क्योंकि वह चुनाव कर सकता है। मुक्ति तो ऐसा विशुद्ध अवलोकन है जहां कोई दिशा नहीं है, दंड और पुरस्कार का भय नहीं है। मुक्ति में कोई ध्येय नहीं है; मनुष्य के विकासक्रम के आखिरी चरण में आने वाली यह चीज़ नहीं है, बल्कि यह पहले चरण में ही है। अवलोकन से यह पता लगना आरम्भ होता है कि हम मुक्त नहीं हैं। हमारे दैनिक जीवन की निर्विकल्प, चुनावरहित सजगता में ही मुक्ति मिलती है।

विचार समय है। विचार का जन्म होता है अनुभव से, जानकारी से, जो समय से अभिन्न हैं। समय मनुष्य का मनोवैज्ञानिक शत्रु है। हमारे कर्म जानकारी पर और इस प्रकार समय पर आधारित होते हैं, इसलिए मनुष्य सदा अतीत का दास बना रहता है।

व्यक्ति जब अपनी चेतना की गतिविधि के प्रति सजग होता है तो उसे विचारक और विचार, अवलोकनकर्ता और अवलोकन के विषय, अनुभवकर्ता और अनुभव के बीच के विभाजन का पता चलेगा। उसे यह पता चलेगा कि ऐसा विभाजन एक भ्रांति है। इसके पश्चात ही विशुद्ध अवलोकन संभव होगा जो कि अंतर्दृष्टि है, जहां अतीत की कोई छाया नहीं है। यह समयातीत अंतर्दृष्टि मन में एक गहन, बुनियादी परिवर्तन लाती है।

पूर्ण निषेध ही सत्य का सार है। उन सभी वस्तुओं का निषेध होने पर ही जो कि प्रेम नहीं हैं—जैसे कामना, सुख—प्रेम अपनी करुणा और प्रज्ञा के साथ अस्तित्व में आता है।

किसी संक्षिप्त वक्तव्य से यह बड़ा ही था लेकिन क्या इसे और संक्षेप में, और स्पष्टता से शब्दांकित किया जा सकता था? शायद इसमें उन्होंने छवि निर्माण की बात पर उतना बल नहीं दिया है। हम सभी अपने और दूसरों के बारे में छवियां बनाते हैं और ये छवियां ही आपस में मिलती हैं, प्रतिक्रियाएं करती हैं और आहत होती हैं। मनुष्यों के बीच वास्तविक संबंध में, निकट से निकट संबंधों में भी, ये छवियां अवरोध पैदा करती हैं।

फरवरी 1975 में भारत से मालिबू वापस आने पर 'के' मेरी ज़िंबलिस्ट के साथ एक दिन के लिए आर्य विहार और पाइन कॉटेज देखने गए। मुकदमे के बाद ये दोनों संपत्तियां अमेरिकन फाउंडेशन की हो गयी थीं। ओकग्रोव के नज़दीक जहां पर स्कूल बनाया जाना था उस जगह को भी उन्होंने लिलीफेल्ट दम्पति के साथ देखा। दो सप्ताह बाद जब 'के' पाइन कॉटेज में वापस लौटे तो उन्हें महसूस हुआ कि वहां का वातावरण बदल चुका है। इसके पहले यहां आने पर उन्हें विकर्षण महसूस हुआ था। एक अप्रैल को उन्होंने फिर उस जर्नल को लिखना आरंभ किया जिसे उन्होंने ब्रॉकवुड में 1973 में शुरू किया था। तीन हफ्ते तक वह उसमें रोज़ाना लिखते रहे। 12 अप्रैल को, एक खूबसूरत दिन जब कोई बादल नहीं थे, उन्होंने ओकग्रोव में अपनी चार वार्ताओं की शृंखला की पहली वार्ता दी। यहां वह अक्टूबर 1966 से नहीं बोले थे।

मई में जब वह मेरी के साथ फिर ब्रॉकवुड आए तो मैं उनकी जीवनी के प्रथम खंड की अग्रिम प्रति उन्हें दिखाने के लिए ले गयी। ऑर्डर ऑव द स्टार के विलय होने तक की घटनाओं का वर्णन इस जीवनी में था। स्वभावतः पहले उन्होंने चित्रों पर दृष्टि डाली। नित्या की तस्वीरों पर उनकी देर तक निगाह गड़ी रही। फिर वह लगातार मुझसे पूछते रहे कि किसी बिलकुल अनजान व्यक्ति को यह किताब कैसी लगेगी; एक सामान्य शेयर दलाल इसके बारे में क्या सोचेगा? मैं केवल इतना ही जवाब दे पायी कि मैंने यह कल्पना ही नहीं की कि एक सामान्य शेयर दलाल इस पुस्तक को पढ़ेगा। हालांकि समीक्षाओं को देखकर ऐसा लगा कि इस विचित्र कथा ने ऐसे बहुत सारे लोगों को आकर्षित किया जिनसे कोई उम्मीद ही नहीं की जा सकती थी कि वे इसमें ज़रा भी दिलचस्पी दिखाएंगे। इसके अलावा मुझे लिखे गये कई पत्रों से यह पता लगा कि पुस्तक ने 'के' को समझने की दिशा में बहुत लोगों की मदद की। हालांकि ऐसे कुछ लोगों को इससे बड़ा आघात पहुंचा जिन्हें 'के' की थियोसोफिकल पृष्ठभूमि का कोई अंदाज़ा नहीं था। मेरी ज़िंबलिस्ट ने जीवनी को पढ़ने के बाद 'के' से पूछा कि अगर मास्टर थे तो वे उस समय ही क्यों बोला करते थे, अभी क्यों नहीं? 'के' का जवाब था : जब 'लॉर्ड' स्वयं यहां पर हैं तो उन सबकी कोई आवश्यकता नहीं है। उन्होंने यह उत्तर गंभीरतापूर्वक दिया था या नहीं, यह तभी जाना जा सकता था जब हम उनके बोलने के लहज़े को सुन पाते।

11 या 12 मई, सन् 1975 को 'के' अस्सी साल के हो गए थे। 11 को डॉ. परचुरे ब्रॉकवुड पहुंचे। 'के' के स्वास्थ्य की देखरेख करने के लिए उन्हें यूरोप में कई हफ्ते गुज़ारने थे। मई के मध्य में डेविड बोह्म वहां पहुंचे और 'के' के साथ उनकी चार परिचर्चाएं हुईं। इन्हें मिलाकर बोह्म और 'के' के बीच कुल बारह परिचर्चाओं की शृंखला तैयार होती है। बोह्म ने हाल ही में उस जीवनी को पढ़ा था। उन्होंने 'के' से प्रश्न किया कि क्या उनके लिए बदलाव का कोई क्षण विशेष रहा था। 'के' ने कहा, नहीं; 'प्रॉसेस' की शारीरिक पीड़ा ने उनको और संवेदनशील बना दिया था और इसी तरह उनके भाई की मृत्यु की पीड़ा ने भी, लेकिन इस सबका पूर्ण रूप से सामना करने के बाद उनके भीतर कोई चिह्न नहीं छूटा।

उस साल सानेन गैदरिंग में 'के' ने अपनी एक वार्ता को एक ऐसे विषय पर केंद्रित किया जिसे उन्होंने एक बहुत ही गम्भीर विषय बतलाया। यह विषय था : क्या मनोवैज्ञानिक भय से पूर्ण मुक्ति हो सकती है? उन्होंने संकेत किया : "भय से मुक्त होने के लिए समय से मुक्त होना आवश्यक है। यदि समय न रहे तो भय भी न रहेगा। क्या आप इसे देख पा रहे हैं? यदि आने वाला कल न रहे, मात्र अभी, यह क्षण रहे, तो विचार की गतिविधि के रूप में रहने वाला भय समाप्त हो जाता है।" सुरक्षा की कामना से भय पैदा होता है। "यदि पूर्ण मनोवैज्ञानिक सुरक्षा हो तो भय नहीं रहेगा। किन्तु यह मनोवैज्ञानिक सुरक्षा तब तक नहीं हो सकती जब तक हम कुछ चाह रहे हैं, मांग रहे हैं, किसी चीज़ के पीछे लगे हैं, कुछ बनना चाह रहे हैं।" वह आगे बोलते गये :

> ...विचार सदा ऐसी जगह की तलाश में लगा है जहां वह शरण ले सके, कुछ पकड़ कर रख सके। खंडित होने के कारण विचार जो कुछ सृजित करता है वह पूर्ण असुरक्षा ही होती है। इसीलिए आत्यंतिक रूप से कुछ भी न होने में ही पूर्ण सुरक्षा है—इसका आशय है कि विचार एक भी चीज़ नहीं रच रहा है। नितांत कुछ भी न होने का तात्पर्य है जो कुछ भी आपने सीखा है उसका पूर्णतया निषेध...आपको पता है कुछ भी न होने का क्या तात्पर्य है? किसी महत्त्वाकांक्षा का न होना—जिसका अर्थ यह भी नहीं है कि आप बस यूं ही पड़े रहें—किसी आक्रामकता, प्रतिरोध का न होना, आघात से उत्पन्न हुए अवरोधों का न होना...विचार द्वारा खड़ी की गयी सुरक्षा सुरक्षा है ही नहीं। यह एक अटल सत्य है।

इस बार सर्दियों में 'के' का भारत जाना नहीं हुआ। इसकी वजह श्रीमती गांधी द्वारा जून में आपातकाल की घोषणा थी। इस दौरान सरकार की अनुमति के बिना न कुछ छापा जा सकता था और न ही सार्वजनिक रूप से बोला जा सकता था। किसी भी किस्म की अधिसत्ता और निरंकुशता को त्यागने की बात न कहना 'के' के लिए नामुमकिन था; भारत जाने का कोई मतलब ही नहीं था यदि उन्हें बोलने नहीं दिया जाए और बोलने पर जेल में डाले जाने की पूरी संभावना हो। इसलिए ब्रॉकवुड के बाद वह मालिबू लौट आए। वहां वह प्रत्येक सप्ताहान्त पाइन कॉटेज में बिताते, आरम्भ होने वाले ओकग्रोव स्कूल को लेकर अभिभावकों एवं शिक्षकों से बात करते।

अगले वर्ष की सर्दियों में भी आपातकाल लागू था, किन्तु श्रीमती गांधी के बहुत करीब रहीं पुपुल जयकर के इस आश्वासन के बाद कि वह अपनी वार्ताओं में जो कुछ बोलना चाहेंगे उन्हें बोलने दिया जाएगा, 'के' ने भारत जाना तय कर लिया। नयी दिल्ली में वह पुपुल के घर ठहरे। पुपुल का घर उसी सड़क पर था जहां श्रीमती गांधी का आवास था। उनके वहां पहुंचने के कुछ ही समय बाद उनकी एक लम्बी निजी बातचीत श्रीमती गांधी के साथ हुई। श्रीमती गांधी द्वारा 1977 में आम चुनाव कराने की अप्रत्याशित घोषणा के साथ क्या इस बातचीत का कुछ सम्बन्ध था, यह सोचे बिना नहीं रहा जा सकता। 'के' ने स्वयं इस बात की सम्भावना से इनकार नहीं किया।

'के' के सुझाव पर कृष्णमूर्ति फाउंडेशन के प्रतिनिधियों का मार्च 1977 में ओहाय में

मिलना तय हुआ। वह चाहते थे कि जितना ज़्यादा मुमकिन हो वे लोग अब उनके साथ वक्त बिताएं। वह ख़ास तौर पर चाहते थे कि अमेरिका और यूरोप के जो प्रतिनिधि कभी भारत नहीं गए हैं वे भविष्य में भारत में उनके साथ रहें। उनको यह भरोसा था कि जितना लोग एक-दूसरे से मिलेंगे उतना ही वे करीब आएंगे और उनमें प्रेम बढ़ेगा। ईर्ष्या और स्पर्धा जैसी भावनाएं उनके लिए इतनी बाहर की चीज़ें थीं कि उन्हें औरों में ये चीज़ें दिखलाई ही नहीं पड़ती थीं। ओहाय में ट्रस्टियों की एक बैठक में उन्होंने कहा : "यदि कोई आए और आपसे पूछे कि इस आदमी के साथ रहना कैसा था तो क्या आप उसे बता पाएंगे? बुद्ध का कोई शिष्य आज अगर जीवित होता तो क्या आप धरती के दूसरे छोर तक उससे मिलने नहीं जा पहुंचते, यह पता लगाने के लिए कि बुद्ध के सान्निध्य में होने का क्या मतलब था?" बुद्ध और उनके शिष्यों का उदाहरण देकर स्वयं को बुद्ध से जोड़ने का यह पहला सबसे अंतरंग प्रसंग था, हालांकि 'के' से अनजान किसी व्यक्ति को यह समझा पाना बड़ा मुश्किल होगा कि इस तुलना में आत्म-महत्त्व लेशमात्र भी नहीं था। अहं की अनुपस्थिति में आत्म-छलावा संभव ही नहीं है। जब उन्होंने इस आदमी का ज़िक्र किया तो यह उनका अपना व्यक्तित्व नहीं था। इसके बावजूद, उनके उन वक्तव्यों से इस बात का कैसे तालमेल बैठाया जा सकता है कि उनकी मृत्यु के बाद किसी को भी उनका प्रतिनिधि बनने का अधिकार नहीं होगा तथा गुरु-शिष्य का रिश्ता घृणास्पद है? क्या यह बिलकुल सरल बात नहीं है? ट्रस्टियों से यह अपेक्षा करके कि वे लोग उनके साथ ज़्यादा-से-ज़्यादा रहें, निश्चित ही उन्हें यह आशा रही होगी कि उनमें से कम-से-कम एक या दो में ही सही अन्तर्बोध की वह गहराई आ जाए जिससे उनमें पूर्ण मनोवैज्ञानिक परिवर्तन घटित हो सके और वे न केवल उनसे, बल्कि सारी बैसाखियों से मुक्त हो जाएं। शिष्यों द्वारा की जाने वाली गुरु की पूजा-अर्चना से यह बिलकुल ही भिन्न चीज़ है। 'के' की तरफ से बोलने का कभी कोई अगर दावा भी करता है, तो यह जानने में देर न लगेगी कि उस व्यक्ति में कोई परिवर्तन घटित नहीं हुआ है।

अब तक यह निर्णय लिया जा चुका था कि मेरी ज़िंबलिस्ट मालिबू के अपने घर को बेचकर ओहाय में पाइन कॉटेज से जुड़ा हुआ एक घर बनाएंगी जो उनकी मृत्यु पर अमेरिकन फाउंडेशन के पास चला जाएगा। पाइन कॉटेज में रहने से 'के' ओकग्रोव स्कूल के नज़दीक भी रहेंगे, क्योंकि मालिबू का घर ओहाय से करीब साठ मील दूर था।

लॉस एंजिलिस में सीडर्स-सिनाई मेडिकल सेंटर में 9 मई को 'के' की प्रोस्टेट ग्रन्थि का ऑपरेशन हुआ। मेरी को उन्होंने पहले ही सावधान कर दिया कि वह सतर्क रहें और उनको जाने न दें, और साथ ही उन्हें भी सतर्क रहने की याद दिला दें; क्योंकि "बावन साल (तक सार्वजनिक वार्ताओं) के बाद उन्हें यह लग सकता है कि अब बहुत हुआ"। मेरी को उन्होंने बताया कि वह हमेशा जीवन और मृत्यु के बारीक फासले पर जिये हैं। जीवित रहने की अपेक्षा मृत्यु उनके लिए आसान थी। ऑपरेशन के दो हफ्ते पहले वह अपना ही कुछ खून देने अस्पताल गए; ऑपरेशन के समय खून चढ़ाने की आवश्यकता को ध्यान में रखकर ऐसा किया गया था। जनरल एनस्थीसिया (निश्चेतक दवाई) लेने से

उन्होंने मना कर दिया। उन्हें विश्वास था कि यह देह इसे बर्दाश्त नहीं कर पाएगी। यहां तक कि रीढ़ की हड्‌डी पर प्रभाव डालने वाला लोकल एनस्थीसिया भी उस देह के लिए काफी अधिक था। देह और अपने बीच पूर्ण अनासक्ति का भाव 'के' में हमेशा रहा था।

ऑपरेशन वाले दिन मेरी उनके साथ हॉस्पिटल गयीं और साथ लगे हुए कमरे में ठहरीं। दोनों कमरों में घूमकर 'के' ने दीवारों को स्पर्श किया। ऐसा वह किसी भी नये कमरे में ठहरने पर किया करते थे; ज़ाहिर है मेरी के लिए भी उन्होंने यह किया। ऐसा वह क्यों किया करते थे, कभी प्रकट नहीं हो सका। संभव है ऐसा वह शुद्धीकरण के लिए करते हों, बाहरी प्रभावों को मिटाने के लिए, जो ज़रूरी नहीं कि बुरे ही हों, तथा जगह को अपनी उपस्थिति से भरने के लिए। बेहोशी के डॉक्टर से मेरी ने बात कर ली कि ऑपरेशन के समय वह 'के' से बात करता रहे ताकि वह सतर्क रहें और 'चले' न जाएं। दो घंटे के बाद उन्हें उनके कमरे में ले आया गया। वह काफी प्रसन्न दिख रहे थे और कोई जासूसी कहानी पढ़ने के लिए मांग रहे थे। पर शाम होते-होते अत्यधिक पीड़ा ने उन्हें आ घेरा। एक शक्तिशाली दर्दनिवारक दवा उन्हें एक बच्चे की खुराक जितनी दी गयी, लेकिन चक्कर और मिचली आने के कारण दवा को जारी नहीं रखा जा सका। लगभग एक घंटे के लिए वह 'विदा' हो गए और नित्या की बात करते रहे। इसके बाद उनका, जैसा कि उन्होंने बताया, 'मृत्यु के साथ संवाद' हुआ। इस अनुभव का वर्णन उन्होंने मेरी को बोलकर लिखाया :

> यह एक छोटा ऑपरेशन था जिसका ज़िक्र करना भी ज़रूरी नहीं, लेकिन दर्द काफी था। जैसे-जैसे दर्द बढ़ता गया मैंने देखा कि देह हवा में लगभग तैर सी रही थी। यह भ्रम हो सकता है, किसी प्रकार का दृष्टिभ्रम, पर कुछ मिनट बाद मृत्यु व्यक्ति के रूप में—कोई व्यक्ति नहीं था—मूर्तिमान हो दिखाई देने लगी। देह और मृत्यु के बीच एक किस्म का संवाद हो रहा था। ऐसा लग रहा था मृत्यु देह से बहुत ही आग्रहपूर्वक बात कर रही थी और देह संकोचपूर्वक मृत्यु की मांग के आगे नहीं झुक रही थी। कमरे में लोग मौजूद थे पर यह घटना जारी रही—मृत्यु निमंत्रण दे रही थी और देह उसे ठुकरा रही थी।
>
> भय के कारण देह मृत्यु की मांग को नहीं ठुकरा रही थी, बल्कि देह को यह एहसास था कि वह अपने लिए उत्तरदायी नहीं है, क्योंकि किसी और सत्ता का उस पर अधिकार था जो मृत्यु से भी शक्तिशाली और ओजस्वी थी। मृत्यु लगातार अधिक से अधिक आग्रह कर रही थी, इसलिए अन्य को हस्तक्षेप करना पड़ा। इसके बाद वार्तालाप या संवाद देह और मृत्यु के बीच ही नहीं, बल्कि उस अन्य और मृत्यु के बीच भी होने लगा। अतः वार्तालाप में तीन लोग शामिल हो गए।
>
> हॉस्पिटल जाने से पूर्व ही उसने सावधान कर दिया था कि देह से विच्छेद की संभावना है और तब मृत्यु बीच में आ सकती है। हालांकि वह (मेरी) वहां बैठी थी और एक नर्स आ-जा रही थी, यह कोई आत्म-छलावा या किसी किस्म का मतिभ्रम नहीं था। बिस्तर में लेटे हुए उसने वर्षा से भरे बादलों को देखा, खिड़की

को चमकते देखा, नीचे मीलों तक फैले शहर को देखा। खिड़की के शीशे पर वर्षा का पानी छिटक रहा था, उसे यह स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि सलाइन घोल बूंद-बूंद कर उसके शरीर के भीतर जा रहा था। उसे बड़ी तीव्रता और स्पष्टता से यह आभास हुआ कि अगर उस अन्य ने हस्तक्षेप न किया होता तो मृत्यु विजय पा लेती।

विचार की सुस्पष्ट क्रियाशीलता के साथ यह संवाद शब्दों में शुरू हुआ था। बादल गरज रहे थे, बिजली चमक रही थी और यह वार्तालाप जारी था। चूंकि भय लेशमात्र को भी नहीं था, न देह की तरफ से और न उस अन्य की तरफ से, अतः उन्मुक्तता और गहराई से बात करना संभव हो पा रहा था। इस तरह की बातचीत को शब्दों में रख पाना हमेशा कठिन होता है। भय न होने के कारण मन को अतीत की शृंखलाओं से बांध पाना मृत्यु के लिए संभव नहीं हो पा रहा था। बातचीत का क्या परिणाम हुआ, यह बिलकुल स्पष्ट था। देह अत्यधिक पीड़ा में होने के बावजूद आशंकित या चिन्ताग्रस्त नहीं थी तथा वह अन्य विवेकपूर्वक उन दोनों के परे था। यह कुछ इस प्रकार था कि एक ख़तरनाक खेल में जिसका देह को पूरा पता नहीं था, वह अन्य अम्पायर की भूमिका निभा रहा था।

मृत्यु तो हमेशा मौजूद दिखती है किंतु उसे आमंत्रित नहीं किया जा सकता। ऐसा करना आत्महत्या है जो निहायत मूर्खतापूर्ण बात होगी।

इस संवाद में समय का कोई बोध नहीं था। लगभग एक घंटा यह संवाद चला होगा और उस दौरान घड़ी वाला समय अस्तित्व में नहीं था। शब्द अस्तित्व में नहीं थे, किंतु प्रत्येक के द्वारा जो कुछ कहा जा रहा था उसमें तत्काल अंतर्दृष्टि घटित हो रही थी। निश्चय ही अगर कोई विचार और विश्वास से, संपत्ति या किसी व्यक्ति से बंधा है, तो मृत्यु आपके पास संवाद करने के लिए नहीं आएगी। प्रत्येक चीज़ के अंत हो जाने के अर्थ में मृत्यु तो परम स्वतंत्रता है।

बातचीत का तरीका सौम्य था। उसमें किसी प्रकार की भावात्मकता का, भावुकता का अतिरेक नहीं था, दैनिक जीवन में मृत्यु के शामिल होने के बाद आने वाले समय के अंत और सीमाविहीन विराटता के परम तथ्य को वहां कतई विकृत नहीं किया जा रहा था। ऐसा भाव था कि देह कई वर्षों तक चलती जाएगी, पर मृत्यु और वह अन्य सदा साथ रहेंगे जब तक कि शरीर काम करना बन्द न कर दे। उन तीनों के बीच विनोदशीलता का जबरदस्त भाव था और हास्य को लगभग सुना जा सकता था। बादलों और वर्षा के साथ इस सबका सौंदर्य निखर रहा था। इस बातचीत की ध्वनि अन्तहीन रूप से फैलती जा रही थी और यह ध्वनि वैसी ही थी जैसे आरंभ में थी और उसका कोई अंत नहीं था। यह एक ऐसा गीत था जिसका न आरंभ था, न अंत। मृत्यु और जीवन बेहद नज़दीक, साथ-साथ हैं, उसी तरह जैसे प्रेम और मृत्यु। जिस तरह प्रेम कोई स्मृति नहीं है, मृत्यु का कोई अतीत नहीं है। इस बातचीत में कहीं भी भय का प्रवेश नहीं हुआ, क्योंकि भय अन्धकार

है और मृत्यु प्रकाश है। यह संवाद भ्रांतिजनक या काल्पनिक नहीं था। हवा में एक फुसफुसाहट की तरह यह था, लेकिन यह बिलकुल स्पष्ट था जिस पर यदि आप ध्यान देते तो सुन सकते थे; तब आप इसमें शामिल हो सकते थे, तब हम इसे एक साथ बांट सकते थे। लेकिन आप ध्यान नहीं देंगे क्योंकि आपका अपने शरीर, अपने विचार और अपने तरीके से अत्यधिक तादात्म्य है। मृत्यु के प्रकाश में, इसके प्रेम में प्रवेश करने के लिए हमें इस सबको छोड़ना ही होगा।

नवंबर में भारत रवाना होने से पहले 'के' तीन दिन के लिए मेरी के साथ बॉन के यांकर क्लीनिक गये। वहां उन्होंने डॉ. शीफ को दिखाया। कई परीक्षणों के बाद डॉक्टर ने बताया कि वह अपनी उम्र के हिसाब से बेहद स्वस्थ हैं।

इंग्लिश और अमेरिकन फाउंडेशन के कुछ ट्रस्टी भी 1978 की शुरुआत में मद्रास पहुंच गये, जहां से वे 'के' के साथ ऋषि वैली गये। ऋषि वैली स्कूल में कुछ परिवर्तन किये गए थे। डॉ. बालसुन्दरम के इस्तीफा देने के बाद जी. नारायण स्कूल के प्रिंसिपल बन गए थे। वह 'के' के सबसे बड़े भाई के सबसे बड़े बेटे थे। नारायण पच्चीस सालों से अध्यापन कर रहे थे। पहले उन्होंने ऋषि वैली में पढ़ाया था, फिर इंग्लैंड के एक रुडोल्फ स्टाइनर स्कूल में। उनकी पत्नी ब्रॉकवुड जब से शुरू हुआ था लगभग तभी से वहां की शिक्षिका थीं। नताशा उनकी एकमात्र बच्ची थी जो ब्रॉकवुड में पढ़ती थी। नारायण के साथ अपने रक्त संबंध पर 'के' ने कभी ध्यान नहीं दिया। नताशा को वह उतना ही चाहते थे जितना किसी भी प्रसन्नचित्त छोटी बच्ची को। उन्हें सभी बच्चों और ज़्यादातर युवा लोगों से प्यार था। ऋषि वैली के विद्यार्थियों को कुछ समय तक ब्रॉकवुड जाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था। अब 'के' को इसके औचित्य पर संदेह हो रहा था। पश्चिम के कुप्रभावों में पड़ जाना कितना आसान था। भारत के युवाओं में अभी भी बड़ों के लिए सम्मान था और सीखने की ललक थी; शिक्षा को यहां अभी भी सौभाग्य समझा जाता था।

'के' जब ओहाय लौटे तो पाइन कॉटेज का विस्तार पूरा हो चुका था। उन्होंने और मेरी ने वहां रहना शुरू कर दिया। मालिबू के ख़ूबसूरत घर को छोड़ना मेरी के लिए कष्टपूर्ण था, उस घर को 'के' भी याद करते थे। लेकिन मेरी ने पाइन कॉटेज को भी उतना ही ख़ूबसूरत बना दिया था। कॉटेज के उस हिस्से को, जहां 'के' का सोने का कमरा था, ज्यों-का-त्यों रखते हुए नये बने हिस्से को एक गलियारे की मार्फत जोड़ दिया था। उन दोनों को ही यह नया घर पसंद आया। बिजली की केतली की पॉलिश करने और रसोई के काउंटरों को साफ करने में 'के' को मज़ा आता था, जैसा कि वह ब्रॉकवुड के वेस्टविंग में किया करते थे। एक छोटे से नये बगीचे को तैयार करने में भी उन्होंने हिस्सा लिया। पौधों को पानी देना उन्हें हमेशा अच्छा लगता; रसोई में अपनी नाश्ते की ट्रे ले जाने तथा डिशवॉशर में बर्तनों को डालने व निकालने में वह मदद करते। उन्हें यह डर था कि मेरी ओहाय और ब्रॉकवुड दोनों जगहों में अपने को थका दे रही है। 'के' की सेक्रेटरी और शोफर का काम, सारी खरीदारी तथा उनके कपड़े धोने और इस्त्री करने का सारा काम

वह करती थी। सामान से भरी टोकरियों के साथ जब वह लौटती, तो उन्हें यह देखने की बड़ी उत्सुकता होती कि वह क्या-क्या खरीद कर लायी है। पर सफर के लिए अपनी पैकिंग करने में वह किसी को हाथ नहीं लगाने देते थे, उन्हें अपनी इस कला पर गर्व था। जिन सालों में मेरी को उनके साथ भारत नहीं जाना होता था, तब उसे कैलीफोर्निया में तीन महीने का विश्राम मिल जाता था।

जून में गश्टाड जाते वक्त वह मेरी के साथ फिर यांकर क्लीनिक गए। वहां सारे परीक्षण संतोषजनक निकले। सानेन गैदरिंग के बाद सितंबर में वह ब्रॉकवुड लौटे। वहां उन्होंने प्रत्येक पखवारे अपने स्कूलों के नाम एक एक पत्र मेरी को बोलकर लिखाना शुरू किया। मार्च 1980 तक वह प्रायः ऐसा करते रहे और कुल मिलाकर सैंतीस पत्र लिखे; प्रत्येक पत्र करीब तीन पृष्ठों का था। ज़्यादातर पत्र अलग-अलग खंडों में एक साथ लिखाए गए पर उन्हें प्रत्येक पखवारे भेजा गया; इन पत्रों पर भेजने की तारीख लिखी गयी न कि लिखने की।[60] अपने सभी विद्यालयों के संपर्क में रहने का यह एक तरीका था। अपने पहले ही पत्र में उन्होंने इन विद्यालयों के बारे में अपनी मंशा को स्पष्ट कर दिया : "इनका सरोकार समग्र मानव के विकास से है। विद्यार्थियों एवं शिक्षकों को स्वाभाविक रूप से खिलने में शिक्षा के इन केंद्रों को मदद करनी होगी।" एक अन्य पत्र में उन्होंने लिखा : "स्वकेंद्रित क्रियाकलाप से मुक्त मनुष्यों की एक नयी पीढ़ी को लाना इन विद्यालयों का उद्देश्य है। कोई भी अन्य शिक्षण केंद्र इस बात से सरोकार नहीं रखता और शिक्षक के नाते यह हमारी ज़िम्मेदारी है कि एक ऐसे मस्तिष्क का प्रादुर्भाव हो जिसके भीतर कोई द्वंद्व न हो।"

प्रत्येक अध्यापक और विद्यार्थी को इन पत्रों की एक प्रति दी जाती थी। अध्यापकों से 'के' की जो अपेक्षा थी वह अत्यंत कठिन प्रतीत होती है—यह देखना कि विद्यार्थियों में किसी भी किस्म का भय न पैदा हो (और इसके लिए ज़रूरी था कि अध्यापक स्वयं अपने भय के मूल को समझें,) तथा विद्यार्थियों की इस बात में मदद करना कि वे कभी मनोवैज्ञानिक रूप से आहत न हों, न केवल शिक्षण काल में बल्कि जीवन भर प्रतिस्पर्धा को उन्होंने सबसे बड़ी बुराइयों में माना : "विद्यालय में जब आप एक बच्चे की दूसरे बच्चे से तुलना करते हैं तो आप दोनों को बर्बाद करते हैं।"

इन पत्रों में 'के' ने बार-बार कहा कि शिक्षण कार्य सबसे ऊंचा पेशा है और ये विद्यालय मुख्य रूप से मनुष्य में गहन परिवर्तन लाने के लिए बने हैं। सीखने 'लर्निंग' और जानकारियों 'नॉलेज' को इकट्ठा करने के फर्क को उन्होंने बहुत गहराई से इंगित किया; जानकारियों का संग्रह मन को सिर्फ मंद बनाता है ऐसा उन्होंने बताया : "कुछ जान लेना जानना नहीं है और इस तथ्य का बोध ही कि जानकारी से मानव की कोई समस्या हल नहीं हो सकती प्रज्ञा है।"

अगले वर्ष प्रकाशित एक किताब में 'के' ने इस बात का खुलासा किया कि मनोवैज्ञानिक रूप से कभी आहत न होने का क्या अभिप्राय है। 'दुख के साथ रहने' की वे बात कर रहे थे और फिर उन्होंने आगे लिखा :

हम इस तथ्य को, 'जो है' को, देख रहे हैं जो कि दुख है...मैं दुख उठाता हूँ और मन इससे भागने की हर संभव कोशिश करता है...अतः, दुख से भागिए मत जिसका अर्थ यह नहीं है कि आप रुग्ण, अस्वस्थ हो जाएं। इसके साथ रहकर देखिए...क्या होता है? ध्यानपूर्वक देखिए। मन अत्यन्त स्पष्ट, तीक्ष्ण होता है। वह तथ्य के आमने-सामने होता है। वही दुख एक उत्कटता में रूपांतरित हो जाता है जो विराट होती है। वहीं से एक ऐसे मन का उदय होता है जो कभी आहत नहीं हो सकता। पूर्ण विराम। यही है सारा राज़।[61]

1 मई, 1979 को स्कूलों को लिखे गए एक पत्र में 'के' ने एक पैरे की शुरुआत इस प्रकार की : "ईश्वर अव्यवस्था है।" यदि हम पढ़ते चलें तो उनका आशय बिलकुल स्पष्ट हो जाता है : "मनुष्य द्वारा खोजे गए अनगिनत ईश्वरों को देखिए...और इनके कारण संसार में पैदा हुई अव्यवस्था, भ्रांति को देखिए, युद्धों को देखिए।" ब्रॉकवुड की एक विद्यार्थी छुट्टियों में जब इस पत्र को घर ले गयी तो उसके माता-पिता की नज़र इस अकेले वाक्य पर पड़ी—"ईश्वर अव्यवस्था है।" वे इतना गुस्सा हुए कि उन्होंने अपनी बेटी को स्कूल से निकालने का विचार बना लिया। 'के' के कितने सारे सीधे-सपाट वक्तव्यों ने लोगों को परेशानी में डाला : "आदर्श तो क्रूरता है।" (इसका भी वही अर्थ है जो कि "ईश्वर अव्यवस्था है" का है); "दुखी प्रेम जैसी कोई चीज़ नहीं होती"; "अगर आपने अपने बच्चों से सच में प्रेम किया होता तो युद्ध होते ही नहीं"; "समस्त विचार विकृत करते हैं" या "समस्त विचार विकृति है।" अंतिम वक्तव्य को समझना ही सबसे कठिन है। अपनी वार्ताओं में प्रायः उन्होंने इसे विस्तार से समझाया है। उदाहरण के तौर पर, एक जगह उन्होंने कहा : "मन, 'माइंड' शब्द का प्रयोग हम इंद्रियों, सोचने की क्षमता और उस मस्तिष्क के लिए कर रहे हैं जिसमें अनुभव, जानकारी-ज्ञान आदि के रूप में सारी स्मृतियां जमा हैं...ज्ञान मन को विकृत करता है। अतीत की गतिविधि ज्ञान है और जब अतीत यथार्थ को ढक लेता है तो विकृति आती है...विकृति शब्द से हमारा आशय है कि जो खंडित है, जो समग्र नहीं है।"[62]

अक्टूबर 1978 में मेरी ज़िंबलिस्ट 'के' के साथ भारत गयीं। बाद में इंग्लिश और अमेरिकी फाउंडेशन के सदस्य पुनः मद्रास में 'के' और भारतीय फाउंडेशन के सदस्यों के साथ शामिल हुए। 8 जनवरी, 1979 को श्रीमती गांधी 'के' से मिलने वसंत विहार आयीं। दिसंबर में चार दिन के लिए उनको जेल हो गयी थी, जिसके चलते भारत में कई जगह लोग बहुत आंदोलित हुए। 'के' से बात करना उनके लिए कितने महत्त्व की बात थी, यह बिलकुल साफ था। 'के' को कुछ ऐसा आभास मिला कि वह बड़ी दुखी महिला थीं, जिनके लिए शेर पर सवार होने के बाद अब उतरना नामुमकिन था।

उसी वर्ष गर्मियों में बैंगलोर शहर से दस मील दूर एक और कृष्णमूर्ति विद्यालय खोला गया था। यह भारत में खोला गया आखिरी विद्यालय था। इमारत तथा सौ एकड़ की ज़मीन को एक व्यक्ति ने दान दिया था। 'द वैली स्कूल' के नाम से खोले गए इस दिवसीय एवं आवासीय विद्यालय में छः से तेरह साल तक के सौ लड़के-लड़कियों की पढ़ाई की

व्यवस्था है। भारत छोड़ने से पूर्व ‘के’ इस विद्यालय को देखने गये।

17

रिक्त मन

1974 में 'के' ने अपनी जीवनी का दूसरा खंड लिखने के लिए मुझसे कहा। इच्छा होने के बावजूद मैं इसे शुरू करने में लंबे समय तक झिझकती रही। मुझे पता था कि इसे लिखना पहले खंड से भी कितना अधिक कठिन होने वाला है। पहले खंड की कहानी ही इतने सम्मोहन से भरी और कहीं-कहीं तो अजीबोगरीब थी। पिछले चालीस सालों में बाहरी तौर पर 'के' के साथ ज़्यादा कुछ नहीं हुआ था हालांकि आंतरिक तौर पर उन्होंने रोमांचकारी जीवन जिया था। पांच साल तक दूसरे खंड को हाथ लगाना मेरे लिए संभव नहीं हुआ और इस दिशा में पहला कदम था : वह कौन हैं और क्या हैं, इस रहस्य से परदा उठाने की एक और कोशिश। 'नोटबुक' को पढ़ने से इस रहस्य की धुंध नहीं छंट पायी।

जून 1979 में जब 'के' ब्रॉकवुड आए तो मैं वहां गयी और उनके साथ दो लंबी वार्ताएं कीं। मेरी ज़िंबलिस्ट वहां मौजूद थीं और उन्होंने इन वार्ताओं के नोट्स लिये। मैंने खुद कोई नोट्स नहीं लिये और न ही टेप रिकॉर्डर का इस्तेमाल किया—यह सोचकर कि इससे वार्तालाप की सहजता में बाधा पड़ सकती थी। पहली वार्ता 'के' के बड़े से शयनकक्ष में हुई; सुबह का समय था, सामने दक्षिण में लॉन और उसके परे मैदान दिखलाई पड़ रहे थे। वह बिस्तर में आलथी-पालथी मारकर सीधे बैठे हुए थे, उन्होंने हल्के नीले रंग का नहाने का गाउन पहन रखा था। कमरे में चंदन की धुंधली सी महक थी जिसे मैं हमेशा उनकी उपस्थिति से जोड़ती आयी हूँ। यहां तक कि उनके लिखने वाले कागज़ से भी यह महक आया करती थी। उस सुबह वह बेहद सजग थे और ऐसा लग रहा था जैसे वह कोई नयी खोज करने जा रहे हैं।

मैंने शुरुआत इस प्रश्न के साथ की कि क्या वह बता सकते हैं कि वह जो कुछ हैं उसके मूल में क्या है। इसके जवाब में उन्होंने मुझसे ही प्रश्न किया कि मैं क्या सोचती हूँ कि इसके पीछे क्या संभावना हो सकती है। सबसे संभावित व्याख्या, मैंने कहा, लॉर्ड मैत्रेय के बारे में बेसेंट-लेडबीटर द्वारा की गयी व्याख्या ही हो सकती है : लॉर्ड मैत्रेय ने अपने कार्य के लिए विशेष रूप से तैयार एक ऐसे शरीर को धारण किया जिसके भीतर का स्व जन्म-जन्मांतरों तक विकसित होता रहा जब तक कि उसे एक ऐसी ब्राह्मण देह न मिल गयी जो कि बाकी सभी देहों से शुद्ध थी और जिसने अनगिनत पीढ़ियों तक मांस या

मदिरा का स्पर्श नहीं किया था। 'प्रॉसेस' की दृष्टि से भी यह व्याख्या ठीक बैठती है : देह को इतना अनुकूल बनाया गया, इतना अधिक संवेदनशील बनाया गया कि उसमें दैवी उपस्थिति का वास हो सके और फिर अंततः लॉर्ड मैत्रेय की चेतना कृष्णमूर्ति के साथ एकलय हो जाए। दूसरे शब्दों में श्रीमती बेसेंट और लेडबीटर ने जो भी भविष्यवाणी की थी, वह सच साबित हुई। 'के' इस बात से सहमत हुए कि यह व्याख्या सबसे नज़दीक हो सकती है, पर उन्हें ऐसा नहीं लगा कि यह सही है। एक दूसरी संभावना मैंने जो प्रकट की वह यह थी कि विश्व में शुभता का, अच्छाई का विशाल भंडार है जिससे संपर्क साधा जा सकता है और ऐसा कई महान कलाकारों, प्रतिभाओं और संतों ने किया था। 'के' ने इसे तुरंत ख़ारिज कर दिया। अब एक ही व्याख्या बची थी जिसे मैं सुझा सकती थी : कई जन्मों की विकास यात्रा के बाद कृष्णमूर्ति स्वयं जो कुछ हैं उस रूप में विकसित हुए थे। हालांकि इस व्याख्या को स्वीकार करना मेरे लिए बहुत कठिन था क्योंकि जिस युवा कृष्णा को मैं जानती थी वह काफी हद तक खाली-खाली, बचपने से भरा, करीब-करीब क्षीणबुद्धि था, गोल्फ और मोटर साइकिलों के अलावा उसकी किसी भी चीज़ में कोई दिलचस्पी नहीं थी। मुझे यह समझ में नहीं आता था कि ऐसे किसी व्यक्ति का मस्तिष्क किस तरह इतना विकसित हो गया कि उसमें कृष्णमूर्ति की सूक्ष्म शिक्षा का आविर्भाव हो सका।

अब मैं मेरी ज़िंबलिस्ट के नोट्स से उद्धरण देती हूँ :

मेरी लट्यंस : शिक्षाएं साधारण नहीं हैं। उस रिक्त मस्तिष्क वाले बालक में वे कहां से आईं?

'के' : आप एक रहस्य को स्वीकार कर रही हैं। वह बालक स्नेहपूर्ण, रिक्तमना, बौद्धिकता से रहित था और उसे खेलकूद पसंद था। रिक्त वाली बात इसमें महत्त्व की है। वह रिक्त मन कैसे उन तक पहुंचा? शिक्षाओं के उजागर होने के लिए क्या रिक्तता ज़रूरी थी? क्या ऐसी चीज़ किसी वैश्विक भंडार से प्रकट होती है जैसे कि अन्य क्षेत्रों की प्रतिभाएं? धार्मिक भाव का प्रतिभा से कोई संबंध नहीं है। यह कैसे संभव हुआ कि वह रिक्त मन थियोसोफी आदि की बातों से भरा नहीं? शिक्षाओं के आविर्भाव के लिए क्या खालीपन आवश्यक था? वह बालक शुरू से ही विचित्र रहा होगा। उसे ऐसा किस चीज़ ने बनाया? क्या कई जन्मों में देह को तैयार किया जाता रहा अथवा इस शक्ति ने रिक्त मन वाली देह को ढूंढ लिया? इतनी सारी चाटुकारिता, खुशामद के बावजूद वह गर्हित व्यक्तित्व क्यों नहीं बना? क्यों नहीं कटुता और कड़ुवाहट ने उसके भीतर जड़ें जमायीं? वह क्या चीज़ थी जिसने उसे इस सबसे बचाकर रखा? इस रिक्तता को सुरक्षित रखा गया? किस ज़रिये से?

मेरी लट्यंस : इसी बात की छानबीन तो हम कर रहे हैं।

'के' : जीवन पर्यंत इसको बचाकर रखा गया, इसकी रक्षा की गई। जब मैं हवाई जहाज में होता हूँ तो मुझको पता होता है कि कोई दुर्घटना नहीं होगी।

लेकिन मैं ऐसा कुछ नहीं करता जिससे ख़तरे की संभावना हो। ग्लाइडर से उड़ना मुझे बहुत अच्छा लगता, पर मुझे महसूस हुआ कि मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए (गश्टाड में उन्हें ऐसा मौका दिया गया था)। मुझे यह हमेशा लगता रहा है कि मैं सुरक्षित हूँ। या सुरक्षित होने का यह भाव इस कारण आया कि अम्मा (श्रीमती बेसेंट) ने हमेशा दो दीक्षाप्राप्त व्यक्तियों को मेरी रक्षा के लिए रखा? मुझे नहीं लगता कि यह इस कारण है।

मेरी लट्यंस : नहीं, यह इस कारण नहीं है क्योंकि वह अन्य चीज़—'प्रॉसेस'—पहली दफा तब आई जब उन सबसे दूर रहना हुआ—ओहाय में बिलकुल अकेले नित्या के साथ।

'के' : हां, वह रिक्तता कभी नहीं गई। दंत चिकित्सक के पास चार घंटे बैठे हुए एक विचार तक मेरे मस्तिष्क में नहीं आया। केवल बातचीत करते समय और लिखते समय 'यह' काम करता है। मैं आश्चर्यचकित हूँ। रिक्तता अभी भी है। उस उम्र से लेकर आज तक—अस्सी बरस के करीब—वह रिक्त मन साथ में है। क्या है जो ऐसा करता है? तुम इसे अभी कमरे में महसूस कर सकती हो। इस कमरे में वह घटना हो रही है क्योंकि हम एक बहुत ही गंभीर विषय को स्पर्श कर रहे हैं और वह प्रवाह की तरह आ रही है। इस व्यक्ति का मन बचपन से लेकर आज तक लगातार रिक्त है। मैं किसी रहस्य की रचना नहीं करना चाह रहा : ऐसा हर किसी के साथ क्यों नहीं हो सकता?

मेरी लट्यंस : जब आप वार्ताएं देते हैं, तब आपका मन खाली होता है?

'के' : ओह, हां, पूरी तरह से। लेकिन मेरी रुचि इसमें नहीं है, बल्कि यह जानने में है कि यह खाली क्यों रहता है। खाली होने के कारण इसमें कोई समस्या नहीं होती है।

मेरी लट्यंस : क्या यह अनूठा है?

'के' : नहीं। यदि कोई चीज़ अनूठी है तो उसे दूसरे नहीं पा सकते हैं। मैं किसी भी तरह के रहस्य से बचना चाहता हूँ। मैं देखता हूँ कि बालक का मन अभी भी वैसा ही है। वह अन्य चीज़ अभी यहां पर है। क्या तुम इसे महसूस नहीं कर रहीं? यह मानो धड़क रहा है।

मेरी लट्यंस : आपकी शिक्षा का सार यह है कि इसे कोई भी प्राप्त कर सकता है। (मुझे धड़कता हुआ कुछ ज़रूर महसूस हुआ, पर यह मेरी कल्पना थी या कुछ और, इस बारे में मैं निश्चित नहीं थी।)

'के' : हां, यदि यह अनूठा है तो इसका कोई मूल्य नहीं है। पर ऐसा नहीं है। क्या यह बात कहने के लिए इसे रिक्त रखा गया है कि 'हालांकि मैं रिक्त हूँ, पर आप या कोई भी इसे पा सकता है'?

मेरी लट्यंस : आपका मतलब है कि ऐसा कह सकने के वास्ते यह खाली है कि ऐसा हर किसी को हो सकता है?

'के' : बिलकुल सही। बिलकुल सही। पर क्या उस चीज़ ने मन को खाली रखा? इन सारे वर्षों तक यह खाली कैसे रह पाया? यह आश्चर्यजनक है। मैंने इस बारे में पहले कभी सोचा ही नहीं। यदि यह अनासक्त न होता तो ऐसा नहीं हो पाता। तो वह आसक्त क्यों नहीं रहा? उस चीज़ ने अवश्य कहा होगा, 'खालीपन ज़रूरी है, नहीं तो मैं—वह—कार्य नहीं कर सकता।' इसका तात्पर्य होगा तमाम तरह की रहस्यात्मक बातों को स्वीकार कर लेना। अतः 'वह' क्या है जो इसे यह सब कह सकने के वास्ते खाली रखता है? क्या उसने ऐसे लड़के को खोज निकाला जिसके खाली रहने की सबसे ज़्यादा संभावना थी? इस लड़के में लेडबीटर के ख़िलाफ, थियोसोफी के ख़िलाफ, सत्ता के ख़िलाफ जाने का कोई भय नहीं था, यह स्पष्ट है। अम्मा, लेडबीटर—इन लोगों की अच्छी-खासी सत्ता थी। वह चीज़ ज़रूर काम कर रही होगी। पूरी मनुष्य जाति के लिए यह संभव होनी चाहिए। यदि ऐसा न हो तो इसका मतलब ही क्या है?

बातचीत यहीं पर रुक गयी। विद्यालय के भोजन कक्ष में समय पर पहुंचने के लिए 'के' को उठना पड़ा। भोजन के बाद हमने वेस्टविंग के रसोईगृह में फिर बातचीत शुरू की :

'के' : हम यह खोज नहीं पाए हैं कि उस बालक को तब से लेकर आज तक खाली क्यों रखा गया। क्या यह रिक्तता स्वार्थ का अभाव है—उस स्व का अभाव जो 'मेरा' घर, आसक्ति आदि के रूप में होता है? किंतु स्व के अभाव के साथ उस रिक्तता का आगमन कैसे हुआ? यह बड़ा आसान होगा यदि हम कह दें कि मैत्रेय ने इस देह को तैयार किया और इसे खाली रखा। यह सबसे आसान व्याख्या होगी पर सबसे आसान ही संदेहपूर्ण होता है। दूसरी व्याख्या है कि 'के' का अहं मैत्रेय और बुद्ध के संपर्क में रहा होगा और उसने कहा होगा—'मैं हट जाता हूँ; मेरे बेहूदा स्व से 'वह' ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है।' यह बात कुछ जमती नहीं, सही नहीं लगती। लॉर्ड मैत्रेय ने इस देह में बहुत कम अहं देखा, इस देह के माध्यम से उन्होंने प्रकट होना चाहा, इसलिए इसे निर्दोष रखा गया। अम्मा का कहना था कि 'के' का चेहरा बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह 'उसका' प्रतिरूप है। 'उसके' लिए ही इसे तैयार किया गया। इसका अर्थ होगा कि हर कोई उसे प्राप्त नहीं कर सकता। अर्थात, 'के' जैविक दृष्टि से विलक्षण, अनूठा है। यह एक आसान व्याख्या होगी। तो फिर सत्य क्या है? मुझे नहीं मालूम। मुझे सच में नहीं मालूम। इस सबके पीछे सच क्या है? यह आत्म-विभ्रम, आत्म-छलावा नहीं है, किसी तरह उत्पन्न की गयी अवस्था, इच्छा की उपज नहीं है—मुझे नहीं पता कि इच्छा किस चीज़ की की जाए। इस सबमें एक दूसरी विचित्र बात यह है कि बुद्ध के प्रति 'के' का हमेशा आकर्षण रहा है। क्या यह एक प्रभाव था? मुझे ऐसा नहीं लगता। क्या वह संचित भंडार ही बुद्ध है? मैत्रेय है? क्या है सत्य? क्या यह ऐसा कुछ है जिसे हम कभी नहीं खोज पाएंगे?

मेरी ज़िंबलिस्ट : क्या आपको कभी लगता है कि आपका इस्तेमाल किया जा रहा है, आपके भीतर कुछ प्रवेश कर रहा है?

'के' : मैं ऐसा नहीं कहूंगा। जब हम गंभीरतापूर्वक बात करते हैं तो यह कमरे में आ जाता है।

मेरी लट्यंस : पीड़ा से इसका क्या संबंध है?

'के' : जब मैं मौन होता हूँ, बात नहीं कर रहा होता, तो पीड़ा आती है। यह धीरे-धीरे आती है जब तक कि देह यह नहीं कह देती कि बहुत हुआ। एक चरमबिंदु पर पहुंचकर देह मूर्च्छित हो जाती है; पीड़ा या तो धुंधली पड़कर समाप्त हो जाती है, या बीच में कोई व्यवधान पड़ता है और वह चली जाती है।

मेरी लट्यंस : क्या हम किसी बाह्य संभावना से इनकार कर सकते हैं?

'के' : नहीं। किंतु सत्य क्या है? इस सबमें एक ऐसा तत्त्व है जो मनुष्य-निर्मित, विचार-रचित, आत्म-प्रेरित नहीं है। मैं वैसा नहीं हूँ। क्या यह कुछ ऐसा है जिसे हम नहीं खोज सकते, जिसे हम नहीं स्पर्श कर सकते, जिसे भेदा नहीं जा सकता? मुझे नहीं मालूम। मुझे यह अक्सर लगता रहा है कि यह मेरा काम नहीं है, कि हम कभी नहीं खोज पाएंगे। जब हम कहते हैं कि यह मन की रिक्तता के कारण आता है तो मुझे लगता है कि ऐसा भी नहीं है। हम एक गतिरोध पर पहुंच गए हैं। मैंने तुमसे बात की, उससे (मेरी ज़िंबलिस्ट से) बात की, सुब्बाराव ('के' को वह शुरुआती दिनों से जानते थे) से बात की। उन्होंने कहा : 'आप वैसे ही हैं जैसे आरंभ में थे।' मैं स्वयं से पूछता हूँ : 'क्या यह सही है?' यदि हां, तो फिर औरों के लिए कोई उम्मीद नहीं है। क्या यह कुछ ऐसा है जिसका हम स्पर्श ही नहीं कर सकते? हम अपने मन के साथ 'उसको' स्पर्श करना चाहते हैं। जब आपका मन पूर्णतया मौन हो तब 'उसका' पता लगाने की कोशिश करिए। सच्चाई का पता लगाने के लिए आपको अपना मन रिक्त, खाली करना होगा—मेरा मन नहीं जो कि रिक्तता में ही है। कुछ ऐसा है जो हम नहीं देख पा रहे हैं। हम ऐसी जगह पहुंच गए हैं जहां हमारे मस्तिष्क का, अन्वेषण के हमारे यंत्र का, कोई अर्थ नहीं है।

मेरी लट्यंस : हो सकता है कि कोई और खोज सके? पर क्या अन्वेषण करना सही होगा?

'के' : तुम शायद कर पाओ क्योंकि इस बारे में तुम लिख रही हो। मैं यह नहीं कर सकता। यदि तुम और मारिया* एक साथ खोजने के लिए बैठ जाओ और कहो, 'आइए, इसकी तह में जाएं', तो मुझे पक्का यकीन है कि तुम लोग खोज निकालोगे। या तुम इसे अकेले ही करो। मैं कुछ देख रहा हूँ; मैंने जो कहा वह सही है, कि मैं इसे कभी नहीं खोज पाऊंगा। पानी यह कभी नहीं जान सकता कि पानी क्या है। यह बिलकुल सच है। अगर तुम पता लगा लेती हो तो मैं इसकी पुष्टि कर पाऊंगा।

मेरी लट्यंस : आपको पता चल जाएगा कि हम सही हैं कि नहीं?

'के' : क्या तुम इसे कमरे में महसूस कर रही हो? यह प्रखरतर होता जा रहा है। मेरे सिर में कुछ हो रहा है। यदि तुम प्रश्न पूछकर यह कहती हो कि 'मुझे नहीं मालूम' तब तुम शायद पता लगा सको। यदि मैं यह लिख रहा होता, तो इस सबका ज़िक्र करता। बालक के पूर्ण रूप से रिक्त होने से मैं इसकी शुरुआत करता।

मेरी लट्यंस : आप इस बात का खुलासा चाहते हैं, ऐसा अगर मैं कहूँ तो आपको क्या आपत्ति होगी?

'के' : मुझे इसकी परवाह नहीं। जो लिखना हो लिखो। मुझे यकीन है अगर दूसरे लोग खोज में लगें तो खोज सकते हैं। इस बारे में मुझे पूरा यकीन है। पूरा, बिलकुल पक्का। साथ ही, मुझे यह भी यकीन है कि मैं इसका पता नहीं लगा सकता।

मेरी लट्यंस : यदि ऐसा हो कि कोई इसे समझ तो ले, किंतु इसे शब्दों में न रख पाए तो?

'के' : तुम रख सकती हो। तुम कोई रास्ता ढूंढ निकालोगी। जिस क्षण कोई चीज़ खोज ली जाती है तो उसके लिए शब्द भी मिल जाते हैं। कविता की तरह। यदि आप खोजबीन के लिए स्वतंत्र हैं, अपने मस्तिष्क को उस दिशा में ले आते हैं तो आप पता लगा सकते हैं। जिस क्षण यह खोज लिया जाएगा यह सही होगा। कोई रहस्य नहीं रहेगा।

मेरी लट्यंस : खोज लिए जाने पर क्या उस रहस्य को कुछ आपत्ति न होगी?

'के' : नहीं, रहस्य जा चुका होगा।

मेरी ज़िंबलिस्ट : लेकिन रहस्य तो पावन वस्तु है।

'के' : पावनता बरकरार रहेगी।

यहां बातचीत खत्म हो जाती है क्योंकि 'के' के सिर की हालत इतनी बिगड़ चुकी होती है कि उन्हें लेटने के लिए जाना पड़ता है। केवल मौन के समय ही नहीं जब इस तरह की चीज़ों पर चर्चा होती थी तो दर्द लौट आता था। 'के' ने जो विस्मयकारी ज़िम्मेदारी हम पर डाली थी, उसी में डूबती-उतराती मैं लंदन लौट आयी। उनको 'पूरा यकीन' था कि यदि हम कोशिश करें तो उनके बारे में सच्चाई का पता लगा सकते हैं। फिर भी इस बात पर विश्वास करने में मुझे संकोच हो रहा था कि वह स्वयं सत्य का पता लगाने में हमारी ज़्यादा मदद नहीं कर सकते थे। अतः तीन सप्ताह बाद मैं फिर उनसे बात करने के लिए ब्रॉकवुड गयी। तब वे गश्टाड जाने वाले थे। इस बार फिर दोपहर के भोजन के बाद वेस्टविंग के रसोई घर में हमारी बातचीत हुई। मेरी ज़िंबलिस्ट वहां मौजूद थीं। उनके द्वारा लिए गए नोट्स से मैं फिर उद्धृत करती हूँ :

मेरी लट्यंस : आपकी शिक्षा काफी जटिल है।

'के' : काफी जटिल।

मेरी लट्यंस : यदि आप इसे पढ़ें, तो समझ पाएंगे?

'के' : ओह, हां, हां।

मेरी लट्यंस : शिक्षाओं को किसने बनाया? आपने? रहस्य ने?

'के' : अच्छा सवाल है। किसने बनाया शिक्षाओं को?

मेरी लट्यंस : 'के' के रूप में उस व्यक्ति को जानते हुए यह सोच पाना मेरे लिए बड़ा कठिन है कि आपने शिक्षाओं को बनाया।

'के' : तुम्हारा मतलब है कि बिना कुछ अध्ययन किये, आपने या फिर किसी और ने उनका सृजन किया?

मेरी लट्यंस : ऐसी कोई चीज़ है जो आपमें प्रकट होती है किंतु जो आपके अपने मस्तिष्क का हिस्सा नहीं लगती।

'के' : क्या शिक्षाएं असाधारण हैं?

मेरी लट्यंस : हां, अलग हैं। मौलिक हैं।

'के' : इसे स्पष्ट कर लें। यदि मैं सोच-समझकर इसे लिखने बैठता तो मुझे शक है कि मैं यह कर पाता। होता क्या है मैं तुम्हें बताता हूँ : कल मैंने कहा कि 'किसी चीज़ के बारे में सोचना और सिर्फ सोचना, दो अलग-अलग बातें हैं।' फिर मैंने कहा—'मुझे बात पूरी तरह समझ में नहीं आई; ज़रा इस पर गौर किया जाए।' और जब मैंने गौर किया तो मुझे इसमें कुछ स्पष्ट दिखलाई दे गया। खालीपन, शून्यता का एक भाव है जिसमें कुछ एकाएक प्रकट हो जाता है। लेकिन यदि मैं ऐसा करने बैठता तो शायद न कर पाता। शॉपेनहावर, लेनिन, बर्ट्रेंड रसेल आदि लोगों ने काफी अधिक अध्ययन किया। यहां इस व्यक्ति के रूप में ऐसी घटना है जिसने ऐसा कुछ भी नहीं किया, जिसने कोई प्रशिक्षण नहीं लिया। इसे यह सब कैसे हासिल हुआ? क्या है यह? अगर बात सिर्फ 'के' की होती—वह तो अशिक्षित है, नम्र है—तो यह सब आया कहां से? इस व्यक्ति ने सोच-विचार कर शिक्षा को नहीं गढ़ा।

मेरी लट्यंस : विचार के माध्यम से वह उस तक नहीं पहुंचा?

'के' : यह कुछ ऐसा है—बाइबल का वह शब्द क्या है?—'रेवलेशन' (प्रकट होना)। वार्ता के दौरान ऐसा हर समय होता रहता है।

मेरी लट्यंस : प्रकटीकरण के संदर्भ में श्रोताओं की तरफ से भी कुछ किया जाता है?

'के' : नहीं। फिर से देखते हैं। गहरा प्रश्न यह होगा : उस बालक को खोजा गया, किसी भी तरह का प्रभाव, संस्कार उसे जकड़ नहीं पाया—न थियोसोफी का, न खुशामद का, न 'विश्व शिक्षक' का, न संपत्ति और अपार धन का। किसी चीज़ का भी उस पर प्रभाव नहीं पड़ा। क्यों? किसने उसकी सुरक्षा की?

मेरी लट्यंस : 'किसी' के द्वारा सुरक्षा—किसी शक्ति की व्यक्ति के रूप में कल्पना न करना मेरे लिए कठिन है। हमारे सीमित मस्तिष्क के लिए यह धारणा कि कोई शक्ति है जो रक्षा करती है, अत्यंत विराट है। पर शायद यह 'लाइटनिंग

कंडक्टर' जैसा कुछ है। आकाशीय बिजली अपने एक संवाहक को पा लेती है जो उसे सीधे धरती में प्रवाहित कर देता है। इस शक्ति ने, जिसे मैं सचमुच प्रेम समझती हूँ, एक रिक्त मन में अपना संवाहक ढूंढ लिया।

'के' : यह विशिष्ट देह रही होगी। वह देह कहां से आयी और निर्दोष कैसे रह पायी? कितना आसान होता इसे दूषित कर देना। इसके मायने हैं कि वह शक्ति इसकी रक्षा कर रही थी।

मेरी लट्यंस : और इसे प्रशिक्षित भी कर रही थी—'प्रॉसेस' के माध्यम से इसे खोल रही थी।

'के' : वह बाद में होता है।

मेरी लट्यंस : जैसे ही देह पर्याप्त शक्तिशाली हो गयी, यह शुरू हो गया।

'के' : हां, लेकिन यदि आप यह सब मानेंगी तो फिर यह विलक्षण, विचित्र घटना होगी, एक शालीन अर्थ में। उस अनूठे जीव ('फ्रीक') को इस शिक्षा के वास्ते रखा गया, उसका अपना कोई महत्त्व नहीं था; कोई भी इस शिक्षा को ग्रहण कर सकता है, उसके सत्य को देख सकता है। यदि आप उस अनूठे, विलक्षण व्यक्ति को महत्त्व देती हैं तो फिर सारी संभावनाएं समाप्त हो जाती हैं।

मेरी ज़िंबलिस्ट : शिक्षा को प्रकट करने के लिए तो विलक्षण व्यक्ति की आवश्यकता है पर साथ ही गैर-विलक्षण व्यक्ति इसे ग्रहण कर सकते हैं?

'के' : हां, हां। इसलिए हम पूछ रहे हैं कि उसको विलक्षण कैसे बनाए रखा जा सका? यह शब्द भयानक है।

मेरी लट्यंस : ऐसा कह सकते हैं कि कोई शक्ति प्रतीक्षारत थी...

'के' : अम्मा और लेडबीटर का मानना था कि एक बोधिसत्त्व का अवतरण होगा जिसके लिए उन्हें एक देह खोजनी होगी—अवतार की परंपरा में। बुद्ध उन सारी चीज़ों, दुख आदि से होकर गुज़रे और फिर इन सबको एक तरफ हटा कर बुद्धत्व प्राप्त कर लिया। उनकी शिक्षा मौलिक थी किंतु उन्हें इस सबसे गुज़रना पड़ा। किंतु यहां एक अनूठा व्यक्ति है जिसे इस सबसे नहीं गुज़रना पड़ा। जीसस भी शायद अनूठे रहे हों। जन्म के समय से ही उस शक्ति को इस देह की निगरानी करनी पड़ी होगी। क्यों? कैसे हुआ यह? एक मामूली परिवार का बालक, वह बालक वहां कैसे आया? क्या उस शक्ति ने जो प्रकट होना चाहती थी उस बालक को सृजित किया? या उस शक्ति ने ब्राह्मण परिवार में जन्मे आठवें बच्चे को देखा और उसे चुन लिया? वह इस कमरे में विद्यमान है। यदि आप उससे उसके बारे में पूछेंगे तो वह जवाब नहीं देगी। वह कहेगी—'तुम बहुत ही छोटे हो।' उस दिन शायद हमने कहा था कि शुभ का एक भंडार है जिसे प्रकट होना होता है। लेकिन तब हम वापस उसी जगह पर आ जाते हैं, जहां से हमने शुरू किया था। जैविक तौर पर एक विलक्षण व्यक्तित्व की चर्चा किए बिना आप इसकी किस तरह से व्याख्या करेंगे? यह सारा कुछ पावन है, पर मुझे नहीं पता कि तुम कैसे न केवल

इस पावनता को, बल्कि जिस बारे में भी हमने चर्चा की है, उसको संप्रेषित कर पाओगी। यह सच में बड़ी असाधारण बात है कि उस बालक को कलुषित नहीं किया जा सका। उन लोगों ने मुझ पर प्रभुत्व जमाने का हर संभव उपाय किया। ओहाय वाले अनुभव से उसे क्यों गुज़ारा गया? क्या इसलिए कि देह पर्याप्त रूप से एकलय नहीं हुई थी?

मेरी ज़िंबलिस्ट : आपने दर्द से छुटकारा पाने की कभी कोशिश नहीं की।

'के' : बिलकुल नहीं। आपको पता है करीब आधा घंटा पहले यह दर्द शुरू हो चुका है। सोचिए, आप यह सब लिख देती हैं; एक स्वस्थ, विचारशील व्यक्ति, 'जो' (मेरे पति) के जैसा, इसके बारे में क्या कहेगा? क्या वे कहेंगे, यह कुछ भी नहीं है? यह सभी प्रतिभाओं के साथ होता है? आप उनसे अगर आलोचना करने के लिए कहती हैं तो उनकी क्या प्रतिक्रिया होगी? क्या वे कहेंगे कि यह सब मनगढ़ंत है? या कि यह एक रहस्य है? क्या हम एक रहस्य को छूने का प्रयास कर रहे हैं? जैसे ही इसे आप समझ लेते हैं यह रहस्य नहीं रह जाता। किंतु पावनता रहस्य नहीं है। अतः स्रोत की ओर ले जाने वाले रहस्य को हम मिटाने की कोशिश कर रहे हैं। वे लोग क्या कहेंगे? कि जहां कोई रहस्य नहीं है वहां आप एक रहस्य सृजित करना चाह रहे हैं? कि वह तो वैसा ही पैदा हुआ था? पावनता वहां है और पावन होने के कारण वह विराट है। मेरी मृत्यु के बाद क्या होगा? यहां क्या होगा? क्या यह सारा कुछ एक व्यक्ति तक सीमित है? या कुछ लोग हैं जो इसे आगे ले जाएंगे?

मेरी लट्यंस : करीब दस साल पहले एपिंग फॉरेस्ट में आपने जो कहा था आप उससे अब अलग बात कह रहे हैं; आपने कहा था कि मृत्यु के बाद यह सब विदा हो सकता है।

'के' : मुझे नहीं लगता कि मैंने पहले जो कहा था उससे अब कुछ अलग बात कह रहा हूँ। पुस्तकें हैं लेकिन वे काफी नहीं हैं। अगर उन लोगों (उनके आस-पास जो लोग थे) के पास सच में यह होता तो वे 'के' की तरह अनूठे होते। यह अनूठा व्यक्ति कह रहा है—'क्या ऐसे लोग हैं जिन्होंने उस जल को पिया है और वे उसको आगे ले जा सकेंगे?' मैं ऐसे व्यक्तियों के पास जाऊंगा जो उस अनूठे व्यक्ति के साथ रहे थे और उनके द्वारा उस व्यक्ति के बारे में कुछ महसूस करना चाहूंगा। मैं मीलों दूरी तय करके उस व्यक्ति से मिलने जाऊंगा जो उस अनूठे व्यक्ति के साथ रहा था और उससे पूछूंगा : 'आपने उस जल को पिया है, कैसा है वह?'

बातचीत यहीं खत्म हो जाती है क्योंकि उनके सिर और गर्दन में फिर पीड़ा होने लगती है और उनको जाकर लेटना पड़ता है। 'के' को कभी भी अपनी स्वयं की अवस्था को बाहर से देख पाने का मौका नहीं मिला था। और मुझे इस बातचीत से ऐसा आभास मिला कि अगर वह एक बार ऐसा कर पाते तो उन्हें बहुत अच्छा लगता। मुझे याद आया कि 28 दिसंबर सन् 1925 को—अड्यार में लॉर्ड मैत्रेय के रूप में प्रथम प्रकटीकरण के बाद, जैसा कि हमें विश्वास था—उन्होंने क्या बोला था। मेरी मां ने उनको बताया था कि

उनके चेहरे और उनके शब्दों में परिवर्तन आ गया था और अचानक ही वह अन्य पुरुष से हटकर उत्तम पुरुष एकवचन में बोलने लगे थे और उनका चेहरा अद्‌भुत कांति से दमकने लगा था। विचारमग्न हो उन्होंने उत्तर दिया था—'काश मैं यह देख पाता।' ऐसा ही जवाब उन्होंने फिर मिसेज़ कर्बी को दिया था, जब उन्होंने 'के' को बताया कि 1927 के ओमन कैंप में कैसे उनका चेहरा बदल गया था।

'के' के लिए अत्यधिक करुणा का भाव लिए मैं लंदन वापस आ गयी। पिछली बातचीत में उन्होंने कहा था—'पानी स्वयं यह कभी नहीं जान सकता कि पानी क्या है।' वह कभी बाहर निकलकर नहीं देख पाएंगे, वह कभी यह न जान पाएंगे कि वह क्या हैं; वह कभी अपने उस चेहरे का दर्शन नहीं कर पाएंगे जो उन विशिष्ट प्रेरणा के क्षणों में रूपांतरित हो जाया करता है। क्या मैं उनके वास्ते खोज पाऊंगी? उन्होंने हम लोगों से कहा था कि यह संभव है, और हमें खोजने का जतन करने के लिए कहा था। जबकि 1972 में उन्होंने ओहाय में अमेरिकन ट्रस्टियों से कहा था कि कोई इसे कभी नहीं समझ पाएगा—यह इतना विशाल है कि इसे शब्दों में बांध पाना मुश्किल है। अब वह कह रहे थे—'जैसे ही आप किसी चीज़ को खोज लेते हैं, उसे व्यक्त करने के लिए आपके पास शब्द भी आ जाते हैं।' क्या मैं खोज सकूंगी? आगे बढ़ने के लिए दो सुराग थे : पहला, सुरक्षा का बोध जिसे उन्होंने अपने साथ सदा अनुभव किया था, और दूसरा, रिक्त मन की तरफ उनका बार-बार इशारा। क्या मैं पता लगा पाऊंगी? चुनौती रोमांचक थी, उन्मादित करने वाली थी।

सानेन और ब्रॉकवुड गैदरिंग के बाद, तथा ब्रॉकवुड में ही वैज्ञानिकों के एक सेमिनार के बाद, मैं फिर शरद ऋतु में 'के' से ब्रॉकवुड में बात कर पाई। मैं यह पता लगाना चाहती थी कि जिस प्रकटीकरण की उन्होंने बात की थी क्या वह उनके भीतर से आता था या बाहर से। उन्होंने यह कहकर बात शुरू की कि जब उन्होंने बोलना आरंभ किया था तब उन्होंने थियोसोफी की भाषा का इस्तेमाल किया था, किंतु 1922 के ओहाय के अनुभव के बाद उन्हें अपनी भाषा मिल गयी थी। अपने रिक्त मन के बारे में उन्होंने फिर टिप्पणी करते हुए कहा—'जब मन रिक्त होता है तो इसे बाद में ही पता चलता है कि यह रिक्त था।' मेरी ज़िंबलिस्ट के नोट्स से मैं फिर उद्धृत करती हूँ :

> मेरी लट्यंस : यह रिक्त कब नहीं रहता?
>
> कृष्णमूर्ति : जब विचार की, कुछ संप्रेषित करने की, आवश्यकता होती है। अन्यथा यह रिक्त रहता है। सेमिनार के दरमियान—जब मैं बात कर रहा होता हूँ तो यह प्रकट हो जाता है।
>
> मेरी लट्यंस : क्या आपको कुछ 'दिखलाई' पड़ता है?
>
> कृष्णमूर्ति : न, यह बस बाहर आ जाता है। ऐसा नहीं है कि कुछ दिखलाई देता है और मैं उसका तर्जुमा करता हूँ। मेरे बिना सोचे ही यह अपने आप व्यक्त होता है। जैसे ही यह व्यक्त होता है तर्कयुक्त, बुद्धिसम्मत बन जाता है। अगर मैं सावधानीपूर्वक इसके बारे में सोचूं, लिखूं और फिर दोहराऊं तो कुछ भी व्यक्त नहीं

होगा।

मेरी लट्यंस : क्या यह आपके बाहर कहीं से आता है?

कृष्णमूर्ति : कलाकारों और कवियों की बात अलग होती है, क्योंकि वे इसे विकसित करते हैं। उसकी ('के' की) क्रांतिकारी शिक्षा का बोध अवश्य ही क्रमशः, धीरे-धीरे आया होगा। भाषा के साथ वह भी बदलता रहा हो, ऐसा नहीं है। (यहां उन्होंने फिर से दोहराया कि गश्टाड में उन्हें किस तरह ग्लाइडिंग के लिए आमंत्रित किया गया था।) मैं बड़ी खुशी से जा सकता था—यह मज़ेदार होता। लेकिन मुझे ऐसा एहसास हुआ कि मुझे नहीं जाना चाहिए। मुझे ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिए जो इस देह के लिए उपयुक्त न हो। विश्व में 'के' को जो काम करना है, उसे ध्यान में रखकर मैं ऐसा महसूस करता हूँ। मैं बीमार न पड़ूँ, इसका मैं जितना संभव हो ध्यान रखता हूँ, क्योंकि तब मैं वार्ताएं नहीं कर पाऊंगा। यह देह वार्ता के लिए है; इसकी देखभाल ही इस तरह की गयी है और इसका उद्देश्य वार्ता करना है। इसके अलावा जो कुछ भी है वह उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है; इसलिए देह की रक्षा करना आवश्यक है। एक दूसरा पहलू यह है कि एक अन्य तरह की सुरक्षा है जो मेरी नहीं है। भविष्य मानो कमोबेश नियत कर दिया गया हो, कुछ ऐसी अलग तरह की सुरक्षा है। कुछ भिन्न प्रकार की सुरक्षा—केवल शरीर की ही नहीं। ऐसे अनूठेपन के साथ उस बालक ने जन्म लिया था—जिन हालात से भी वह गुज़रा उसमें बचे रहने के लिए उसकी सुरक्षा अवश्य की गयी होगी। किसी न किसी तरह, शरीर को जीवित रखने के लिए उसकी सुरक्षा की जाती है। कुछ है, जो इसकी देखभाल करता है; कुछ है, जो इसकी रक्षा करता है। वह क्या है, ऐसा पूछना अंदाज़ा लगाना होगा। मैत्रेय वाली बात कुछ ज़्यादा ही मूर्त और ठोस है, उसमें सहजता की कमी है। लेकिन मैं, इस आवरण के पीछे क्या है, नहीं देख सकता। मैं यह नहीं कर सकता। पुपुल (जयकर) और अन्य भारतीय विद्वानों के आग्रह पर मैंने इसकी कोशिश भी की। मैं कह चुका हूँ कि यह मैत्रेय या बोधिसत्त्व नहीं है। वैसी सुरक्षा कुछ ज़्यादा ही सुनिश्चित, गढ़ी गई लगती है। लेकिन यह सही है कि मैंने हमेशा सुरक्षित महसूस किया है।

यह विश्वास करने की ओर मेरा रुझान हुआ कि 'के' का उपयोग किया जा रहा है; सन् 1922 से ही किसी बाहरी सत्ता द्वारा उनका उपयोग किया गया था। इसका यह अर्थ नहीं था कि वह कोई माध्यम थे। माध्यम में और माध्यम के द्वारा क्या आ रहा है, उन दोनों में फर्क रहता है, जबकि 'के' में और उनके द्वारा जो प्रकट हो रहा था, उसमें अधिकांशतः कोई फर्क नहीं था। जिस तरह स्पंज में पानी समाया रहता है, कुछ वैसा ही संबंध उनकी चेतना और उस अन्य के बीच था। ऐसे भी क्षण आते जब वह पानी सूख जाया करता था और उनको उसी हालत में छोड़ जाया करता था जैसा कि मुझे पहली मुलाकातों में महसूस हुआ था—अनिश्चित, सौम्य, भ्रमित होने की संभावना लिए, शर्मीले, भोले, नम्य, स्नेही, मूर्ख से मूर्ख किस्म के मज़ाक पर हँसने वाले, फिर भी अपने आप में

विलक्षण जिन्हें दंभ और हठधर्मिता ने छुआ तक न हो। इसके बावजूद जब मैं उनकी नोटबुक की तरफ दृष्टि डालती हूँ तो पाती हूँ एक ऐसी चेतना की अवस्था जो पूर्णतया 'के' की अपनी लगती है और जिसमें उनकी शिक्षा का भरपूर स्रोत नज़र आता है। फिर इस बात को स्वीकार करने में कठिनाई होने लगती है कि उनका उपयोग किया गया है।

साल के ख़त्म होने से पहले 'के' भारत में एक और अतींद्रिय अनुभूति से होकर गुज़रे। 21 फरवरी, 1980 को ओहाय में उन्होंने मेरी को इसका विवरण लिखवाया। उस साल मेरी उनके साथ भारत नहीं गयीं थीं। यहां 'के' स्वयं को अन्य पुरुष में संबोधित करते हुए लिखवाते हैं :

> 1 नवंबर, 1979 को 'के' ब्रॉकवुड से भारत गए। मद्रास में कुछ दिन बिताने के बाद वह सीधे ऋषि वैली चले गए। काफी लंबे अरसे से वह उस विलक्षण ध्यान की अवस्था में मध्य रात्रि में उठ जाया करते थे। कितने वर्षों से यह अवस्था उनका पीछा कर रही थी। उनके जीवन की यह एक सामान्य बात रही थी। यह ध्यान का कोई सचेतन, संकल्पित प्रयास या कुछ पाने की अचेतन कामना नहीं है। यह बिलकुल स्पष्ट रूप से अनिमंत्रित और अप्रत्याशित होता है। वह अत्यधिक सावधानी से देखते रहे हैं कि कहीं विचार इन ध्यान की स्थितियों की स्मृति बनाने में तो नहीं लगा है। इसलिए प्रत्येक ध्यान में नूतनता और ताज़गी की गुणवत्ता रहती है। बिन-बुलाए, बिन-खोजे, एक उत्तरोत्तर बढ़ती हुई ऊर्जस्विता का आभास रहता है। कभी तो इसमें इतनी तीव्रता होती है कि सिर में पीड़ा होने लगती है, और कभी अगाध ऊर्जायुक्त अनंत रिक्तता का बोध होता है। कभी-कभार वह हास्य और अथाह आनंद के साथ जाग उठते हैं। ये विचित्र ध्यान जो कि स्वभावतः सोच-समझ की उपज नहीं थे, तीव्रता के साथ बढ़ते ही गए। केवल उन दिनों जब वह सफर में होते हैं या देर शाम को कहीं पहुंचते हैं, या सफर पर जाने के लिए उन्हें बहुत जल्दी उठना पड़ता है, तब ये रुक जाते हैं।
>
> 1979 के नवंबर महीने के बीच में ऋषि वैली पहुंचने पर इनकी तीव्रता और बढ़ गई, और एक रात्रि को, संसार के उस हिस्से की विचित्र नीरवता में, एक ऐसी शांति में जो उल्लुओं की आवाज़ से अबाधित थी, वह उठ बैठे और स्वयं को एक नितांत भिन्न व नयी अवस्था में पाया। वह गति समस्त ऊर्जा के उद्गम तक पहुंच चुकी थी।
>
> यहां यह दिग्भ्रम कतई नहीं होना चाहिए कि वह ईश्वर या ब्रह्म जैसी कोई सर्वोच्च सत्ता रही होगी; ये तो भय और कामना तथा पूर्ण सुरक्षा की दृढ़ इच्छा से उपजे मानवीय मन के प्रक्षेपण हैं। इनका उससे कोई संबंध ही नहीं है। कामना वहां तक पहुंच नहीं सकती, शब्द उसकी थाह नहीं ले सकते, और विचार की रस्सी उसके इर्द-गिर्द लिपट नहीं सकती। कोई यह पूछ सकता है कि आप किस विश्वास से ऐसा कहते हैं कि यह समस्त ऊर्जा का स्रोत है? पूर्ण विनयशीलता के साथ बस इतना ही उत्तर दिया जा सकता है कि यह ऐसा ही है।

जनवरी, 1980 तक, जब तक 'के' भारत में रहे, प्रत्येक रात्रि को वह इस परम के बोध के साथ जाग उठते थे। यह कोई अवस्था नहीं है, कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो स्थिर, अचल और निर्धारित हो। मानव के लिए अगम्य समूचा ब्रह्मांड ही इसमें है। फरवरी, 1980 में ओहाय लौटने पर और कुछ विश्राम कर लेने के बाद ऐसा बोध हुआ कि उसके परे कुछ भी नहीं था। यह आत्यंतिक है, आरंभ और अंत है, परम है। बस एक निस्सीम विराटता और अगाध सौंदर्य का एहसास है।

---

* 'के' हमेशा मेरी ज़िंबलिस्ट को 'मारिया' कहकर बुलाते थे ताकि मेरे नाम के साथ फर्क किया जा सके।

18

ज्ञात का अंत

फरवरी में अपनी प्रचंड नयी ऊर्जा के साथ 'के' जब ओहाय लौटे तो उन्हें लगा कि उनका 'पूरा उपयोग नहीं किया जा रहा' है। मेरी को उन्होंने पूछा—"मैं दो महीने यहां क्या करूंगा? मुझे व्यर्थ गंवाया जा रहा है।" लेकिन नये ओकग्रोव स्कूल को लेकर उन्हें काफी कुछ करना था—शिक्षकों और अभिभावकों से बातचीत इत्यादि। कई अभिभावक ओहाय वैली में रहने के लिए आ गए थे और स्कूल को चलाने में उनकी काफी अहम भूमिका हो गई थी। यदि यह बोर्डिंग स्कूल होता तो ऐसा मुमकिन न हो पाता। मार्क ली नाम के एक अमेरिकन इसके पहले निदेशक बने। वह ऋषि वैली स्कूल में पढ़ा चुके थे, और उनकी पत्नी भारतीय थीं।

निश्चित तौर पर 'के' की ऊर्जा तब व्यर्थ जाने से बच गयी जब मार्च में डेविड बोह्म वहां रहने के लिए आ गए और आठ लंबी परिचर्चाएं उन्होंने 'के' के साथ कीं। बाद में पांच परिचर्चाएं ब्रॉकवुड में और हुईं। ये सारी परिचर्चाएं 1985 में द एंडिंग ऑव टाइम शीर्षक से प्रकाशित हुईं। 'के' की सबसे महत्त्वपूर्ण किताबों में यह थी, जिसने पाठकों के एक नये वर्ग में रुझान पैदा किया। इन संवादों में प्रश्नों और प्रत्युत्तरों की एक द्रुत गति देखने को मिलती है जिनको उद्धृत करना कठिन है। इन संवादों में जो विचार रखे गए हैं, उनका विकास बहुत धीमे-धीमे होता है। उनका वास्ता विचार के साथ-साथ समय के अंत से है, यानी मनोवैज्ञानिक विचार और समय के अंत से, जो कि अतीत है। हमने जो कुछ सीखा है, हम जो कुछ हैं, हमारी चेतना की समस्त अंतर्वस्तु, अतीत है जो विचार के रूप में हमारी स्मृतियों में जमा है। अतीत में उलझे हुए मस्तिष्क के पास कोई भी सच्ची अंतर्दृष्टि इसलिए नहीं हो सकती क्योंकि वहां हर चीज़ को विचार के बादल के ज़रिये देखा जा रहा है जो कि निश्चित तौर पर स्व के द्वारा हमेशा सीमित होगा। 'के' पूछते हैं, 'क्या समय का अंत संभव है—अतीत के रूप में समय की पूरी अवधारणा का अंत, ताकि कोई कल ही न बचे?' स्व-केंद्रित अंधेरे में अगर मस्तिष्क जीता रहता है तो वह इससे पैदा होने वाले द्वंद्व से खुद को नष्ट कर डालेगा। क्या मस्तिष्क की कोशिकाओं के क्षरण को, जीर्णता को रोका जा सकता है? 'के' का सुझाव था कि अंतर्दृष्टि ('इनसाइट') के माध्यम से मस्तिष्क की कोशिकाओं में भौतिक रूप से परिवर्तन हो पाना तथा उनका

व्यवस्थित ढंग से काम कर पाना संभव है; बरसों से गलत ढंग से काम करने के कारण मस्तिष्क को जो क्षति पहुंचती रही है उसे इसके द्वारा ठीक किया जा सकता है। बाद की तारीख में हुए दो संवादों पर आधारित एक पुस्तिका की प्रस्तावना में बोह्म ने इस बात पर प्रकाश डाला है :

> ...यहां यह कहना महत्त्वपूर्ण होगा कि मस्तिष्क और तंत्रिका-तंत्र पर हुए आधुनिक शोध वास्तव में कृष्णमूर्ति के इस वक्तव्य का काफी हद तक समर्थन करते हैं कि अंतर्दृष्टि मस्तिष्क की कोशिकाओं में परिवर्तन ला सकती है। उदाहरण के तौर पर अब यह जानी-मानी बात है कि हारमोन्स और न्यूरोट्रांसमीटर्स के रूप में शरीर में महत्त्वपूर्ण पदार्थ मौजूद हैं जो बुनियादी तौर पर मस्तिष्क एवं तंत्रिका-तंत्र की पूरी कार्यप्रणाली को प्रभावित करते हैं। व्यक्ति क्या जानता है, क्या सोचता है और इस सबका उसके लिए क्या अर्थ है—इन सारी चीज़ों के प्रति ये क्षण-प्रतिक्षण प्रत्युत्तर देते रहते हैं। अब यह भली प्रकार प्रमाणित हो गया है कि इस दृष्टि से ज्ञान और आवेग मस्तिष्क की कोशिकाओं और उनकी कार्यप्रणाली को गहन रूप से प्रभावित करते हैं। अतः यह बात काफी युक्तिसंगत लगती है कि मानसिक ऊर्जा और उत्कटता की अवस्था में पैदा हुई अंतर्दृष्टि मस्तिष्क की कोशिकाओं पर और अधिक गहराई से प्रभाव डाल सकती है।[63]

गर्मियों में गश्टाड जाते वक्त 'के' अबकी तीसरे साल यांकर क्लीनिक गए। डायफ्रैम (छाती और पेट के बीच स्थित मांसपेशियों) के नीचे उन्हें सूजन महसूस हो रही थी। एक्स-रे से पता लगा कि यह हर्निया की वजह से था और कोई ख़तरा नहीं था। सानेन के बाद ब्रॉकवुड में हो रहे सम्मेलन में 'के' से पूछा गया कि इतनी उम्र हो जाने पर भी वह बोलना बंद क्यों नहीं कर रहे हैं। उनका उत्तर था : "अक्सर यह पूछा जाता रहा है—'पचास साल बीत जाने के बाद भी आप अपनी ऊर्जा क्यों खपा रहे हैं जबकि कोई बदलता भी नज़र नहीं आ रहा है?' ...मुझे लगता है कि जब किसी को कोई सच्ची और सुंदर चीज़ दिखाई पड़ती है तो वह स्नेहवश, करुणावश और प्रेमवश औरों को इस बारे में बताना चाहता है। अगर किसी की इसमें दिलचस्पी न हो तो कोई बात नहीं। क्या आप किसी फूल से यह पूछेंगे कि वह क्यों खिलता है; क्यों सुगंध बिखेरता है? इस वक्ता के बोलने की बस यही एक वजह है।"

'के' ने अपने जीवन के बचे हुए छः सालों में यात्राओं, वार्ताओं और परिचर्चाओं का सिलसिला जारी रखा, हालांकि व्यक्तिगत साक्षात्कार देना उन्होंने बंद कर दिया था। 1980 की जुलाई में श्रीमती राधा बर्नियर थियोसोफिकल सोसायटी की अध्यक्ष चुनी गईं। 'के' उन्हें काफी बरसों से जानते थे और बहुत अधिक पसंद करते थे। सोसायटी के एक भूतपूर्व अध्यक्ष एन. श्रीराम की वह बेटी थीं, तथा रुक्मिणी अरुंडेल (जिन्होंने वह चुनाव लड़ा था) की भतीजी।

जाड़ों में 'के' जब मद्रास आए तो श्रीमती बर्नियर की खातिर उन्होंने थियोसोफिकल सोसायटी जाने की हामी भर दी। अतः नवंबर की तीन तारीख को राधा बर्नियर 'के' को

लेने वसंत विहार पहुंचीं। सैंतालीस सालों में पहली बार 'के' ने थियोसोफिकल सोसायटी की चारदीवारी में प्रवेश किया। उनके स्वागत के लिए एक भीड़ वहां पर जमा थी। इतने बरसों बाद वह वहां की ज़मीन पर चलते हुए समुद्र के किनारे स्थित राधा के घर तक गए। उन जगहों के बारे में उन्हें शायद ही कुछ याद रहा था। इसके पश्चात वह जब भी वसंत विहार आते तो प्रत्येक संध्या राधा के घर कार से जाते और उस तट पर टहलते, जहां उन्हें 'खोजा' गया था।

अगले दिन 'के' श्रीलंका के लिए रवाना हो गए जहां उन्हें वार्ता देने के लिए आमंत्रित किया गया था। 1957 के बाद अब उनका वहां जाना हो रहा था। यह बड़ी कामयाब यात्रा थी। वह प्रधानमंत्री से मिले, टेलीविज़न के लिए राज्यमंत्री ने उनका साक्षात्कार लिया तथा घंटे भर के लिए निजी तौर पर उनकी राष्ट्रपति से बातचीत हुई। उन्होंने चार सार्वजनिक वार्ताएं भी कीं जिसमें काफी भीड़ ने हिस्सा लिया।

इसके बाद 'के' ऋषि वैली गए, जहां तीनों फाउंडेशन के ट्रस्टी इकट्ठा हुए। 20 दिसंबर को श्रीमती इन्दिरा गांधी, बेटे राजीव और उनकी पत्नी के साथ, एक रात के लिए ठहरने आईं। मदनापल्ली तक वे हैलीकॉप्टर से आए। 'के' के साथ पुपुल जयकर भी मेजबान थीं। 'के' और श्रीमती गांधी अकेले लंबी सैर के लिए गए। झाड़ियों में सशस्त्र जवान छिपकर बैठे थे।

1981 के आरंभ में भारत से ओहाय जाते समय 'के' ब्रॉकवुड में ठहरे। उन्होंने बड़े उत्साह से श्रीमती गांधी से मुलाकात और श्रीलंका में हुए अतिविशिष्ट सत्कार के बारे में बताया। वह इस बात से सच में प्रभावित हुए कि श्रीलंका के राष्ट्रपति ने उनसे मिलने की इच्छा जतायी। सांसारिक सफलता और अकादमिक प्रतिष्ठा के प्रति उनका यह सम्मान, 'के' का यह एक अजीब विरोधाभास था, हालांकि ऐसे व्यक्ति से वह दूर हट जाते थे जिसे अपने नाम का घमंड होता था या जो अभिमान के लक्षण दिखाता था। वह कभी इस ओर ध्यान देते नहीं लगते थे कि जो अनुदान उनके कार्यों के लिए आता था, हो सकता है, उसका स्रोत निर्दयता और प्रतिस्पर्धा से भरे किसी व्यापार में हो जिसके बारे में उन्हें पता चल जाता तो उन्हें खेद होता। बहरहाल, यदि उनमें ये सारे विरोधाभास नहीं होते तो वह कहीं कम दिलचस्प इंसान होते, और निश्चय ही व्यक्तिगत तौर पर उनको चाहना भी उतना मुमकिन न होता।

1981 की सानेन गैदरिंग में 'के' को पेट में अत्यधिक पीड़ा से गुज़रना पड़ा। सानेन हॉस्पिटल में जांच की गई तो पीड़ा का कोई भी कारण सामने नहीं आया। साथ ही, इस बात का इंतज़ाम कर दिया गया कि अगले साल ओहाय जाते समय, भारत के लिए रवाना होने से पहले, उनका हर्निया का ऑपरेशन करा लिया जाएगा। गश्टाड जाते हुए उन्होंने रास्ते में मेरी ज़िंबलिस्ट से अकस्मात ही कहा कि वह उनके बारे में एक किताब लिखे, कि उनके साथ रहने का क्या अर्थ रहा है। आगे के कुछ सालों में उन्होंने दो बार और मेरी से इस बारे में कहा, कि रोज़ वह थोड़ा-थोड़ा लिखे, चाहे वह पुस्तक सौ पेज की ही क्यों न हो। हमें यह उम्मीद करनी चाहिए कि वह एक दिन इसे ज़रूर लिखेंगी, क्योंकि 1966 से

वह उनके साथ जितना रही हैं उतना और कोई नहीं रहा। वह गश्टाड, ब्रॉकवुड और अब ओहाय में उनके साथ लगातार थीं। वांदा स्कारावेल्ली आज भी फोस्का के साथ 'के' के लिए शले टान्नेग खोल देती थीं, पर गैदरिंग के समय वह फ्लोरेंस लौट जाती थीं और बाद में आकर शले को बंद करती थीं।

सितंबर में 'के' ने अपने वार्षिक कार्यक्रम में थोड़ा फेरबदल किया। एम्स्टरडम में वह दस साल से नहीं बोले थे। वहां उनकी दो वार्ताएं आयोजित की गईं। आर. ए. आई. का विशाल सभागृह पूरी तरह भर गया था, श्रोताओं को बगल वाले हॉल में जाना पड़ा जहां क्लोज़्ड सर्किट टेलीविज़न लगा दिया गया था। इंग्लैंड से कुछ मित्र उनके साथ चल रहे थे। पहली वार्ता के लिए जाते समय उन्होंने कार में हम लोगों से पूछा कि उन्हें वार्ता में किस विषय को लेकर बात करनी चाहिए। मैंने पूछ लिया—"क्या आपने कुछ भी नहीं सोचा है?" उनका जवाब था, 'नहीं, ज़रा भी नहीं।' बड़े से मंच पर जब उनकी छोटी सी काया उभरी तो दिखाई दिया कि वह अकेले लकड़ी की कुर्सी पर बैठे हैं और सामने एक छोटी-सी मेज़ तक नहीं है। वह दृश्य पता नहीं क्यों हृदय को छू लेने वाला था। हमेशा की तरह वह कुछ मिनट तक बिलकुल मौन बैठे रहे, अपने श्रोताओं पर हर तरफ से दृष्टि डालते हुए। उस वक्त श्रोताओं पर पूरे तौर पर खामोशी छायी रही और अत्यंत व्यग्रता से सभी प्रतीक्षा करने लगे। आखिरकार उन्होंने बोलना शुरू किया : "दुर्भाग्य से केवल दो ही वार्ताएं होंगी, इसलिए यह ज़रूरी है कि संपूर्ण अस्तित्व के विषय में जो कुछ भी कहना है उसे इनमें समेट दिया जाए।" अब वह ज़्यादा-से-ज़्यादा इस बात पर ज़ोर दे रहे थे कि मनुष्यों के बीच का विभाजन सिर्फ सतही है। इस बात को उन्होंने पहली वार्ता में स्पष्ट किया :

> हमारी चेतना की अंतर्वस्तु पूरी मानवता की साझा भूमि है... विश्व के किसी भी कोने में रहने वाला प्रत्येक मनुष्य न केवल भौतिक रूप से बल्कि अंदरूनी तौर पर भी पीड़ा भोगता है। वह अनिश्चय में है, भयभीत है, भ्रांति और दुश्चिंता से घिरा है, सुरक्षा का उसे कोई गहरा बोध नहीं है। अतः हमारी चेतना पूरी मानवता की चेतना के समान है...इसलिए हम अलग-अलग व्यक्ति नहीं हैं। कृपया इस बात को समझें। हमें धार्मिक और शैक्षिक तौर पर ऐसा मानने के लिए प्रशिक्षित किया गया है कि हम व्यक्ति हैं, स्वयं के लिए संघर्ष करने वाले अलग-अलग व्यक्तित्व हैं, पर यह एक भ्रांति है...हम अलग-अलग मनोवैज्ञानिक अंतर्वस्तुओं के साथ कुछ पाने के लिए संघर्षरत अलग-अलग प्राणी नहीं हैं, हममें से हर कोई पूरी मानवजाति है।

इसी वार्ता में उन्होंने एक और विषय को लिया जिसके बारे में वह पहले भी बात करते आए थे और अपने अंतिम सालों में वह उस विषय पर अक्सर लौटकर आते थे। यह विषय था—मृत्यु के साथ जीना :

> मृत्यु का अर्थ है ज्ञात का अंत। इसका अर्थ है भौतिक शरीर का अंत, उन सारी स्मृतियों का अंत जो कि मैं हूँ, क्योंकि मैं स्मृतियों के अलावा कुछ भी नहीं हूँ। और इस सबके छूट जाने से मैं डरा हुआ हूँ जिसका अर्थ होगा मृत्यु। मृत्यु का अर्थ है

मेरी सारी आसक्तियों का अंत, जिसका अभिप्राय है जीते हुए मरते जाना; इसका यह मतलब नहीं कि मरने के लिए पचास या अधिक सालों तक प्रतीक्षा करना या किसी बीमारी का इंतज़ार करना जो आपको मिटा डाले। इसका मतलब है अपनी पूरी ऊर्जा, जीवंतता, बौद्धिक क्षमता और अत्यधिक संवेदनशीलता के साथ जीना, और साथ-ही-साथ अपने किन्हीं ख़ास निष्कर्षों, सनकों, अनुभवों, आसक्तियों, ज़ख्मों आदि के प्रति मर जाना, उनका अंत कर देना; अर्थात जीते-जी मृत्यु के साथ जीना। तब मृत्यु हमसे कहीं दूर रहने वाली, किसी दुर्घटना, बीमारी या बुढ़ापे के कारण जीवन के आख़िर में होने वाली घटना न रह जाएगी। बल्कि वह तो स्मृति की समस्त वस्तुओं का अंत होगी। वही मृत्यु है, ऐसी मृत्यु जो जीवन से विलग नहीं है।"[64]

वास्तव में वे अपने सभी सुनने वालों से सारी मानवीय आसक्तियों को छोड़ने की बात कह रहे थे। ऐसे कितने लोग होंगे, जो ऐसा करने में सक्षम होने के बावजूद इसे करना चाहेंगे? फिर भी पूरे विश्व में ज़्यादा-से-ज़्यादा लोग उनकी वार्ताओं में शामिल हो रहे थे।

हॉलैंड में होने पर 'के' अत्यंत खुश थे। युवाकाल में उन्होंने यहां इतना सारा वक्त जो गुज़ारा था। एक दिन दोपहर को वे कासल अर्ड देखने के लिए कार से निकले। सन् 1929 के बाद से वह यहां नहीं आए थे। अब यह एक स्कूल था। ख़ूबसूरत बीच वृक्षों के जंगलों से गुज़रते हुए उन्होंने कुछ अगंभीर रूप से आश्चर्य जताया कि आख़िर उन्होंने कभी इस संपत्ति को वापस क्यों कर दिया था। किले के सामने पहुंचने पर उन्होंने गाड़ी से उतरने से इस डर से इनकार कर दिया कि कहीं उन्हें पहचान न लिया जाए।

भारत के थकान-भरे दौरे के बाद वे 1982 के आरंभ में ओहाय पहुंचे। फरवरी में यूनिवर्सिटी ऑव कैलिफोर्निया लॉस एंजिलिस मेडिकल सेंटर में उनका हर्निया का ऑपरेशन हुआ। हालांकि इस ऑपरेशन की तत्काल आवश्यकता नहीं थी फिर भी यह सोचा गया कि यात्रा के दौरान अगर स्थिति अचानक बिगड़ जाती है तो ख़तरनाक हो सकती है। चार रातें उन्होंने हॉस्पिटल में बिताईं। इस दौरान मेरी ज़िंबलिस्ट उनके कमरे में एक कोच पर रहीं। यह ऑपरेशन भी रीढ़ की हड्डी को निश्चेतक देकर किया गया था। 'के' के लिए यह कठिन परीक्षा थी। जैसे ही दवा का असर खत्म हुआ, दर्द काफी तीव्र हो गया और उन्होंने 'खुले द्वार' ('ओपन डोर') की कुछ बात की। मेरी ने उनसे 'द्वार' को बंद करने के लिए कहा। उस शाम 'के' ने मेरी से कहा, "मैं बस जाने ही वाला था। मुझे नहीं मालूम था कि द्वार को बंद करने की शक्ति मुझमें थी या नहीं।" लेकिन तब तक वह बिस्तर पर उठकर बैठ गए थे और एक रोमांचक उपन्यास पढ़ रहे थे।

मेडिकल सेंटर में बाद में की गई जांच में उनका ब्लड शुगर काफी बढ़ा हुआ पाया गया जिसके चलते उन्हें एक नियंत्रित खुराक पर रख दिया गया। एक अन्य दौरे में उनकी दोनों आंखों में मोतियाबिंद के शुरुआती लक्षण पाए गए जबकि बायीं आंख में ग्लूकोमा की संभावना दिखी। ग्लूकोमा के लिए उन्हें आई ड्रॉप्स दिये गये। पर कुल मिलाकर उनकी उम्र के हिसाब से उन्हें काफी फिट पाया गया।

मार्च के आख़िर में 'के' ने न्यूयॉर्क में दो वार्ताएं दीं। इससे पहले न्यूयॉर्क में वह 1974 में बोले थे। इस बार वार्ताएं कार्नेगी हॉल में हुईं। हॉल में करीब 3000 लोगों के बैठने का इंतज़ाम था और कोई भी सीट खाली नहीं बची थी। न्यूयॉर्क टाइम्स के लिए पॉल एल. मोंटगोमरी ने 26 मार्च को होटेल पार्कर मेरिडियन में 'के' का साक्षात्कार लिया। उन्होंने मोंटगोमरी को बताया : "देखिए, मैंने कभी किसी का आधिपत्य स्वीकार नहीं किया और न ही किसी पर अपने आधिपत्य का प्रयोग किया। मैं आपको एक मज़ेदार किस्सा सुनाता हूँ। मुसोलिनी के समय में उसके एक प्रमुख व्यक्ति ने मुझे लैग मजोरे के पास स्थित स्ट्रेज़ा में बोलने के लिए आमंत्रित किया (यह सन् 1933 की गर्मियों की बात थी)। जब मैंने हॉल में प्रवेश किया तो श्रोताओं में कार्डिनल, बिशप, जनरल वगैरह बैठे हुए थे। शायद उन्होंने सोचा हो कि मैं मुसोलिनी का मेहमान हूँ। मैं आधिपत्य के ऊपर बोला कि यह कितना घातक और विनाशक है। अगले दिन जब मैं फिर बोलने के लिए आया तो श्रोताओं में बस एक बूढ़ी महिला बैठी थी।" मोंटगोमरी के यह पूछने पर कि उनके जीवन-भर के कार्य से लोगों के जीने के तरीके में कुछ बदलाव आया, 'के' ने कहा, "थोड़ा-सा, सर! कुछ ख़ास नहीं।"

'के' को यहां अपनी दो वार्ताओं में अपनी सारी शिक्षा को समेट देना था इसलिए यह उन वार्ता शृंखलाओं से ज़्यादा प्रभावशाली थी जो ओहाय, सानेन, ब्रॉकवुड तथा भारत में नियमित रूप से होती थीं। पहली वार्ता में 'के' मनोविश्लेषण के बारे में बोले जो कि अमेरिकन जीवनशैली का अहम हिस्सा बन गया था : 'यदि कोई भी समस्या होती है तो हम विश्लेषक की तरफ दौड़ पड़ते हैं। वह आधुनिक पुरोहित बन गया है। हम सोचते हैं कि वह हमारी सारी मूर्खतापूर्ण छोटी-छोटी समस्याओं को हल कर देगा। विश्लेषण के मायने हैं कि कोई विश्लेषण करने वाला है, और किसी चीज़ का विश्लेषण किया जाना है। यह विश्लेषणकर्ता कौन है? क्या वह उस चीज़ से भिन्न है जिसका विश्लेषण किया जाना है? या वही विश्लेषित वस्तु है?" 'के' बरसों जिस द्रष्टा और दृश्य की, विचारक और उसके विचार की बातें करते रहे थे, उसी बात को वे यहां विश्लेषणकर्ता और विश्लेषित वस्तु के रूप में कह रहे थे। इनमें कोई फर्क नहीं था। उन्होंने ज़ोर देकर कहा कि यह बात सभी आंतरिक विखंडनों के लिए सच है। "जब आप गुस्से में होते हैं तो वह गुस्सा आप ही हैं। आप उस गुस्से से अलग नहीं हैं। जब आप लोभी होते हैं, ईर्ष्यालु होते हैं, तो आप वही होते हैं।"

न्यूयॉर्क की जनता से उन्होंने विनती की कि वे तालियां न बजाएं, न वार्ता से पहले और न उसके बाद : "जब आप ताली बजाते हैं तो आप अपनी समझ की ख़ातिर ताली बजाते हैं...वक्ता की इस बात में ज़रा भी दिलचस्पी नहीं है कि वह कोई पथप्रदर्शक या गुरु बने—वह तो निहायत बेवकूफी होगी। जीवन के बारे में, उस जीवन के बारे में जो कि असाधारण रूप से जटिल बन चुका है, हम साथ-साथ कुछ समझ रहे हैं।"

दूसरी वार्ता के आख़िर में उन्होंने पूछा कि क्या वह अब खड़े हो सकते हैं और जा सकते हैं। लेकिन साफ तौर पर उन्हें कुछ अड़चन हुई जब उनसे प्रश्न पूछे जाने लगे।

उन्होंने विनती की कि दो से अधिक सवाल न पूछे जाएं। आख़िरी सवाल था : "सर, क्या आप मुझे ईश्वर के बारे में बता सकते हैं? क्या ईश्वर है?" उन्होंने जवाब दिया :

> ईश्वर का आविष्कार हमने किया है। विचार ने ईश्वर को रचा है; जिसका अर्थ है कि हमने अपनी मुसीबतों, हताशाओं, दुश्चिंताओं और अकेलेपन से तंग आकर ईश्वर नाम की शै का आविष्कार कर लिया है। ईश्वर ने अपनी मूरत के अनुरूप हमें नहीं रचा है—काश, ऐसा होता! व्यक्तिगत तौर पर मैं किसी भी चीज़ के बारे में कोई विश्वास नहीं रखता हूँ। वक्ता का सामना जो कुछ भी है, जो तथ्य है उससे होता है; प्रत्येक तथ्य, प्रत्येक विचार, प्रत्येक प्रतिक्रिया के स्वरूप का उसे बोध रहता है, उस सबके बारे में उसमें पूरी सजगता रहती है। यदि आप भय से, दुख से मुक्त हैं तो किसी भी ईश्वर की आवश्यकता नहीं है।[65]

जब वह खड़े हुए तो तालियों की गड़गड़ाहट थी, ऐसा न करने के उनके अनुरोध के बावजूद।

अप्रैल महीने में ओहाय में कृष्णमूर्ति, डेविड बोह्म, डॉ. जॉन हिडली और रूपर्ट शेल्ड्रेक के बीच चार घंटे लंबी वार्ताएं हुईं। वार्ता का विषय था : मन की प्रकृति ('द नेचर ऑव द माइंड')। डॉ. हिडली ओहाय में निजी मनोचिकित्सक थे तथा शेल्ड्रेक हैदराबाद के इंटरनैशनल क्रॉप्स इंस्टीट्यूट में सलाहकार। मानसिक स्वास्थ्य के लिए काम करने वाली एक निजी संस्था रॉबर्ट इ. सायमन फाउंडेशन ने इन वार्ताओं को प्रायोजित किया और इनकी रंगीन वीडियो रिकॉर्डिंग करवायी। देश के कई विश्वविद्यालयों और शिक्षण केंद्रों से इन वीडियो टेपों को देखने की तत्काल मांग आयी। इन टेपों को खरीदा जा सकता था या मंगवा कर प्रदर्शित किया जा सकता था। न्यूयॉर्क और कई केबल टी. वी. स्टेशनों से इन्हें प्रसारित किया गया।[66]

मई में अपने सत्तासीवें जन्मदिन पर 'के' काफी तंदुरुस्त और ऊर्जा से भरे दिखे। मेरी को उन्होंने बताया : "अब हर रात ध्यान मुझे जगाता है।" ध्यान के समय वह 'अन्य' हमेशा उनके साथ मौजूद रहता था। 'नोटबुक' (पृष्ठ 121) में उन्होंने इस बात का वर्णन किया है :

> ध्यान उस वक्त मुक्ति था, और यह सौंदर्य तथा प्रशांति के अज्ञात संसार में प्रवेश करने जैसा था। यह एक ऐसा संसार था जहां छवियां, प्रतीक, शब्द या स्मृति की तरंगें नहीं थीं। प्रत्येक क्षण के अवसान में प्रेम था तथा प्रत्येक अवसान प्रेम का पुनरागमन था। यह आसक्ति नहीं थी, इसकी जड़ें नहीं थीं। बिना किसी अवरोध के यह खिलता गया। यह ऐसी अग्निशिखा थी जिसने सीमांतों को, सावधानीपूर्वक बनाए गए चेतना के बाड़ों को जलाकर राख कर दिया। ध्यान आह्लाद था और इसके साथ आशिष का आगमन हुआ।

जून में 'के' ने दो वार्ताएं लंदन के बारबिकन हॉल में दीं। इंग्लैंड में पहली बार फ्रैंड्स मीटिंग हाउस से किसी बड़े सभागृह में वह बोल रहे थे। हालांकि हॉल में जगह ज़रा भी

नहीं बची थी फिर भी वार्ताएं कामयाब नहीं रहीं। पहली वार्ता में लाउडस्पीकर ने काम करना बंद कर दिया, जबकि दूसरी में 'के' को वहां का वातावरण ही पसंद नहीं आया और वह कतई अपने श्रेष्ठ रूप में नहीं आ सके। मंच पर पहुंचने के लिए अलग से कोई रास्ता नहीं था, अतः वक्ताओं को मुख्य प्रवेश द्वार से ही जाना पड़ता था। 'के' इसके लिए तैयार नहीं थे, इसलिए उन्हें सर्विस लिफ्ट से मंच पर लाया गया।

डॉ. परचुरे अब 'के' के साथ यात्राएं कर रहे थे। इस साल सानेन गैदरिंग में डॉ. डाग्मार लिएश्ती भी आयी हुई थीं। अपने चाचा द्वारा ज़्यूरिख में आरंभ की गयी बर्चर-बेनर क्लीनिक से वह रिटायर हुई थीं। इसी क्लीनिक में 'के' 1960 में भर्ती हुए थे। डॉ. परचुरे से 'के' के स्वास्थ्य के बारे में चर्चा करने के लिए वे शले टान्नेग तक गयीं। उनका शुगर अभी भी अत्यधिक बढ़ा हुआ था। उन लोगों ने सुझाव दिया कि 'के' को गैदरिंग के बाद ब्रॉकवुड में होने वाली वैज्ञानिकों की संगोष्ठी को रद्द कर पूर्ण रूप से ऐसी जगह अवकाश में रहना चाहिए जहां उन्हें कोई जानता नहीं हो। वह इसके लिए तैयार हो गए। उन्हें अब स्वयं इसका एहसास होने लगा था कि उन्हें अपनी गतिविधियों को और अधिक कम करने की अत्यंत आवश्यकता है। सानेन गैदरिंग की थकावट के बावजूद उन्होंने प्रत्येक दिन 1 से 12 अगस्त तक स्कूलों को पत्र लिखवाए। इसके बाद, सितंबर में वह मेरी के साथ फ्रांस चले गए। वहां ब्ला के पास एक होटल में उन्होंने दो हफ्ते तक आराम किया। डोरथी सिमन्स एक हफ्ते तक उनके साथ रहीं। 'के' के जीवन का यह आख़िरी वास्तविक अवकाश था : कोई वार्ताएं नहीं, कोई परिचर्चाएं नहीं, कोई साक्षात्कार नहीं। और पहली दफा, जब वह आराम कर रहे थे तो उनके सिर ने उन्हें कोई तकलीफ नहीं पहुंचायी।

अक्टूबर के आख़िरी सप्ताह में भारत जाने से पहले मैंने उनसे अनुरोध किया कि वह अपना जर्नल लिखना जारी रखें। मुझे लग रहा था कि वह बोल ज़्यादा रहे थे और लिख बिलकुल नहीं रहे थे। लिखने के बजाय बोलना कहीं ज़्यादा आसान था, किन्तु उनकी वार्ताओं में हम प्रकृति के उन ख़ूबसूरत वर्णनों से वंचित रह जाते हैं। जैसा कि उन्होंने बताया कि हाथों के कांपने की वजह से लिखना अब उनके लिए बहुत कठिन हो गया था। मैंने उनको सुझाया कि जब वह अकेले हों तो कैसेट रिकॉर्डर में अपनी बात को टेप कर सकते हैं। उन्हें यह विचार पसंद आया, लेकिन उन्होंने कहा कि भारत में ऐसा करने के लिए उनके पास वक्त नहीं होगा।

भारत में सभी पुरानी जगहों पर उनकी वार्ताएं हुईं, इसके अलावा कलकत्ता में पहली बार उनकी चार वार्ताएं हुईं जो बहुत सफल रहीं। इस सबके अलावा बरसों से उनके चारों तरफ रह रहे लोगों के समूह के साथ उनकी अंतहीन परिचर्चाएं होती रहीं। इनमें शामिल थीं पुपुल जयकर, सुनंदा और पामा पटवर्धन तथा पामा के बड़े भाई अच्युत, और एक प्रतिष्ठित बौद्ध विद्वान पंडित जगन्नाथ उपाध्याय।[67] यूरोप और अमेरिका में 'के' बिस्तर में ही नाश्ता लेते थे और अगर कोई मुलाकात तय न हो तो वह देर सुबह तक नहीं उठते थे। जबकि भारत में वह अपने मित्रों के साथ नाश्ता करते थे और बातचीत तभी शुरू हो

जाया करती थी। किसी दार्शनिक या धार्मिक विषय में पैठने का भारत में यही पसंदीदा तरीका था कि कई व्यक्ति किसी परिचर्चा में शामिल हो रहे हैं और प्रश्न पूछ रहे हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि बौद्धिक समझ के वास्ते यह तरीका सबसे बढ़िया था, लेकिन इसमें एक बड़ी कमी जो खटकती थी वह थी अंतर्बोध की वे छलांगें जिनके द्वारा कुछ लोग 'के' की बातों को अधिक सहजता से ग्रहण कर पाते थे। 'के' स्वयं भारत की इन परिचर्चाओं से उत्साहित महसूस करते थे। अपने दर्शन में धीरे-धीरे, तर्क के साथ एक-एक कदम आगे बढ़ना उन्हें अच्छा लगता था। कही गयी हर बात पर प्रश्न करना, यह भी एक भारतीय दृष्टिकोण था। 'के' इससे पूर्णतया सहमत थे, क्योंकि उनकी दृष्टि में भी आस्था अथवा किसी के शब्दों को आंख मूंदकर स्वीकार कर लेना स्वबोध एवं सत्यान्वेषण के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा थी।

इस समय ऋषि वैली स्कूल में पुपुल जयकर की बेटी राधिका अब अध्ययन निदेशिका थीं। अमेरिका के एक विश्वविद्यालय से उन्होंने संस्कृत एवं बौद्ध साहित्य में पीएच.डी. की थी और कैनेडा के एक प्रोफेसर हंस हर्ज़बर्गर के साथ उनका विवाह हुआ था। नारायणन के साथ जो कि अभी भी स्कूल के प्रिंसिपल थे, वह काम कर रही थीं। जिस तरह स्कूल चल रहा था उससे 'के' खुश थे। भारत के विभिन्न हिस्सों से आए फीस देने वाले 340 विद्यार्थी उसमें पढ़ रहे थे। एक तिहाई संख्या लड़कियों की थी और दस फीसदी बच्चों को छात्रवृत्ति मिल रही थी। ऋषि वैली की गिनती भारत के श्रेष्ठ स्कूलों में हो रही थी।

फरवरी 1983 में ओहाय लौटने पर उन्होंने अपनी दैनंदिनी को जारी रखते हुए बोलकर लिखाना आरंभ किया। पहला अंश उन्होंने कमरे में अकेले रहकर बिस्तर में नाश्ता करने के बाद एक नये टेप रिकॉर्डर में टेप किया। इसके बाद उन्होंने अप्रैल की शुरुआत तक, हालांकि रोज़ाना नहीं, बोलकर टेप करना जारी रखा। ज़्यादातर अंश प्रकृति के वर्णन के साथ शुरू होते हैं और ऐसा आभास दिलाते हैं जैसे प्रत्येक दिन उनके लिए नितांत नया दिन था, ऐसा दिन जो पहले कभी नहीं रहा था। कइयों के लिए ये वर्णन उनके पूरे अस्तित्व को इस तरह गतिशील बना देते हैं कि वे उसमें अंतर्निहित शिक्षा के प्रति सहज और आंतरिक रूप से ग्रहणशील हो जाएं। अगले वर्ष मार्च में कमरे में अकेले रहकर उन्होंने तीन और अंश बोलकर टेप किए। उनकी मृत्यु को दो वर्ष और शेष थे। उनके व्यक्तिगत चिंतन के ये अंतिम अंश थे तथा सबसे आख़िरी प्रविष्टि मृत्यु के बारे में ही थी। वह वर्णन करते हैं कि कैसे वसंत की एक ख़ूबसूरत सुबह जब धूप निकली हुई थी सैर करते हुए उन्हें मार्ग में पड़ी हुई एक मृत पत्ती दिखाई पड़ती है जो 'पीली और सुर्ख लाल' थी। "कितनी ख़ूबसूरत थी वह पत्ती," उन्होंने कहा, "अपनी मृत्यु में इतनी सादा, इतनी सजीव, पूरे वृक्ष और उस ग्रीष्म के सौंदर्य और जीवंतता से भरपूर। अजीब बात है कि यह कुम्हलाई नहीं थी।"

वह बात जारी रखते हैं :

> ऐसा क्यों है कि मनुष्य इतनी दयनीयता के साथ मरता है? इतना दुखी होकर, बीमारी, बुढ़ापे, जीर्ण मन और जर्जर, कुरूप तन के साथ? वह इस पत्ती की भांति

सहजता व ख़ूबसूरती से क्यों नहीं मर पाता? क्या ख़राबी है हम मनुष्यों के साथ? इतने सारे चिकित्सकों, अस्पतालों, और दवाइयों के बावजूद, ऑपरेशन और जीवन की सारी वेदना-व्यथा के बावजूद हम लोग गरिमा, सरलता और मुस्कान के साथ मृत्यु का वरण करते क्यों नहीं दिखते?...जिस तरह बच्चों को लिखना-पढ़ना व गणित जैसे विषय सिखाए जाते हैं, जानकारियां इकट्ठी करने का सारा कारोबार सिखाया जाता है, वैसे ही उन्हें मृत्यु की महानता और गरिमा के बारे में सिखाया जाना चाहिए। उन्हें यह सिखाया जाना चाहिए कि मृत्यु कोई भयावह, दुख से भरी घटना नहीं है जिसका आख़िर में सामना करना पड़ता है बल्कि यह दैनिक जीवन का हिस्सा है, उसी तरह जैसे नीले आसमान को देखना, घास पर बैठे टिड्डे को देखना जीवन का हिस्सा है। मृत्यु को समझना हमारे सीखने में शामिल है, उसी प्रकार जैसे दांतों का आना और बचपन की बीमारियों का सामना करना। बच्चों में असाधारण जिज्ञासा होती है। यदि आप मृत्यु के स्वरूप को गहराई से समझते हैं तो बच्चों को यह बताने के लिए आपको उसके बहुत अधिक वर्णन में जाने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी, बल्कि आहिस्ता-आहिस्ता बिना कोई भय पैदा किये आप उन्हें समझाएंगे और यह महसूस कराएंगे कि जीना और मरना एक है...पुनर्जीवन जैसा कुछ नहीं होता, यह अंधविश्वास है। इस ख़ूबसूरत धरती पर हर चीज़ जीती है और मरती है, पैदा होती है और समाप्त होती है। जीवन की इस पूरी गति को समझने के लिए प्रज्ञा की ज़रूरत है, उस प्रज्ञा की जो विचार, ज्ञान और पुस्तकों पर आधारित नहीं है, बल्कि जो प्रेम और करुणा की संवेदना से उपजती है...उस मृत पत्ती को देखकर, उसके रंगों और समस्त सौंदर्य को महसूस करते हुए संभवतः हम स्वयं अपनी मृत्यु को, जीवन के आख़िर में नहीं बल्कि शुरुआत में ही, बहुत गहराई से समझ सकते हैं। मृत्यु कोई डरावनी घटना नहीं है जिससे बचकर रहा जाए, या जिसे हमेशा सुदूर भविष्य में रखा जाए; इसके साथ तो हर दिन, हर रात रहना होता है। और इसी के साथ निस्सीमता का एक असाधारण बोध होता है।[68]

19

समझने में विलंब नहीं करना चाहिए

अप्रैल 1983 में 'के' फिर न्यूयॉर्क गये। इस बार मेडिसिन स्क्वायर गार्डन के फेल्ट फोरम में उनकी वार्ताएं हुईं। यह हॉल कार्नेगी हॉल से बड़ा था। ईस्ट-वेस्ट जर्नल के जिन दो पत्रकारों ने उनका साक्षात्कार लिया उनकी टिप्पणी इस प्रकार थी—"हमारी मुलाकात एक विनम्र और संकोची व्यक्ति से हुई जिनसे मिलकर ऐसा लगा कि उनके पास अपार धीरज तो है ही, पर साथ ही उत्कटता और एक लक्ष्य का भाव भी है...उनकी स्पष्टता और अंतर्दृष्टिपूर्ण वक्तव्यों ने हमें कई बार निरुत्तर कर दिया और हमें ऐसा महसूस हुआ कि हमारे सामने सच में एक ऐसा मुक्त मानव है, जिसने बिना प्रयास किये, मेरे ख़याल से, एक किस्म की आध्यात्मिक परम स्वतंत्रता को हासिल कर लिया है—एक गहरी नैतिक एवं पावन जीवनदृष्टि जो कि रूढ़िगत आदर्शवादों या धर्मों से पूर्णतः स्वतंत्र है।"

न्यूयॉर्क की वार्ताओं के बाद ओहाय का सम्मेलन हुआ, जिसमें 'के' के ऊपर बनी एक रंगीन फिल्म दिखायी गयी। इस फिल्म का निर्माण ईवलिन ब्लाउ ने किया था जो अमेरिकी फाउंडेशन की ट्रस्टी भी हैं। चैलेंज ऑव चेंज नाम से बनी इस फिल्म को बनाने में उन्हें पूरे पांच साल लगे थे। इसके निर्देशक थे माइकल मेंदीत्सा और पार्श्वध्वनि अमेरिकी एक्टर रिचर्ड चैंबरलेन की थी। 'के' ने इस फिल्म को पूरा देखा जो कि अपने आप में बड़ी विलक्षण बात थी, कारण कि वह खुद को न कभी टेलीविज़न पर देखना पसंद करते थे और न ही रेडियो पर अपने साक्षात्कारों को सुनना—यहां तक कि अपनी पुस्तकों को भी वह नहीं देखते थे। उनको देखकर लगा कि उन्हें यह फिल्म पसंद आयी। स्विट्ज़रलैंड और भारत के ख़ूबसूरत दृश्यों को इसमें फिल्माया गया था। अमेरिका के कई शहरों में इसके कुछ बेहद सफल प्रदर्शन हुए।

जून में 'के' और मेरी ज़िंबलिस्ट ब्रॉकवुड पहुंचे। इसके तुरंत बाद ही डोरथी सिमन्स को दिल का दौरा पड़ा। हालांकि उनकी सेहत में अच्छा सुधार हो गया, फिर भी विद्यालय को चौदह सालों तक इतने बढ़िया ढंग से चलाने के बाद उसका पूरा भार अपने कंधों पर रखे रहना अब उनके लिए और संभव नहीं था। रिटायर होने के बाद वह ब्रॉकवुड में ही अपने पति के साथ रहती रहीं, जो खुद भी कुछ साल पहले रिटायर हुए थे।* बाद में एक

अमेरिकी युवक स्कॉट फोर्ब्स को स्कूल का प्रिंसिपल बनाया गया। स्कॉट का विवाह स्कूल में नृत्य की शिक्षा दे रही दक्षिण अफ्रीका की कैथी से हुआ था। पिछले करीब दस वर्षों से ब्रॉकवुड में मुख्य रूप से वीडियो रिकॉर्डिंग का प्रभारी रहा यह ऊर्जावान युवक काफी यात्राएं कर चुका था, कुछ समय पेरिस में रहा था और जिनेवा में एंटीक (पुरातन) वस्तुओं का छोटा-सा कारोबार कर चुका था। संयोग से एक बार गर्मियों में उसका सानेन जाना हुआ और कृष्णमूर्ति की वार्ता ने उसे मुग्ध कर दिया। कृष्णमूर्ति के लिए काम करते हुए उसने अपनी पूरी जीवन शैली बदल दी, लेकिन अपनी जीवंतता ज्यों की त्यों बनाए रखी। स्कॉट के प्रिंसिपल बनने के बाद वीडियो की ज़िम्मेदारी उसकी पत्नी ने संभाल ली।

1983 की सानेन गैदरिंग के बाद 'के' अभी गश्टाड में ही थे कि उनकी मुलाकात एक ऐसे व्यक्ति से हुई जो उनकी एक ऐसी इच्छा को पूरा करने वाले थे जिसे वे अपने हृदय में संजोए हुए थे। यह इच्छा थी ब्रॉकवुड में एक अध्ययन केंद्र ('स्टडी सेंटर') की स्थापना, जो स्कूल से बिलकुल स्वतंत्र हो और जहां लोग उनकी शिक्षा का अध्ययन करने के एकमात्र उद्देश्य से जा सकें। फ्रीडरिश ग्रोहे नाम के अधेड़ आयु के यह जर्मन सज्जन स्विट्ज़रलैंड में रह रहे थे और चार साल पहले ही अपने पारिवारिक व्यवसाय से—जिसकी बाथरूम और किचन की टोंटियां बनाने के क्षेत्र में अंतरराष्ट्रीय साख रही—निवृत्त हुए थे। 1980 में 'के' की एक पुस्तक (द इंपॉसिबल क्वेस्चन) पढ़ने के बाद उनके जीवन की धारा बदल गयी थी। स्विट्ज़रलैंड में एक 'के' स्कूल शुरू करने की उनमें चाह थी इसलिए टान्नेग में वह 'के' से मिलने आये। 'के' ने यह कह कर कि शिक्षकों को तलाश कर पाना कितना कठिन है, उनको ऐसा न करने की सलाह दी। ('के' ने उनसे पूछा कि क्या वह विवाहित हैं, और जब उन्होंने बताया कि नहीं, क्योंकि उनका संबंध-विच्छेद हो चुका था, 'के' ने उनकी बांह पकड़ कर कहा 'अच्छा है'।*) अगले वर्ष ब्रॉकवुड घूमने आने पर फ्रीडरिश ग्रोहे ने सुझाया कि स्कूल खोलने के बजाय वह 'स्टडी सेंटर' के निर्माण में आर्थिक मदद देना चाहेंगे। 'के' ने इस प्रस्तावका उत्साहपूर्वक स्वागत किया। 'स्टडी सेंटर' के लिए एक सुंदर जगह पसंद की गयी जो स्कूल बिल्डिंग के पास थी पर वहां से नज़र नहीं आती थी। इस जगह से दक्षिण की तरफ बिना किसी ओट के खेतों का दृश्य दिखाई देता था, जहां पर आगे चलकर किसी निर्माण की संभावना नहीं थी। 'के' ने स्कॉट फोर्ब्स को एक वास्तुकार ढूंढ़ने और निर्माणकार्य के लिए प्रशासनिक अनुमति हासिल करने की ज़िम्मेदारी सौंपी।

1983-84 की सर्दियों में भारत के अपने पूरे कार्यक्रम के बाद कुछ थके हुए ही 'के' फरवरी में ओहाय लौटे। यहां उनको ओहाय में मुख्य ओक ग्रोव स्कूल के पास खोले गए एक सैकेंड्री स्कूल की समस्याओं को निपटाना था। मार्च में न्यू मेक्सिको के लॉस एलमॉस में स्थित नेशनल लैबोरेटरी रिसर्च सेंटर के डॉ. एम. आर. राजू ने 'विज्ञान में सृजनशीलता' विषय पर आयोजित एक सिंपोज़ियम में भाग लेने के लिए उन्हें आमंत्रित किया। अमेरिका में आणविक अनुसंधान के लिए बने इस केंद्र ने 'के' का परिचय एक नये विचारोत्तेजक श्रोतावर्ग से कराया। 19 मार्च को प्रातः 8 बजे उन्होंने पूरे एक घंटे तक

करीब 700 वैज्ञानिकों को संबोधित किया। उनका विषय था कि जानकारी कभी भी सृजनात्मक नहीं हो सकती क्योंकि वह अधूरी है। उन्होंने अपनी बात इस तरह समाप्त की :

> निश्चय ही सृजन तभी संभव है जब विचार मौन हो... विज्ञान ज़्यादा-से-ज़्यादा जानकारी एकत्रित करने का प्रवाह है। 'ज़्यादा-से-ज़्यादा' एक माप-तौल है तथा विचार को मापा जा सकता है क्योंकि यह भौतिक प्रक्रिया है। जानकारी की अपनी एक सीमित अंतर्दृष्टि है, उसकी अपनी एक सीमित सृजनात्मकता है किंतु वह द्वंद्व लाती है। हम समग्र बोध की बात कर रहे हैं जहां पर स्व, 'मैं' और व्यक्तित्व प्रवेश करते ही नहीं हैं। इसके बाद ही सृजनशीलता नाम की कोई चीज़ अस्तित्व में आती है। बस इतनी ही बात है।

अगले दिन सुबह उन्होंने एक छोटे श्रोतासमूह के प्रश्नों के उत्तर दिये। इन श्रोताओं में केवल नेशनल लैबोरेटरी के सदस्य शामिल थे। पंद्रह प्रश्न उनको दिये गये जिनमें से उन्होंने केवल पहले और आख़िरी प्रश्न का उत्तर दिया। पहला प्रश्न था : 'सृजनशीलता क्या है? ध्यान क्या है?' इस प्रश्न के उत्तर में ही डेढ़ घंटे की निर्धारित समयावधि का ज़्यादातर हिस्सा निकल गया। इसमें उन्होंने पिछले दिन कही हुई ज़्यादातर बातें ही दोहराईं। ध्यान के बारे में उन्होंने कहा : "सचेतन ध्यान ध्यान नहीं है। हमें जो सिखाया गया है वह सचेतन, सप्रयास ध्यान ही है जिसमें हम आलथी-पालथी मारकर बैठ जाते हैं या लेट जाते हैं या कुछ विशेष वाक्यांशों को दोहराते भर हैं; यह तो जान-बूझकर ध्यान करने की चेष्टा है। वक्ता की दृष्टि में ऐसा ध्यान अर्थहीन है। वह कामना का ही हिस्सा है। मन शांत हो, यह कामना भी वैसी ही है जैसे एक अच्छे घर की चाहत या बढ़िया कपड़ों की इच्छा। सचेतन, चेष्टापूर्ण ध्यान अन्य प्रकार के ध्यान के लिए घातक है, अवरोध है।"

आख़िरी प्रश्न था : "यदि आप लैबोरेटरी के निदेशक होते और आपके ऊपर देश की रक्षा की ज़िम्मेदारी होती तब मौजूदा हालात को देखते हुए आप लैबोरेटरी की गतिविधियों और शोध को किस प्रकार का दिशा-निर्देश देते?" उनका उत्तर था :

> यदि मेरे पास ऐसे लोगों का एक समूह होता जो कहता, आइए, समस्त राष्ट्रवाद को, समस्त धर्मों को भुला दिया जाए और एक मानव के नाते इस समस्या का हल निकाला जाए, और बिना किसी विनाश के मिलकर जिया जाए, यदि हम पूर्णतया समर्पित लोगों के समूह की तरह जो लॉस एलमॉस में एकमात्र इसी उद्देश्य से एकजुट हुए हैं और जिनका सरोकार उन सारी चीज़ों से है जिनकी हम बात करते रहे हैं तब शायद कुछ नया संभव हो सकता है... किसी के भी पास सार्वभौम दृष्टि नहीं है, वैश्विक संवेदना नहीं है समस्त मानवता के लिए—केवल मेरे देश के लिए नहीं, जो कि बड़ी भयानक बात है! यदि आप वक्ता की तरह पूरे विश्व में जाएं और हालात देखें, तो आप जीवन-भर कराहते रहेंगे। शांतिवाद तो सैन्यवाद की प्रतिक्रिया मात्र है। यह वक्ता कोई शांतिवादी नहीं है। इन सारी बातों की बजाय आइए इस सबके कारण पर दृष्टि डालें; अगर हम सब मिलकर कारण को ढूंढ़ सकें

तो समस्या हल हो जाती है। लेकिन समस्या यह है कि सभी के पास कारण के बारे में अलग-अलग मत हैं और हर कोई अपने मत से, अपनी पुरानी निर्देशिकाओं से चिपका है।

श्रोता : सर, यदि मैं ऐसा कह सकूं तो मैं समझता हूँ कि आपने हमें विश्वास दिला दिया है।

'के' : मैं कोई विश्वास नहीं दिला रहा हूँ।

श्रोता : मेरे कहने का मतलब है कि जब हम वास्तव में इस सबको समझने की कोशिश करते हैं और उस दिशा में कुछ करने का प्रयास करते हैं तो हममें आवश्यक ऊर्जा की कुछ कमी सी लगती है... हमें सच में रोक क्या रहा है? हम यह देख सकते हैं कि घर में आग लगी हुई है, फिर भी हम उस आग को बुझाने के लिए कर कुछ नहीं पा रहे हैं।

'के' : हम सोचते हैं कि जिस घर में आग लगी हुई है वह वहां कहीं है, लेकिन वह तो यहीं है। सर, हमें सबसे पहले अपना घर ठीक करना होगा।[69]

अप्रैल में न्यूयॉर्क के फेल्ट फोरम में 'के' फिर बोले। इसके बाद यूनाइटेड नेशन्स की 'पाकेम इन तैरिस' सोसायटी के वह अतिथि वक्ता रहे। अपनी पिछली वार्ताओं में वह जो कुछ बोलते रहे थे उससे भिन्न उन्होंने यहां कुछ नहीं कहा, हालांकि उनके शब्द हर बार एक जैसे नहीं होते थे।[70]

वसंत में जब वह ब्रॉकवुड लौटे तो उन्होंने अपने कमरे में एक सी. डी. प्लेयर लगा हुआ पाया। यह उनके लिए बड़ा आनंददायक था। बीथोवन को वह सबसे अधिक सुनते थे और मोत्सार्ट उनकी दूसरी पसंद थे। समस्त शास्त्रीय संगीत से और भारतीय संगीत से, विशेषकर मंत्रोच्चार से, उन्हें प्रेम था। 'के' की मृत्यु के बाद स्कॉट फोर्ब्स ने मुझको लिखा था :

कई वर्षों तक मैं अक्सर उनके सोने के कमरे में जाया करता था जबकि वह नाश्ता कर रहे होते थे। उस वक्त वह संगीत सुना करते थे। बिस्तर में नाश्ते की ट्रे गोद में लिए वह बैठ जाते थे और चादर के नीचे उनके पैर बहुत ही आहिस्ता, लगभग अदृश्य तरीके से, संगीत पर नाचा करते थे। और जो वह सुन रहे होते थे मैं उसका कुछ अंश सुन लिया करता था, या आगे के वर्षों में, उनके साथ उस पूरे संगीत को सुनता था। इसका इस बात से कोई लेना-देना नहीं था कि वह एक बहुत बढ़िया स्टीरियो सिस्टम था; बल्कि महत्त्वपूर्ण बात थी सुनने की वह गुणवत्ता, योग्यता जो मेरी क्षमता से कहीं परे थी, लेकिन उनके साथ सुनने पर वह सहज-स्वाभाविक हो जाती थी।

शले टान्नेग दुर्भाग्य से बेच दिया गया था अतः सानेन गैदरिंग के दौरान उस जगह को अब किराये पर नहीं लिया जा सकता था। गश्टाड के ठीक बाहर एक दूसरा बंगला शोनरीड में लिया गया। वांदा स्कारावेल्ली और फोस्का ने टान्नेग की तरह इसे भी 'के' के लिए तैयार कर दिया। 'के' को जितना टान्नेग पसंद था, उतना यह पसंद नहीं आया।

रोज़ाना शाम की सैर को उन्होंने जारी रखा; उनकी इस सैर की राह एक जंगल से होकर नदी तक जाती थी लेकिन उन्हें टान्नेग तक कार से जाना पड़ता था। हर बार जब वह जंगल के पास पहुंचते थे तो पुकार कर कहते, 'क्या हम अंदर आ सकते हैं?'

उस साल सितंबर में भारत एवं अमेरिका से कुछ ट्रस्टी ब्रॉकवुड में एक अंतरराष्ट्रीय बैठक के लिए एकत्रित हुए। जब 'के' अमेरिका में थे तो स्कॉट फोर्ब्स ने एक वास्तुकार को ढूंढ लिया था जिसने न केवल 'स्टडी सेंटर' के नक्शे एवं रेखाचित्र तैयार कर लिये थे, बल्कि एक मॉडल भी बना लिया था क्योंकि 'के' के लिए नक्शों को पढ़ पाना संभव नहीं था। मॉडल को देखते ही उन्होंने उसे नापसंद कर दिया, उनकी दृष्टि में वह मोटल की तरह दिखता था। वहां मौजूद ट्रस्टी भी उनसे सहमत थे। उसी आर्किटेक्ट के साथ आगे बढ़ने के बजाय स्कॉट ने किसी और को ढूंढने का निर्णय लिया। किसी भी वास्तुकार के लिए यह चुनौती थी, एक ऐसी इमारत बना पाना जो मोटल का आभास न दे और जिसमें छोटे-छोटे बीस अटैच्ड बाथरूम वाले कमरे हों; भोजन कक्ष, पुस्तकालय, स्टाफ के लिए कमरे, रसोई और इन सबसे भी ज़्यादा महत्त्वपूर्ण एक 'शांत' कक्ष हो। 'के' ने लिखा था : "एक ऐसा कक्ष हो जहां आप ख़ामोश बैठने के लिए जाएं। उस कक्ष का उपयोग केवल इसी उद्देश्य के लिए हो... यह एक सुलगती भट्ठी की तरह होगा जो पूरे घर को ऊष्मा से युक्त रखेगी है...इसके न होने पर तो यह जगह एक गलियारा बन कर रह जाएगी जहां लोग आते-जाते रहेंगे, कुछ क्रियाकलाप करेंगे, बस।" उनका आग्रह था कि भवन के निर्माण में जो भी सामग्री इस्तेमाल हो वह श्रेष्ठ गुणवत्ता वाली हो; पूरे निर्माण में वह श्रेष्ठता का उच्चतम स्तर चाहते थे।

कई अन्य वास्तुकारों को आज़माने के बाद स्कॉट फोर्ब्स की नज़र संयोग से एक पत्रिका में कीथ क्रिश्लोव के बारे में छपे एक लेख पर गयी। इंग्लैंड में उनके द्वारा तैयार की गयी कोई इमारत नहीं थी, लेकिन विदेशों में उन्होंने जो काम किया था उसकी तस्वीरें उन्होंने स्कॉट को दिखाईं। उनका काम ज़्यादातर धार्मिक स्थलों के लिए था। अगले साल जून में क्रिश्लोव को 'के' से मिलने के लिए ब्रॉकवुड बुलाया गया। 'के' को तुरंत यह एहसास हो गया कि इस काम के लिए वही उपयुक्त व्यक्ति हैं—उन्हें यह एहसास उनके रेखाचित्रों से अधिक उनके व्यक्तित्व और वार्तालाप के कारण हुआ। हालांकि क्रिश्लोव वहां के नागरिक तथा रॉयल कॉलेज ऑव आर्ट के फैलो थे जहां वह पढ़ाते थे, फिर भी उनको इंग्लैंड में काम करने की इजाज़त नहीं थी। इसलिए एक अंग्रेज़ी फर्म 'ट्राइड' को उनकी योजनाओं को कार्यरूप देने के लिए बुलाया गया।

फरवरी, 1985 में इमारत की प्रस्तावित रूपरेखा की स्वीकृति के लिए दिया गया आवेदन निरस्त हो गया। मार्च में जब अपील हुई तो पता चला कि आवेदन में ही कहीं त्रुटि थी, अतः आवेदन और अस्वीकृति दोनों ही अमान्य हो गए। मई में दूसरा आवेदन दिया गया जिसको अगस्त में स्वीकृति तो मिल गयी, लेकिन विस्तृत नक्शे की स्वीकृति 26 फरवरी, 1986 को ही जाकर मिल पायी।

1984 के पतझड़ में मेरी ज़िंबलिस्ट दो दिनों के लिए ब्रॉकवुड से रोम गयीं। वह

अपनी इटैलियन परिचारिका से मिलने के लिए गयी थीं जो मालिबू में उनके लिए काम कर चुकी थी। लौटने पर 'के' ने उनसे कहा : "जब तुम बाहर होती हो, तो मेरे लिए बड़ा ही मुश्किल हो जाता है। समझने में तुम्हें विलंब नहीं करना चाहिए। हो सकता है मैं दस साल और जिऊं लेकिन तुम्हें हर चीज़ ग्रहण कर लेनी है।" इस समय वह प्रायः मेरी से कहा करते थे, "तुम्हें मुझसे ज़्यादा जीना है, ताकि इस व्यक्ति की तुम देखभाल कर पाओ।" यहां वह बिलकुल तटस्थ होकर अपनी ओर संकेत कर रहे होते थे। यह स्वाभाविक था कि इस समय वह एक बड़ी तत्परता का अनुभव कर रहे थे, ताकि युवा लोग उनके कार्य को उनकी मृत्यु के बाद आगे बढ़ाने के लिए तैयार हो सकें।

28 अक्टूबर, 1984 को मेरी ज़िंबलिस्ट के साथ 'के' दिल्ली पहुंचे। यहां उनको पुपुल जयकर के साथ एक हफ्ते तक रहना था। तीन दिन बाद उसी मार्ग पर रह रहीं श्रीमती इंदिरा गांधी की हत्या कर दी गयी। इस भयानक घटना ने हालांकि भारत में 'के' के शेष प्रवास को प्रभावित किया, इसके बावजूद उनकी राजघाट, मद्रास और बंबई की वार्ताओं में कोई विघ्न नहीं पड़ा और पहले ही की तरह ऋषि वैली के अपने तीन हफ्ते के प्रवास में वह रोज़ाना शिक्षकों एवं विद्यार्थियों से बात करते रहे। जैसा कि वह किया करते थे, बंबई से ओहाय जाते हुए उन्होंने फरवरी, 1985 में ब्रॉकवुड में चार दिन का विश्राम लिया। 17 फरवरी, 1985 को जब वह लॉस एंजिलिस के लिए रवाना हुए तब उनके पास जीने के लिए ठीक एक वर्ष बचा था।

ओहाय से सोलह मील दूर सांता पॉला में गेरी डोइच नाम के एक नये युवा डॉक्टर से 'के' ने मार्च में अपना सालाना चेक-अप कराया। 'के' पहले लॉस एंजिलिस में अपना चेक-अप कराते थे। वहां के डॉक्टर ने सलाह दी थी कि 'के' ओहाय के नज़दीक ही किसी डॉक्टर से अपना चेक-अप कराएं। तब मेरी के एक मित्र ने सांता पॉला के डॉक्टर डोइच के पास जाने की सलाह दी। 'के' तुरंत डॉ. डोइच से मिले। यही वह डॉक्टर थे, जो 'के' की आख़िरी बीमारी में उनकी चिकित्सा का भार लेने वाले थे।

---

* मॉन्टेग्यू सिमन्स का देहांत 1986 में हुआ, और डोरथी का 1989 में। 1989 में डोरिस प्रैट का भी निधन हो गया।

* फ्रीडरिश ग्रोहे को बाद में इंग्लैण्ड और भारतीय फाउंडेशन का ट्रस्टी बनाया गया।

20

मेरा जीवन पहले से तय है

सन् 1985 में 'के' की न्यूयॉर्क में वार्ताएं नहीं हुईं; कारण था कि लेखक और एक समय व्हाइट हाउस के व्याख्यान-लेखक रहे मिल्टन फ्रीडमन ने अप्रैल में वाशिंग्टन डी. सी. के कैनेडी सेंटर में 'के' की दो वार्ताओं का इंतज़ाम कर दिया था। इसके पूर्व 'के' फिर यूनाइटेड नेशंस की पाकेम इन तैरिस सोसायटी की चौदहवीं वर्षगांठ पर बोले। इस बार श्रोता कम थे और उनको आधे घंटे तक प्रतीक्षा करनी पड़ी कि उन्हें किस हॉल में बोलना है। वार्ता के बाद बाहर निकलने पर मेरी से उन्होंने कहा, "अब यूनाइटेड नेशन्स में और कोई वार्ता नहीं।"

वाशिंग्टन में यह पहला और आख़िरी मौका था जब 'के' को वहां बोलना था। हॉल में एक भी सीट खाली नहीं बची थी। एक नये, गंभीर और प्रबुद्ध श्रोतावर्ग को संबोधित करते हुए उन्होंने फिर अपनी अंतर्निहित शक्ति की ऊंचाइयों को छुआ। उन्होंने कुछ नया कहा हो, ऐसा नहीं था, बल्कि उनसे निकल रही जो एक कांति थी, उनकी आवाज़ में जो शक्ति और विश्वास था, उनकी भाषा में जो गूंज थी वह काम कर रही थी। दूसरी वार्ता में दुख के संबंध में एक बड़ा ही सुंदर अंश था :

> दुख के होने पर प्रेम नहीं रह पाता। जब आप दुख सहते हैं, जब आपको अपने ही दुख की चिंता होती है तब प्रेम कैसे रह सकता है?...क्या है दुख? क्या दुख आत्मदया है, खुद पर तरस? कृपया पता लगाएं। हम यह नहीं कह रहे हैं कि ऐसा ही है या ऐसा नहीं है...क्या दुख अकेलेपन के कारण आता है, तब आता है जब आप निहायत अकेले और अलग-थलग महसूस करते हैं?...क्या हम अपने भीतर के दुख को जैसा वह है वैसा देख सकते हैं, और उससे ज़रा भी इधर-उधर हुए बिना, भागे बिना उसके साथ रह सकते हैं, उसे संभालकर थामे रख सकते हैं? दुख उस व्यक्ति से अलग नहीं है जो दुख भोग रहा है। जो व्यक्ति दुख भोगता है वह उससे भाग जाना चाहता है, उससे दूर हट जाना चाहता है, किसी भी तरीके से उससे छुटकारा पाना चाहता है। लेकिन इस दुख को यदि आप ध्यानपूर्वक देखते हैं, जैसे आप एक ख़ूबसूरत बच्चे को निहारते हैं, उसे प्यार से पकड़ते हैं और उससे कभी दूर नहीं भागते, तब आप पाएंगे—यदि आप सच में गहराई से देख

> पाते हैं—कि दुख का अंत है। और जब दुख का अंत होता है तो उत्कटता आती है जो लालसा या इंद्रियजन्य उत्तेजना नहीं होती बल्कि उत्कटता मात्र होती है।[71]

पहली वार्ता से दो दिन पूर्व वाशिंग्टन पोस्ट में मायकल केरनन द्वारा लिया गया 'के' का एक लंबा साक्षात्कार प्रमुखता से छपा। 'के' के आरंभिक जीवन का संक्षिप्त विवरण देने के साथ-साथ केरनन ने 'के' के कुछ वक्तव्यों को उद्धृत किया, जैसे : "जब आप आसक्ति का पूर्ण अंत कर लेते हैं तब प्रेम होता है", 'अपने बारे में सीखने के लिए, स्वयं को समझने के लिए, समस्त सत्ता-प्रामाण्य को एक तरफ रख देना होता है...किसी से भी, इस वक्ता से भी, सीखने के लिए कुछ भी नहीं है...वक्ता के पास आपको सिखाने के लिए कुछ नहीं है। यह वक्ता बस एक दर्पण का काम कर रहा है, जिसमें आप स्वयं को देख सकते हैं। और जब आप स्वयं को स्पष्ट रूप से देख लें तो दर्पण को एक तरफ रख सकते हैं।"

एक अन्य साक्षात्कार में 'के' से पूछा गया : "यदि कोई श्रोता आपकी बातों को हृदय से ग्रहण कर लेता है और सच में बदल जाता है, तब वह करेगा क्या?" उनका उत्तर था : "यह एक गलत सवाल है। आप बदलिए तो। तब देखिए क्या होता है।" और, 18 अप्रैल को द वॉइस ऑव अमेरिका के रेडियो प्रसारण में जब उनसे पूछा गया कि अमेरिका के धार्मिक पुनर्जागरण के बारे में उनका क्या विचार है, उनका जवाब था : "यह धार्मिक पुनर्जागरण कतई नहीं है। क्या है पुनर्जागरण? जो बीत चुका है, मर चुका है, उसे फिर से जाग्रत करना? मेरा आशय है कि आप एक अर्द्धमृत देह को, खूब सारी धार्मिक औषधियां डालकर, फिर से 'जीवित' कर सकते हैं, लेकिन उसके बाद भी वही पुरानी देह रहेगी। धर्म यह नहीं है।" इसी साक्षात्कार में आगे उन्होंने कहा :

> यदि मानव बुनियादी तौर पर नहीं बदलता है, मूलभूत रूप से अपने भीतर एक परिवर्तन नहीं ले आता—किसी ईश्वर के द्वारा या प्रार्थनाओं के द्वारा नहीं, जो कि बहुत ही बचकानी व अपरिपक्व बातें हैं—तो हम एक-दूसरे का विनाश करने जा रहे हैं। यह मनोवैज्ञानिक क्रांति अभी, इसी क्षण संभव है, न कि एक हज़ार साल बाद। हज़ारों साल तो हमने बिता दिये हैं और आज भी हम बर्बर, असभ्य ही हैं। इसलिए अगर हम अभी नहीं बदलते तो हम कल भी, और हज़ारों कल के बाद भी बर्बर, असभ्य ही रहेंगे...यदि आज मैं युद्ध को नहीं रोकता हूँ तो कल भी युद्ध करता रहूंगा। सीधे-सादे शब्दों में कहा जाए तो भविष्य इसी क्षण है।

खेद की बात है कि वाशिंगटन के चरमोत्कर्ष के बाद 'के' को अपनी वार्षिक वार्ताओं को जारी रखते हुए ओहाय, सानेन, ब्रॉकवुड और भारत जाना पड़ा। नब्बे वर्ष की आयु में उनकी वार्ताओं में कुछ गिरावट आ जाना आश्चर्य की बात नहीं थी। शोनरीड का बंगला पिछले साल उन्हें इतना नापसंद रहा था, इसलिए फ्रीडरिश ग्रोहे ने उस वर्ष की सानेन गैदरिंग के लिए रूझमों स्थित अपना फ्लैट उन्हें रहने के लिए दे दिया था। गश्टाड से लगभग पांच मील दूर यह फ्लैट उसी घाटी में बना था। मेरी के साथ वह इसमें रहे, जबकि वांदा और डॉ. परचुरे उसी बंगले में किराये पर लिए गए एक दूसरे बड़े फ्लैट में रहे।

फोस्का को आख़िरकार काम छोड़ना पड़ा (उसकी मृत्यु अगस्त में नब्बे साल की आयु में हुई), और ब्रॉकवुड में रसोई के प्रभारी रहे रमन पटेल उन लोगों की देखभाल के लिए आ गए। शोनरीड की तरह रूज़्मों से भी 'के' शाम की सैर के लिए टान्नेग तक गाड़ी से जाया करते थे। पहले दिन सैर के लिए जाने पर वह अकेले जंगल में यह जानने के लिए आगे निकल गए कि 'हमारा वहाँ स्वागत है कि नहीं'।

वार्ताएँ बहुत ही बढ़िया मौसम में हुईं लेकिन 'के' का स्वास्थ्य इस दौरान ठीक नहीं रहा। एक शाम वह इतना बीमार महसूस कर रहे थे कि उन्होंने मेरी से कहा, "लगता है मेरा समय आ गया है।" यात्राओं में कटौती करने के उद्देश्य से उन्होंने इन वार्ताओं के दौरान हो रही ट्रस्टियों की अंतरराष्ट्रीय बैठक में यह सुझाव दिया कि सानेन में अगली गर्मियों के सम्मेलन के बाद यह आयोजन सानेन के बजाय ब्रॉकवुड में किया जाए। किंतु वार्ताएं समाप्त होने से पहले कुछ ट्रस्टियों ने रूज़्मों जाकर उनसे बहुत ही दृढ़तापूर्वक आग्रह किया कि वह इसके बाद अब एक भी सम्मेलन सानेन में न करें। इस सुझाव पर 'के' ने गहराई से विचार किया और वह तैयार हो गए। डॉ. लिएश्ती ने, जो उस समय वहां पर थीं, और डॉ. परचुरे ने, चिकित्सकीय आधार पर इस निर्णय का भरपूर अनुमोदन किया। अगले दिन सम्मेलन में इसकी घोषणा कर दी गयी।

25 जुलाई की आख़िरी वार्ता में 'के' ने बड़ी ही भावप्रवणता के साथ कहा : "हमने यहां बहुत ही शानदार दिन बिताए, ख़ूबसूरत सुबहें और शामें बितायीं, लंबी छायाओं, गहरी नीली घाटियों, साफ नीले आसमान और हिम के साथ हम यहां पर रहे। एक पूरा ग्रीष्म ऐसा कभी नहीं रहा। अब ये पहाड़, ये घाटियां, ये वृक्ष और नदी हमें अलविदा कह रहे हैं।"

यह संयोग ही था कि उस साल मार्क एडवर्ड्स को सानेन गैदरिंग के फोटोग्राफ लेने के लिए बुलाया गया था। चौबीस साल के अंतराल के बाद सानेन की आख़िरी गैदरिंग को —टेंट लगाने से लेकर वार्ताओं के समाप्त होने तक—रिकॉर्ड करने के लिए मार्क का वहां पहुंचना सौभाग्यशाली संयोग ही कहा जाएगा।[72] जब मार्क रूज़्मों के बंगले पर 'के' का फोटोग्राफ खींचने के लिए गए, तो उनका ध्यान तुरंत मार्क के नये निकोन एस.ए. कैमरे पर गया, पहले वह लाइका इस्तेमाल करते थे। चूंकि नये कैमरे में उस वक्त कोई फिल्म नहीं थी मार्क ने कैमरे का पिछला हिस्सा खोलकर नया डिज़ाइन किया गया शटर उनको दिखाया। कैमरा अपने हाथों में लेकर उन्होंने मार्क से पूछा कि क्या वह इसे खिड़की के पास ले जा सकते हैं। वहां बड़ी देर तक वह इस ख़ूबसूरत यंत्र को बहुत ही ध्यान से निहारते रहे।

बाकी गर्मी-भर उनके सामने एक दुविधा-सी रही और गैदरिंग के बाद भी वह रूज़्मों में ही ठहरे रहे। यात्राएं उनके लिए अब बहुत कष्टकारी हो रही थीं, फिर भी एक जगह पर लंबे समय तक वह नहीं रह सकते थे। वह इतने अधिक संवेदनग्राही हो गए थे कि उन्हें लगता था कि यदि वह लंबे समय तक कहीं रुके तो लोग अपना ध्यान उन पर केंद्रित करने लगते हैं जो कि उनके लिए असह्य था। इसके अतिरिक्त, वार्ताएं करना उन्हें सतत

जारी रखना था। वार्ताएँ उनके लिए उनके जीने का औचित्य थी। किसी ऐसे व्यक्ति की उन्हें बेहद ज़रूरत थी जो उनको चुनौती दे सके, ताकि स्वयं के भीतर और भी गहराई से जाने की उनको नूतन प्रेरणा मिल सके। उन्होंने कहा कि अब ऐसा कोई नहीं कर पा रहा है। डेविड बोह्म या पंडित जगन्नाथ उपाध्याय के साथ वह अब और आगे नहीं बढ़ सकते। जब भी वह न्यूयॉर्क जाते थे तो डॉ. शेनबर्ग उनके लिए मनोवैज्ञानिकों का सम्मेलन आयोजित करते थे, अब वह भी ब्रॉकवुड में वैज्ञानिकों के सम्मेलन की तरह ही नीरस होने लगा था। पिछले कुछेक वर्षों में उनकी बातचीत डॉ. जोनस साल्क से, जिन्होंने पोलियो वैक्सीन की खोज की थी, प्रोफेसर मौरिस विल्किन्स से, लेखिका आयरिस मर्डोक जैसे लोगों से हुई थी, इसके अलावा बहुत से लोगों ने उनके साक्षात्कार लिए, जिनमें टेलीविजन पर बर्नार्ड लेविन द्वारा लिया साक्षात्कार भी शामिल है। उनका साक्षात्कार लिया था। लेकिन इनमें से कोई भी उनके सामने कोई नयी प्रेरणा या चुनौती नहीं रख पाया था। कोई व्यक्ति जितना ज़्यादा विद्वान था, जितना अधिक उसने पढ़ रखा था, जितनी अच्छी उसकी स्मृति थी, जितना ज़्यादा उसका मस्तिष्क दूसरों के ज्ञान से अटा पड़ा था, 'के' को उस तक अपनी बात पहुंचाने में उतनी ही कठिनाई का सामना करना पड़ता था। उनका साक्षात्कार लेने वाले उनकी तुलना अन्य धार्मिक शिक्षकों या दार्शनिकों से करने की कोशिश करते थे ताकि उन्हें किसी खाने में रखा जा सके। अपने पूर्वाग्रहों एवं बुद्धिचातुर्य से तौले बिना 'के' की बातों को सुन पाना उनके लिए असंभव जान पड़ता था।

भारत में उस साल वह अपना कार्यक्रम संक्षिप्त रखना चाहते थे और 1986 में अमेरिका में केवल एक बार वार्ताएं करना चाहते थे। टोरंटो में जहां वह पहले कभी नहीं गए थे वार्ताएं करने का उन्होंने विचार किया, लेकिन उन्हें डर था कि अगर उनका स्वास्थ्य खराब हुआ तो उन्हें वहां की वार्ताएं रद्द करनी पड़ सकती हैं। इस समस्या का हल ढूंढने के लिए रूझमों में उन्होंने मेरी से लंबी बातचीत की। एक ग्रीक दंपति का पत्र भी आया था जिसमें लिखा था, कि 'के' और मेरी एक ग्रीक आयलैंड में आकर उनके साथ रहें। यह निमंत्रण उनके मन को लुभा रहा था और नक्शे में भी उन्होंने उस द्वीप को खोज निकाला था, लेकिन तभी उनको ख़याल आया कि क्या वहां धूप से बचाव का पर्याप्त इंतज़ाम होगा क्योंकि एक बार उनको सनस्ट्रोक लग चुका था तथा धूप में चलना या बैठना उनके लिए असहनीय था।

रूझमों में रहते हुए ही एक दिन उन्होंने मेरी से कहा, "वह निगरानी रख रहा है।" मेरी ने नोट किया : "उनका बोलना कुछ इस प्रकार है जैसे कोई निश्चय कर रहा हो कि उनके साथ क्या होना है। 'वह' निर्णय लेगा कि कब उनका कार्य समाप्त हो गया है, और इस प्रकार उनका जीवन भी।" एक और दिन यात्राओं के कार्यक्रम पर चर्चा करते हुए मेरी ने यह बातचीत नोट की :

> 'के' : मस्तिष्क पर शारीरिक असर की यह बात नहीं है। यह कुछ और ही है। मेरा जीवन पहले से तय है। उसी से मुझे पता चलेगा कि कब मेरे जाने का वक्त आ

गया, कब मेरी मृत्यु होनी है। वही मेरे जीवन का निर्धारण करेगा। किंतु मुझे यह ध्यान रखना पड़ेगा कि मैं 'उसके' साथ यह कहकर दख़लन्दाज़ी न करूं कि मुझे अब बस दो वार्ताएं और करनी हैं।

मेरी : आपको एहसास है कि वह कितना वक्त आपको और देगा?

'के' : मुझे लगता है दस साल और।

मेरी : आपका मतलब दस साल आप बोलेंगे?

'के' : जब मेरा बोलना बंद हो जाएगा, तब सब समाप्त हो जाएगा। लेकिन मैं इस शरीर को थकाना नहीं चाहता। मुझे बस कुछ विश्राम की ज़रूरत होगी, और कुछ नहीं। एक ऐसा स्थान जहां मुझे कोई नहीं जानता हो। पर दुर्भाग्य से लोग मेरे बारे में जान जाते हैं।

एक बार फिर मेरी को उन्होंने कहा कि उसे उनके बारे में एक किताब लिखनी चाहिए। जैसे कि उनके साथ रहने के क्या मायने थे, वह क्या बोलते थे आदि। उन्होंने एक बात और मेरी को लिखवाई : "मैं जो बोलता हूँ उससे यदि कोई आहत होता है, तो इसका अर्थ है कि उन्होंने शिक्षा को ठीक से नहीं सुना।"

अर्ना लिलिफेल्ट के कैलिफोर्निया लौटने से पहले, जो कि अंतरराष्ट्रीय बैठक में भाग लेने आयी थीं, 'के' ने उनसे और मेरी से कहा कि वे दोनों यह सुनिश्चित कर लें कि जब वह ओहाय में हों तो उनके पास करने के लिए कुछ हो। वहां वह चुपचाप बैठने के लिए नहीं जा रहे हैं, पर साथ ही ऐसा भी न हो कि उन्हें खुश करने के लिए कुछ इंतज़ाम किया जाए : "जो आवश्यक लगे बस वही किया जाए।" अगले दिन जंगल में भ्रमण करते हुए वह बोले, "वह प्राणशक्ति सानेन से जा चुकी है, शायद इसलिए मैं इतना असहज अनुभव कर रहा हूँ। वह ब्रॉकवुड चली गयी है।"

वांदा स्कारावेल्ली हमेशा की तरह गैदरिंग के समय फ्लोरेंस चली गयी थीं। रूझमों से 'के' की विदाई से एक दिन पहले वह वापस आ गयीं। उन्होंने 'के' को काफी समय के लिए विश्राम करने की सलाह दी, और कहा कि अगली गर्मियों में वह स्विट्ज़रलैंड की बजाय इटली चले जाएं। 'के' अचानक प्रसन्नचित्त और उत्साहित हो उठे। "हम फ्रेंच आल्प्स या इटली के पहाड़ों पर जा सकते हैं," उन्होंने मेरी से कहा। वह फ्लोरेंस, वेनिस और रोम भी जाना चाहते थे। 12 अगस्त को वह इंग्लैंड के लिए रवाना हुए और वांदा को आखिरी बार अलविदा कहा।

ब्रॉकवुड पहुंचने पर 'के' अत्यधिक थके हुए थे, इतने थके हुए कि एक दिन वह व्यायाम भी न कर सके जो कि बड़ी विरल बात थी। मेरी को उन्होंने बताया कि सानेन गैदरिंग के समय से उनके भीतर कुछ चल रहा है और 'यदि कुछ है जो 'के' के साथ जो कुछ भी होना है उसके संबंध में सभी निर्णय लेता है तो यह अद्‌भुत है' मेरी ने उनसे पूछा कि क्या उन्हें अपने व्यवहार में हो रहे कुछ परिवर्तनों का आभास है, जैसे, "थोड़ा रूखापन जो कि आपके संदर्भ में बड़ी असामान्य बात है।" 'के' ने मेरी से पूछा, "क्या मैं औरों के प्रति रूखा हूँ?" मेरी ने कहा, "नहीं।" "सिर्फ तुम्हारे प्रति?" उन्होंने पूछा।

"हां"—मेरी का जवाब था। उन्होंने कहा कि बिना सजगता के वह कुछ भी नहीं करते; वह इसलिए कठोर रहे कि वह चाहते थे कि मेरी में बदलाव की तत्परता आए। "मैं तुमको एक नया मस्तिष्क देना चाहता हूँ," उन्होंने कहा। किंतु एक पखवारे बाद उन्होंने मेरी को बताया कि वह अपने चिड़चिड़ेपन का निरीक्षण करते रहे हैं। 'या तो मैं बूढ़ा हो रहा हूँ या ऐसी मेरी आदत पड़ गयी है (मेरी को कुरेदने की) और यह मेरी गलती है जिसे बंद होना चाहिए। मेरा शरीर अतिशय संवेदनशील हो गया है। अधिकांश समय मेरी दूर निकल जाने की इच्छा होती है और मुझे ऐसा बिलकुल नहीं करना चाहिए। मुझे इससे निपटना ही है। यह अक्षम्य है।" किसी और दिन वह मेरी से बोले, "मुझे गंभीर रूप से बीमार नहीं पड़ना चाहिए। यह देह बात करने के लिए ही जीवित है।" उनकी शारीरिक शक्ति निश्चित ही जवाब दे रही थी। उनकी सैर का समय भी कम होता जा रहा था। पर इस सबके बावजूद वह 'असाधारण ध्यान' से गुज़र रहे थे जिसका सीधा तात्पर्य था कि वह 'अन्य', अब इस 'अन्य' ('द अदर') का जो भी मतलब हो, उनके साथ था।

बड़े ही शानदार मौसम में 24 अगस्त को ब्रॉकवुड का सम्मेलन शुरू हुआ। तीसरी वार्ता के दिन एक फिल्म के निर्माण के लिए पेशेवर कैमरा टीम वहां पर थी। उनके पास क्रेन भी थी जिससे वह पूरे दृश्य को कैमरे में कैद कर सकते थे। द रोल ऑव द फ्लावर नाम की यह फिल्म टेम्स टेलीविज़न पर 19 जनवरी, 1986 को दिखाई गयी। पूरे सम्मेलन को ध्यान में रखकर देखने पर उसे बेहतर फिल्म तो नहीं कहा जा सकता था, किंतु फिल्म के अंत में 'के' का जो साक्षात्कार था वह कुछ विशेष होते हुए भी काफी छोटा था।

'के' को अब यह महसूस हो रहा था कि उन्होंने ब्रॉकवुड का घर 'व्यवस्थित' कर दिया है किंतु भारत में यह होना बाकी है जिसको लेकर वह कुछ आशंकित भी थे और उत्कंठित भी। एक सुबह लंदन जाने के लिए पीटर्सफील्ड स्टेशन पर गाड़ी का इंतज़ार करते समय मेरी को उन्होंने बताया कि स्कॉट फोर्ब्स ने उनसे पूछा था कि वह कितने दिन और जीवित रहेंगे। उन्होंने जवाब दिया था कि वह जानते हैं, लेकिन बताएंगे नहीं।

"क्या आप सच में जानते हैं?"—मेरी ने पूछा। आगे की बातचीत :

'के' : मुझे लगता है कि मैं जानता हूँ। मुझे आभास है।

मेरी : क्या आप मुझे बताना चाहेंगे?

'के' : नहीं, वह ठीक नहीं होगा। मैं किसी को नहीं बता सकता।

मेरी : क्या समय का कुछ धुंधला संकेत भी नहीं जाना जा सकता?

'के' : स्कॉट ने मुझसे पूछा था कि क्या ब्रॉकवुड का सेंटर बन जाने तक मैं रहूंगा। मैंने कहा, मैं रहूंगा। (इस सेंटर का निर्माण 1987 के सितंबर माह से पहले पूरा नहीं हो सका था।)

मेरी : क्या हमें इस विचार के साथ रहना होगा कि 'के' किसी भी क्षण जा सकते हैं?

'के' : नहीं, ऐसा नहीं है; यह अभी कुछ समय तक नहीं होने वाला है।

मेरी : कितने समय का आपको पता है?

'के' : लगभग दो साल।

फोर्टनम में लंच करते हुए उस दिन 'के' ने मुझसे भी कहा कि वह अपनी मृत्यु का समय जानते हैं, लेकिन किसी को बतला नहीं सकते। मैंने यह निष्कर्ष निकाला कि दो या तीन साल में ऐसा संभव है, हालांकि उस दिन वह इतने चुस्त-दुरुस्त और फुरतीले नज़र आ रहे थे तथा आयु के स्पर्श के परे इतने ख़ूबसूरत दिख रहे थे कि दस साल का समय आसानी से माना जा सकता था। वृद्ध तो वह ज़रा भी प्रतीत नहीं हो रहे थे बल्कि एक अनश्वर देव-पुरुष जैसे लग रहे थे। वह सदा की तरह सतर्क थे, वैसी ही उत्सुकता के साथ रेस्टोरेंट में चारों ओर लोगों का निरीक्षण कर रहे थे।

पतझड़ में स्कॉट फोर्ब्स को उन्होंने अपने कुछ योगाभ्यास सिखाने शुरू किए। वह कड़े शिक्षक थे। स्कॉट को उनसे बहुत कम आयु के व्यक्ति में भी अगर इतना लचीलापन नज़र आ जाता, तो उसके लिए बड़ी असाधारण बात होती। हालांकि अब वह शीर्षासन नहीं करते थे जिसे वह वर्षों से करते आए थे। अपने स्कूल में किसी शिक्षक से 'के' क्या अपेक्षा करते हैं, इस संबंध में टेप रिकॉर्डर पर उन्होंने स्कॉट से बातचीत की। उन्होंने स्कॉट से पूछा कि मुख्य रूप से स्कूल के लिए उत्तरदायी शिक्षकों को, बौद्धिक रूप से ही सही, क्या इस बात का एहसास है कि वह कह क्या रहे हैं? स्कॉट ने उत्तर दिया कि उन्हें उस 'अन्यत्व' का भान है जो यहां मौजूद है। इसके बाद उन्होंने जानना चाहा कि स्वयं स्कॉट में क्या हो रहा है; 'के' के बारे में उसका क्या भाव है? 'के' की शिक्षा और उस सारे कार्य के प्रति जो अमेरिका, भारत एवं ब्रॉकवुड में चल रहा है उसका क्या दृष्टिकोण है? वह, स्कॉट, ब्रॉकवुड में क्यों है? शिक्षा से उसका संपर्क क्या सिर्फ 'के' के कारण है? क्या वह 'के' पर निर्भर है? यदि कल 'के' की मृत्यु हो जाती है तब "क्या वह सौरभ, वह झोंका या वह एहसास जिसके संपर्क में आपका आना हुआ वह समाप्त हो जाएगा या वह और खिलेगा, विकसित होगा और बढ़ेगा?...क्या वह अपने से खिलेगा? किन्हीं परिस्थितियों पर निर्भर नहीं होगा? एक बार जब वह खिल गया तो उसको कोई भी नष्ट नहीं कर सकता है। विभिन्न परिस्थितियों से गुज़रने के बाद भी वह वहां सदा रहेगा।" स्कॉट ने जवाब दिया कि यह "अभी तक ठोस नहीं हुआ है।"

'के' ने जैसे सावधान करते हुए कहा, " 'अभी तक' शब्द का प्रयोग न करें। इसका अर्थ है समय। क्या आप उस चीज़ को ठोस और शक्तिशाली होने देंगे, गहरे जड़ जमाने देंगे, खिलने देंगे? या वह सब परिस्थितियों पर निर्भर करेगा?" उन्होंने अपनी बातचीत इस प्रकार जारी रखी :

स्कॉट : नहीं, सर! मैं वह हर चीज़ करूंगा...

'के' : नहीं, नहीं, सर! आपको नहीं करना है। वह स्वयं, वह बीज स्वयं, जैसे गर्भ में कार्य करता है कार्य करेगा, आपको कुछ भी नहीं करना है। वह स्वयं विकसित होगा। वहां पर वह है। वह विकसित होने ही वाला है। क्या स्कॉट को पता है कि बीज वहां पर मौजूद है? क्या स्कॉट अत्यधिक क्रियाकलाप से, बहुत

अधिक संगठन की गतिविधियों से उस बीज को खिलने से रोक रहा है, खिलने के लिए उसके पास पर्याप्त वायु नहीं आने दे रहा है? सामान्य तौर पर यही होता है कि संगठन उस चीज़ का गला घोंट देते हैं...आपको यह पक्का पता होना चाहिए कि बीज आपके भीतर है या नहीं, विचार के द्वारा कल्पित वह नहीं होना चाहिए। यदि बीज शक्तिशाली है तो आपको इसके बारे में कुछ भी नहीं करना है...आपके भीतर कोई द्वंद्व होगा ही नहीं। उनमें (विद्यार्थियों में) द्वंद्व हो सकता है पर आपमें नहीं होगा...वे अपने मत, निष्कर्ष आगे रख सकते हैं, पर आपके पास निष्कर्ष नहीं होंगे...आपको उन्हें सुनना होगा, उनमें से प्रत्येक को सुनना-समझना होगा कि वह क्या कह रहे हैं, स्कॉट के रूप में या अपनी पृष्ठभूमि के साथ प्रतिक्रिया नहीं करनी होगी बल्कि बहुत, बहुत ध्यान से उन्हें सुनना होगा...क्या आप अपनी पृष्ठभूमि से स्वतंत्र हो सकते हैं? बहुत कठिन है यह कर पाना...इसके लिए आपको अपनी पूरी ऊर्जा लगानी होगी...पृष्ठभूमि से मतलब है आपकी पूरी अमेरिकी शिक्षा, अमेरिकी अभ्यास और तथाकथित संस्कृति...इस पर चर्चा करें, इसे तौलें, साथ मिलकर सलाह-मश्वरा करें, केवल यह न कहें, 'अच्छा, मुझे अपनी पृष्ठभूमि से छुटकारा पाना है'—जो कि आप कभी नहीं कर पाएंगे...आप पृष्ठभूमि के प्रति सजग हो सकते हैं और उसे प्रतिक्रिया करने से, हस्तक्षेप करने से रोक सकते हैं। मैं समझता हूँ कि यहां आपको सूझ-बूझ के साथ काम करने की आवश्यकता होगी क्योंकि आपको इस जगह को चलाना है। आपमें ऊर्जा है, शक्ति है। इसे बनाए रखिए। इस भार के चलते वह धीरे-धीरे मुरझा न जाए।[73]

'के' इस बात को लेकर बड़े चिंतित थे कि संगठन और स्कूलों की व्यस्तताएं शिक्षा को निगल सकती हैं। फाउंडेशन को एक साथ लाने का काम संगठन के द्वारा संभव नहीं होगा। मेरी और स्कॉट को उन्होंने कहा, "एक करने वाला तत्त्व प्रज्ञा ही होना चाहिए। वास्तविक अर्थ में स्वतंत्र होना; और वह स्वतंत्रता ही प्रज्ञा है। प्रज्ञा हम सभी में समान है और वही हमें साथ ला सकेगी, न कि संगठन। यदि आप इस चीज़ का महत्त्व देखते हैं कि हममें से प्रत्येक को स्वतंत्र होना है और उस स्वतंत्रता का अर्थ है प्रेम, परवाह, ध्यान, सहयोग एवं करुणा—तब वह प्रज्ञा ही ऐसा तत्त्व होगी जो हम सबको एक साथ लाएगी।" मेरी से उन्होंने यह लिखने के लिए भी कहा : "स्वतंत्रता ('फ्रीडम') के बिना स्वाधीनता ('इंडिपेंडेंस') का कोई अर्थ नहीं है। यदि आपके पास स्वतंत्रता है तो आपको स्वाधीनता की आवश्यकता नहीं होगी।"

21 सितंबर को स्टाफ मीटिंग में उन्होंने पूछा : "आप कैसे किसी विद्यार्थी को तत्क्षण, बिना समय लिये, यह दिखा पाएंगे कि स्वार्थपरता ही द्वंद्व का मूल है? केवल दिखा देना ही नहीं बल्कि तत्क्षण परिवर्तन का होना?" वह आगे बोलते गए कि ऋषि वैली जो उनका सबसे पुराना विद्यालय है, उसमें से सैकड़ों विद्यार्थी पास होकर निकले हैं, लेकिन उनमें से एक में भी परिवर्तन नहीं हुआ। मीटिंग के बाद जब वह अकेले थे तो मेरी ने उनसे पूछा कि जब इतने वर्षों में एक में भी बदलाव नहीं आया, तो फिर विद्यार्थियों को

रखने का मतलब क्या है? यदि उनके सारे प्रभाव के बावजूद कोई विद्यार्थी नहीं बदला तो हम बाकी लोग, जो ज़ाहिर है कि खुद भी नहीं बदले हैं, कैसे उन विद्यार्थियों में परिवर्तन ला सकते हैं? मेरी ने पूछा, "जब आपसे यह नहीं हुआ तो कोई गुंजाइश है कि हम यह कर पाएंगे?" "मुझे नहीं मालूम," उनका जवाब था; यह उन्होंने कुछ मज़ाक के लहज़े में कहा। स्पष्ट था कि वह इस गंभीर विषय को आगे नहीं बढ़ाना चाहते थे।

'के' की मृत्यु के बाद ब्रॉकवुड स्कूल फलता-फूलता रहा है। 'के' के भारतीय विद्यालयों की तुलना में यह काफी छोटा है। इसमें मात्र साठ विद्यार्थियों के रहने की व्यवस्था है जिनमें आधे लड़के हैं और आधी लड़कियां, जिनकी आयु चौदह से बीस बरस के बीच है। वे सभी बीस अलग-अलग देशों से हैं। यहां एक विशेष छात्रवृत्ति कोष भी है। इनमें से कुछ विद्यार्थी ब्रॉकवुड में रहते और काम करते हैं, तथा ओपन यूनिवर्सिटी के पाठ्यक्रमों को चुन लेते हैं।

अध्ययन केंद्र के विस्तृत नक्शे के साथ कीथ क्रिश्चलो अक्टूबर में ब्रॉकवुड आए। दो अलग-अलग रंगों में हाथ की बनी ईंटों के नमूने और छत पर लगने वाली हाथ की ही बनी टाइल का नमूना वह अपने साथ लाए थे। सर्वसम्मति से इन्हें पसंद कर लिया गया। हाल ही में 'के' ने एक वीडियो में बताया था कि वह किस प्रकार का केंद्र चाहते हैं :

> यह एक धार्मिक केंद्र हो, एक ऐसा केंद्र जहां लोग यह महसूस करें कि यहां पर कुछ ऐसा है जो बनावटी नहीं है, कल्पना की उपज नहीं है, यहां किसी प्रकार का 'पुण्य' वातावरण नहीं है। यह एक धार्मिक केंद्र हो, किंतु रूढ़िगत अर्थ में नहीं; एक ऐसा केंद्र जहां एक लौ जल रही है न कि उसकी राख। वहां एक लौ प्रज्वलित है और जब आप उस घर में आते हैं तो आप उस प्रकाश को, उस अग्नि को, अपने साथ ले जा सकते हैं, या आप अपने दीये को उससे जला सकते हैं, या इतने असाधारण मानव बन सकते हैं जो खंडित न हों, ऐसे व्यक्ति जो वास्तव में समग्र हों और जिनके पास दुख एवं क्लेश की छाया तक नहीं हो। वही है धार्मिक केंद्र।[74]

उन्होंने उस केंद्र के शांत कक्ष के बारे में भी कहा : 'के' का वह स्रोत है। क्षमा कीजिएगा मैं इस संबंध में व्यक्तिगत ज़रा भी नहीं हूँ। वह सत्य का स्रोत है, वहां वह दमकता हुआ, जीवंत है।'[75] 'के' ने क्रिश्चलो से कहा कि वह चाहते हैं कि केंद्र की इमारत ऐसी न दिखे जैसे उसको किसी नव-धनाढ्य ने बनवाया हो, या वह कोई 'कंट्री होटल' हो। उन्होंने पूछा, "क्या वह इमारत मुझे उचित ढंग से कपड़े पहनने, स्वच्छ रहने का एहसास कराएगी?" क्रिश्चलो का जवाब था कि यदि इमारत लोगों के प्रति सम्मानपूर्ण है, तो लोग भी उसके प्रति सम्मानपूर्ण होंगे। केंद्र का निर्माण पूरा होने पर परस्पर सम्मान का यह भाव भव्य ढंग से उभर कर सामने आया। 1987 के दिसंबर माह में यह केंद्र खोला गया। इससे यह पता चलता है कि किसी परियोजना में सहभागी होने के लिए प्रोत्साहित करने पर समर्पित शिल्पकर्मी क्या नहीं हासिल कर सकते हैं। उस इमारत में प्रवेश करते ही लगता है जैसे हम 'के' के अनूठे वातावरण में प्रवेश कर रहे हों।

21

सृजन का संसार

उस साल सर्दियों में 'के' ने मेरी ज़िंबलिस्ट को अपने साथ भारत नहीं आने दिया क्योंकि पिछले साल भारत में वह बीमार पड़ गयी थीं। 'के' इतने कमज़ोर हो गये थे कि मेरी को यकीन नहीं था कि वह उन्हें दोबारा देख पाएंगी या नहीं। "यदि मेरी मृत्यु होने वाली होगी तो मैं तुरंत आपको फोन करूंगा," 'के' ने मेरी को यकीन दिलाया; "मैं अचानक नहीं मरूंगा। मेरा स्वास्थ्य अच्छा है, मेरा हृदय वगैरा सब ठीक है। यह सब किसी और के द्वारा तय होता है। मैं इस बारे में बात नहीं कर सकता। मुझे इसकी इजाज़त नहीं है, तुम समझ रही हो न? यह अत्यधिक गहन है। कुछ बातें ऐसी हैं जिन्हें तुम नहीं जानतीं। यह सब अत्यंत विराट है, मैं तुम्हें बता नहीं सकता। ऐसा मस्तिष्क मिलना दुर्लभ है, और जब तक देह बर्दाश्त कर सकती है, जब तक कहीं से यह आवाज़ न आ जाए कि बस, काफी हुआ, उसे चलते रहना है।"

भारत के लिए रवाना होने से चार दिन पहले, यानी 19 अक्टूबर को मार्क एडवर्ड्स ने जब 'के' का फोटो खींचा, तो उसने उन्हें असाधारण रूप से तंदुरुस्त पाया। किंतु दिल्ली पहुंचने पर पहले हफ्ते 'के' बहुत कम सो पाए और शायद ही कुछ खा पाये। इसलिए 2 नवंबर को जब वह राजघाट पहुंचे, तो उनका इंतज़ार कर रहे डॉ. परचुरे ने उनको बुरी तरह से कमज़ोर पाया। उस दिन से डॉक्टर हमेशा उनके साथ रहे, जब तक कि उनकी मृत्यु नहीं हो गयी, और हर दिन के स्वास्थ्य का ब्यौरा वह रखते रहे।

राजघाट में रहते हुए 'के' ने भारत का एक महत्त्वपूर्ण कार्य पूरा कर लिया, वह था राजघाट केंद्र के लिए एक नये निदेशक ('रेक्टर') की खोज। यह नये व्यक्ति थे राधा बर्नियर के भतीजे और बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में भौतिकी के प्राध्यापक डॉ. पी. कृष्णा। अपने कुलपति की स्वीकृति से वह प्राध्यापक का पद छोड़ने और फरवरी से राजघाट में अपने नये काम को संभालने के लिए राज़ी हो गए।

मेरी ज़िंबलिस्ट जब 'के' के साथ भारत नहीं आती थीं, तो वह उनको रोज़ाना पत्र लिखा करते थे। लेकिन इस बार वह लगभग हर दिन कहीं लंबे पत्र कैसेट में बोलकर टेप करा कर डाक से भेजते रहे। ऐसा वह हाथ कांपने की वजह से करते थे। 9 नवंबर को

राजघाट से उन्होंने मेरी को बताया कि उनका ब्लड प्रेशर काफी कम हो गया था, और उनके पैर इतने हिलने-डुलने लगे थे कि चलना मुश्किल हो गया था। एक दिन पहले वह पैर न उठा पाने के कारण कुछ सीढ़ियां गिर पड़े थे। डॉ. परचुरे ने उनको कुछ व्यायाम करने के लिए कहा था और वह रोज़ तेल से उनके पैरों की मालिश कर रहे थे; उनको भरोसा था कि उनके पैरों में जल्दी ही ताकत आ जाएगी। लोगों के साथ खाना खाना उनके लिए नामुमकिन हो गया था और पूरे समय वह अपना खाना बिस्तर में ही खाते थे। लोग उनसे मिलने सारा समय उनके कमरे में ही आते थे, और वहीं वह परिचर्चाएं करते थे। पुपुल जयकर, नंदिनी मेहता, राधिका हर्ज़बर्गर, सुनंदा और पामा पटवर्धन, सभी लोग राजघाट में थे। 11 नवंबर तक उनके पैरों की हालत अच्छी हो गयी और वह अपने भीतर काफी ताकत महसूस करने लगे। छः बजकर पंद्रह मिनट के करीब जब सूर्योदय हुआ, तो नदी के सौंदर्य के बारे में उन्होंने कुछ कहा। गोअर विडाल की 'लिंकन' वह पढ़ रहे थे, जिसे उन्होंने 'वाकई शानदार' बताया।

कमज़ोरी के बावजूद 'के' ने राजघाट में दो सार्वजनिक वार्ताएं कीं तथा भारतीय ट्रस्टियों एवं जगन्नाथ उपाध्याय सहित कुछ बौद्ध विद्वानों के साथ परिचर्चाओं में हिस्सा लिया।[76] भारत सरकार ने जाने-माने फिल्म निर्माता जी. अरविंदन को 'के' के जीवन पर एक पूरी फिल्म बनाने के लिए अनुदान दिया था। द सीअर हू वॉक्स अलोन नाम की इस फिल्म का निर्माण एक साल पहले शुरू हो गया था, और इसके आख़िरी दृश्यों का फिल्मांकन राजघाट में 'के' के आख़िरी आगमन पर हुआ।

नवंबर के आख़िर में 'के' जब ऋषि वैली पहुंचे तो डॉ. परचुरे के अनुसार शाम की सैरों में उनकी दुर्बलता का पता तब चला, जब वह दाहिनी तरफ इतने झुकते चले गए कि गिर सकते थे। उन्हें काफी सर्दी भी महसूस हो रही थी, शायद वज़न घट जाने की वजह से। मेरी को उन्होंने बताया कि रात में कंबल आदि और गर्म पानी की बोतल भी उनको ठंड से नहीं बचा पा रहे हैं; सुबह का तापमान भी 8.8° से. तक जा रहा था। खाना वह अकेले अपने कमरे में करते थे, जैसा कि उन्होंने राजघाट में किया था, और ऐसा ही वह मद्रास में करने की सोच रहे थे। वह कितने बीमार थे, इसका उन्हें अभी भी पता नहीं था। क्योंकि 4 दिसंबर को उन्होंने मेरी को बताया कि 20 जनवरी को वह मद्रास से बम्बई जाएंगे, 12 फरवरी को बम्बई से लंदन के लिए रवाना होंगे और चार दिन ब्रॉकवुड में बिताने के बाद वह लॉस एंजिलिस की उड़ान भरेंगे और 17 फरवरी को उनसे मिलेंगे। (वास्तव में यह वह दिन था जब उनकी मृत्यु होने वाली थी।) 11 दिसंबर को उन्होंने कहा कि वह पहले से काफी तंदुरुस्त महसूस कर रहे हैं, और उनके पैर कुछ और मज़बूत हो रहे हैं।

दिसंबर के मध्य में सभी 'के' विद्यालयों के शिक्षक ऋषि वैली में एक सम्मेलन के लिए जुटे। इंग्लैंड से आने वालों में स्कॉट फोर्ब्स भी थे। 'के' की शारीरिक दशा इतनी खराब देखकर वह दुख से सहम गये। बाद में उन्होंने लिखा :

> ऋषि वैली के लोग उनकी दुर्बलता को लेकर बहुत सचेत थे। सारे विद्यार्थी और

शिक्षक उनके साथ बड़ी नम्रता व सावधानी से पेश आ रहे थे। वातावरण में कुछ पूर्वाभास का भाव था। लोग इसके बारे में खुलकर बात नहीं कर रहे थे—कम से कम मुझसे तो नहीं—लेकिन इस बात के साफ संकेत दिखाई दे रहे थे कि लोगों को यह उम्मीद नहीं थी कि कृष्णमूर्ति अब दोबारा ऋषि वैली आ सकेंगे। कृष्णमूर्ति अवश्य ही लोगों को इस बात के लिए तैयार करते रहे होंगे, क्योंकि धीरे-धीरे यह बात स्वीकार कर ली गयी थी कि अब वह कभी भारत नहीं लौटेंगे।

राधिका हर व्यक्ति के लिए मेज़बान की भूमिका अदा कर रही थी, कॉन्फ्रैंस को चला रही थी, कृष्णजी की देखभाल की कोशिश भी कर रही थी और स्कूल में बढ़ती अपनी ज़िम्मेदारियों को भी निभा रही थी। मुझे याद है कि उस समय मुझे कई बार यह ख़याल आया था कि वह कितने अच्छे ढंग से यह सब कर रही थी, और एक बहुत ही कठिन परिस्थिति को संभाल पा रही थी।[77]

सभी को आश्चर्य में डालते हुए 'के' ने शिक्षक सम्मेलन में हिस्सा लिया और तीन बार वह बोले। एक अंग्रेज़ी शिक्षक के अनुसार उनके आने से पूरे सम्मेलन को एक नया धरातल और भव्यता मिल गयी। आख़िरी वक्त में 'के' ने प्रश्न किया कि क्या कोई ऐसी प्रज्ञा है जो जानकारी से उत्पन्न न हो और इसलिए स्वार्थ से मुक्त हो? मन ('माइंड') और मस्तिष्क ('ब्रेन') के बीच उन्होंने भेद किया, मस्तिष्क को उन्होंने भौतिक यंत्र बताया जो बुनियादी तौर पर विचार का आधार है। मन को इससे बिलकुल ही भिन्न बतलाया जिसका समयरूपी विचार से कोई संबंध नहीं है। उन्होंने पूछा, "क्या अच्छाई में समय की भूमिका है?" उनका सुझाव था कि मानवीय अनुभव के विपरीत अच्छाई का बुराई से किसी भी रूप में कोई संबंध नहीं है, न तो प्रतिक्रिया के रूप में, न ही प्रारंभिक अवस्था के रूप में। सम्मेलन में जब पाठ्यक्रम जैसे बिंदुओं पर चर्चा हो रही थी, 'के' सम्मेलन को उस बिंदु पर लौटा ले आए जो उनकी दृष्टि में विद्यालयों का मूल उद्देश्य था—अर्थात कैसे एक नये मस्तिष्क का जन्म हो तथा अच्छाई में खिलने के क्या मायने हैं।[78]

ऋषि वैली में उन्होंने अकेले में बच्चों से भी बातचीत की। जैसा कि 1924 में पर्जिन में उन्होंने हमारे साथ किया था, उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि जीवन में सबसे भयानक बात दोयम दर्जे के औसत आदमी के रूप में बड़ा होना है। समाज में ऊंचे से ऊंचा स्थान पाकर भी आप औसत दर्जे के बने रह सकते हैं। इस बात का संबंध 'होने' ('बीइंग') से है, न कि कुछ हासिल कर लेने से।

ऋषि वैली में एक छोटा अध्ययन केंद्र ('स्टडी सेंटर') बनाने के बारे में राधिका हर्ज़बर्गर और स्कॉट के बीच कुछ बातचीत हुई। ऐसे ही अध्ययन केंद्र राजघाट में और देहरादून के पास हिमालय में स्थित उत्तरकाशी में भी बनने थे। उत्तरकाशी की ज़मीन भारतीय फाउंडेशन को भेंट में मिली थी, जहां पर जाड़ों में जाना मुश्किल था। इन सभी जगहों के निर्माण के लिए फ्रीडरिश ग्रोहे से आर्थिक मदद मिली थी।

लंबी चोंच और ऊंची कलगी वाली एक चिड़िया हूपू 'के' के कमरे की खिड़की की

दहलीज़ पर बैठ जाया करती थी—जब ये सारी चर्चाएं चल रही होती थीं। अंदर आने के लिए वह चिड़िया शीशे पर चोंच मारा करती थी। पिछले कई दौरों में वह ऐसा कर चुकी थी जबकि ‘के’ ने उसे कभी कुछ खिलाया नहीं था। उसके भीतर आने की इच्छा का कोई कारण नज़र नहीं आता था, फिर भी वह तकरीबन हमेशा वहां बैठी रहती थी। ‘के’ उससे बात करते थे और उनका कहना था कि वह उनकी आवाज़ की ध्वनि को पसंद करती है। ‘के’ की इस आख़िरी यात्रा में भी वह हमेशा की तरह शीशे पर चोंच मारती हुई बैठी थी। इस बातचीत की कैसेट को सुनने पर चिड़िया की आवाज़ को ठीक-ठीक सुना जा सकता है।[79]

मद्रास जाने के दो दिन पहले, यानी 19 दिसंबर को ‘के’ मेरी को कैसेट में बता रहे थे :

> मेरा वज़न बहुत अधिक घट रहा है। मैं बहुत जल्दी थक जा रहा हूँ। जनवरी के मध्य में मैं यह बता पाऊंगा कि मैं बंबई जा रहा हूँ या नहीं, या कि सिंगापुर एअरलाइन से मद्रास से सिंगापुर, और सिंगापुर से लॉस एंजिलिस। लंदन, हीथ्रो पर उतरकर और फिर पांच दिन के बाद लॉस एंजिलिस के लिए दूसरा हवाई जहाज़ पकड़ने के बजाय मुझे यह पसंद आ रहा है...यह कैसे होगा देखा जाएगा। वास्तविकता यह है कि मैं काफी ठीक हूँ, हृदय की कोई समस्या नहीं है, न सिर की; मेरा मस्तिष्क ठीक है, बहुत अच्छे ढंग से काम कर रहा है, लिवर और बाकी चीज़ें भी ठीक हैं; लेकिन मेरा वज़न किसी तरह बढ़ता नज़र नहीं आ रहा है। मैं अपना वज़न खो रहा हूँ इसलिए यही समझदारी होगी कि सिंगापुर जाया जाए और वहां से सीधे पैसिफिक के ऊपर से... पर जैसे-जैसे मैं रोज़ तुमको लिखता, बोलता रहूंगा तुम्हें पता चलता जाएगा। देखेंगे कि क्या हो सकता है। मैं जितनी कम यात्रा करूं, उतना अच्छा है; अब हर चीज़ मुझे थका देती है।

इस कैसेट की रिकॉर्डिंग में कहीं-कहीं पर व्यवधान है क्योंकि ‘के’ बीच-बीच में उस चिड़िया (‘हूपू’) से बात कर रहे हैं : ‘आओ, आओ, अंदर आ जाओ। मैं यहां हूँ। आओ, अरी लड़की, मैं इस पार हूँ। यहां आकर बैठो। (माफ करना, मैं चिड़िया से बात कर रहा हूँ,) तुम्हारी बड़ी चमकदार आंखें हैं, हैं न!’

21 दिसंबर तक उन्होंने सिंगापुर होते हुए लॉस एंजिलिस जाने का निर्णय ले लिया था, जैसा कि उन्होंने मेरी को बताया, और अपनी बंबई वार्ताएं रद्द कर दी थीं। मेरी से उन्होंने कहा, ‘मैं अब और वज़न नहीं खो सकता। मैंने काफी खो दिया है और इससे ज़्यादा वज़न घटने पर मैं इतना कमज़ोर हो जाऊंगा कि चल भी नहीं सकूंगा। तब कुछ भी नहीं हो सकेगा।’

स्कॉट फोर्ब्स को बाकी शिक्षकों के साथ यूरोप लौटने के बजाय उन्होंने अपने साथ ओहाय चलने के लिए कह दिया था। स्कॉट को अपनी और डॉ. परचुरे की टिकट बदल कर सिंगापुर एअरलाइन की टिकट लेने और खुद उनके लिए एक टिकट का इंतज़ाम करने के लिए वह बोल चुके थे। सौभाग्य से स्कॉट के पास अमेरिकन एक्सप्रेस कार्ड था

जिससे यह करना संभव था। यूरोप की सर्दी वह बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। मद्रास की वार्ताओं के तुरंत बाद भारतीय ट्रस्टियों की बैठक ख़त्म होते ही वह निकल जाना चाहते थे।

मद्रास पहुंचते ही ‘के’ को एक प्रसिद्ध डॉक्टर को दिखाने का इंतज़ाम डॉ. परचुरे ने कर दिया था। उनका वज़न घटकर अब 43.9 किलो रह गया था और उन्हें बुखार भी था। किसी सांघातिक बीमारी का शक होने पर डॉक्टर ने कुछ परीक्षण करने चाहे, किंतु ‘के’ ने इससे इनकार कर दिया क्योंकि वह वार्ताओं के दौरान कोई व्यवधान नहीं चाहते थे। वसंत विहार के बगीचे में संध्याकाल में उन्होंने चार के बजाय तीन वार्ताएं कीं; और स्कॉट को उन्होंने अपने जाने की तिथि 17 जनवरी से घटाकर 10 जनवरी करने के लिए कहा। (“वह जल्दी से जल्दी ओहाय पहुंच जाना चाहते थे ताकि डॉ. डोइच के इलाज के लिए खुद को सौंप सकें”, डॉ. परचुरे ने नोट किया।) बीमार होते हुए भी वह रोज़ाना देर शाम को राधा बर्नियर के घर से समुद्रतट पर टहलने जाते थे।

जनवरी के पहले हफ्ते में ‘के’ को छोड़कर वसंत विहार में रह रहे सभी लोग अरविंदन की फिल्म द सीअर हू वॉक्स अलोन का प्रीमियर देखने के लिए गए। यह फिल्म आश्चर्यजनक रूप से कम समय में पूरी हो गयी थी। फिल्म में कुछ ख़ूबसूरत दृश्य हैं, लेकिन दुर्भाग्य से ‘के’ को जहां-जहां चलते और बोलते हुए दिखलाया गया है, उन जगहों की पहचान नहीं दी गयी है।[80]

4 जनवरी 1986 को अपनी सबसे आख़िरी वार्ता को ‘के’ ने इन शब्दों के साथ विराम दिया :

> सृजन सबसे पवित्र है। सर्वाधिक पावन वस्तु है वह जीवन की। यदि आपने अपने जीवन को अस्त-व्यस्त कर रखा है, तो उसे बदलिए। कल नहीं, आज ही बदलिए। यदि आप अनिश्चय से घिरे हैं तो पता लगाइए कि क्यों, और निश्चित हो जाइए। यदि आप स्पष्ट, ठीक ढंग से नहीं सोच पाते हैं, तो स्पष्ट, तर्कसंगत ढंग से सोचिए। जब तक यह सारी ज़मीन तैयार नहीं हो जाती, आप सृजन के संसार में प्रवेश नहीं कर सकते हैं।
>
> इति (‘इट एंड्स’—ये शब्द इतने धीमे बोले गए थे मानो शब्द की ध्वनि न होकर श्वास की गति रही हो। लोग इसे नहीं सुन पाए होंगे, इसे केवल कैसेट पर सुना जा सकता है)।

फिर एक लंबे अंतराल के बाद वह बोले : ‘यह अंतिम वार्ता है। क्या आप कुछ क्षणों के लिए एक साथ मौन बैठना चाहेंगे? ठीक है सर, आइए कुछ क्षण शांत होकर बैठें।’[81]

वार्ताओं के बाद भारतीय फाउंडेशन की बैठक में ‘के’ ने आग्रह किया कि जिन घरों में वह ठहरे हैं, उन्हें तीर्थस्थल नहीं बनना चाहिए, और उनके नाम के साथ कोई संप्रदाय खड़ा नहीं होना चाहिए। फाउंडेशन की नियमावली में यह मेमोरेंडम जोड़ने के लिए उन्होंने कहा :

किसी भी परिस्थिति में फाउंडेशन या इसके अंतर्गत कोई भी संस्था या इसका कोई भी सदस्य स्वयं को कृष्णमूर्ति की शिक्षा के अधिकारी के रूप में स्थापित नहीं करेगा। कृष्णमूर्ति की घोषणा के अनुरूप कोई भी, कहीं भी, स्वयं को उनके या उनकी शिक्षाओं के प्राधिकारी के तौर पर स्थापित नहीं करेगा।[82]

22

वह अथाह रिक्तता

लॉस एंजिलिस की चौबीस घंटे की उड़ान में ‘के’ पेट में अत्यधिक दर्द से पीड़ित रहे। सिंगापुर और टोकियो में उन्हें प्लेन बदलने के लिए रुकना पड़ा। हवाई अड्डे पर मेरी ज़िंबलिस्ट उनसे मिलीं, और गाड़ी में उन्हें अकेले लेकर चली गईं। बाकी लोग सामान लेने के लिए पीछे छूट गए। गाड़ी में उन्होंने मेरी से कहा कि वह अगले दो-तीन दिन तक उनको अकेला नहीं छोड़े, नहीं तो वे हाथ से निकल सकते हैं। वे बोले : “यह एक बीमार शरीर में रहना नहीं चाहता, एक ऐसे शरीर में जो काम न कर सके।” रात में उनका तापमान 101° था।*

13 जनवरी को ‘के’ ने डॉ. डोइच से सांता पाउला में परामर्श किया। सांता पाउला कम्यूनिटी हॉस्पिटल में चिकित्सकीय जांच की गई। 20 जनवरी को ओहाय हॉस्पिटल में लिवर, गॉल ब्लैडर और पेनक्रियाज़ का सोनोग्राम किया गया। लिवर पर एक पिंड दिखाई पड़ने पर 22 तारीख को कैट-स्कैन करने के लिए कहा गया। पर 21 तारीख की रात 1 बजे पेट में दर्द के कारण ‘के’ जाग उठे। दर्द को दूर नहीं किया जा सका। तब डॉ. डोइच से टेलीफोन पर बात की गई। उन्होंने अस्पताल से बाहर इलाज कर पाने में अपनी असमर्थता जताई। बहुत सोच-विचार के बाद ‘के’ अस्पताल में भर्ती होने के लिए सहमत हो गए। सांता पाउला अस्पताल की सघन चिकित्सा इकाई के एक निजी कक्ष में उन्हें भर्ती कराया गया। एक्स-रे करने पर पता लगा कि आंत में रुकावट आ गई है इसलिए नाक से होकर एक ट्यूब डाली गई ताकि मल को बाहर निकाला जा सके। जब उन्हें गंभीर रूप से कुपोषण का शिकार पाया गया, तो नली के माध्यम से पोषक तत्त्वों की बड़ी खुराक दी गई। उनका वज़न 42 किलो रह गया था। जब ये सारी कष्टप्रद चीज़ें उनके साथ हो गईं तब उन्होंने स्कॉट से कहा—‘मुझे यह सब स्वीकार करना चाहिए। कितना कुछ स्वीकार किया है मैंने।’ (उनकी मृत्यु के उपरांत जब मैंने इन शब्दों को पढ़ा तो मुझे तुरंत मिसेज़ कर्बी की याद आ गई जिन्होंने 1926 के ओमन कैंप में ‘के’ के बारे में लिखा था : “बेचारे कृष्णजी, क्या जीवन है उनका! इसमें कोई संदेह नहीं कि उनका जीवन एक बलिदान है।” लेकिन, जो वह कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार कर रहे थे वह थी मॉर्फिन, जिसे उन्हें तब दिया गया था जब दर्दनिवारक किसी भी दवा ने काम करना बंद

कर दिया था। चूंकि 'प्रॉसेस' की भीषण पीड़ा के दौरान भी उन्होंने किसी भी तरह की दर्दनिवारक दवाई नहीं ली थी, इसलिए लगता है कि उन्होंने यह समझ लिया कि बीमारी से उपजे इस दर्द को सहना आध्यात्मिक तौर पर आवश्यक नहीं था; दरअसल बाद में उन्होंने कहा भी कि दर्द के रहते हुए उस 'अन्य' का आना संभव नहीं था।

आठ दिन तक 'के' अस्पताल में रहे। मेरी, डा. परचुरे और स्कॉट बारी-बारी से रात में उनके कमरे में आरामकुर्सी पर सोते थे, जबकि दिन में अर्ना और थियोडोर लिलीफेल्ट रहते थे। 23 जनवरी का दिन नाज़ुक था क्योंकि हेपेटाइटिस के कारण उनके कोमा में चले जाने का ख़तरा था। डॉ. परचुरे ने उनको यह बताया कि संभवतः उन्हें कैंसर हुआ है जिसका कोई इलाज नहीं है। मेरी और स्कॉट को इससे धक्का लगा, उन्होंने यह सोचा कि अभी यह बताने का समय नहीं था। पर डॉ. परचुरे ने उन्हें यह समझाया कि बहुत पहले वह 'के' को यह वचन दे चुके हैं कि यदि उन्हें मृत्यु का ज़रा भी ख़तरा नज़र आए, तो वह उनको तत्काल बता दें; 'के' के कोमा में चले जाने की आशंका के कारण उनको यह उचित लगा कि वह अपना वचन पूरा कर दें। इसके बाद जब मेरी और स्कॉट 'के' के कमरे में गए तो उन्होंने कहा—"लगता है मैं मरने जा रहा हूँ"—शायद उन्हें इतनी जल्दी इसकी अपेक्षा नहीं थी, लेकिन बाकी तथ्यों की तरह उन्होंने इसे भी स्वीकार कर लिया था। बाद में उन्होंने कहा—"पता नहीं वह 'अन्य' क्यों नहीं इस शरीर को जाने देता?" मेरी को भी उन्होंने बताया—"मैं इसे देख रहा हूँ। बहुत ही अजूबा है। उस 'अन्य' तथा मृत्यु में संघर्ष चल रहा है।" जब कैंसर होने की बात पक्की हो गई तो अचरज से भरकर उन्होंने मेरी से कहा—"मुझसे कहां गलती हुई?"—शायद उन्हें लगा कि उस 'अन्य' ने जिस देह का दायित्व उनको सौंपा था, उसकी देखभाल करने में उनसे कहीं चूक हो गई। मेरी और स्कॉट को आख़िरी समय तक साथ रहने के लिए उन्होंने कहा, क्योंकि वह चाहते थे कि 'इस शरीर' की देखभाल वैसी ही होती रहे जैसी कि उन्होंने खुद की थी। उनके इस अनुरोध में रत्ती-भर भी भावुकता या आत्मदया नहीं थी।

24 जनवरी को आंत की रुकावट साफ होने लगी, तथा जौंडिस के लक्षण भी दूर होने शुरू हो गए। शल्य चिकित्सक ने इंट्रावीनस ट्यूब को हाथ से निकाल कर कॉलर बोन में लगी बड़ी ट्यूब से जोड़ दिया, ताकि ज़्यादा मात्रा में तरल पदार्थ जा सके। दोनों हाथ मुक्त हो जाने पर उन्हें राहत मिली। अगले दिन जब नाक में लगी ट्यूब भी निकाल दी गई, तो उन्होंने ऐसा महसूस किया 'जैसे वह नये आदमी' हों। ताकत के लिए उन्होंने रक्त लेना भी स्वीकार कर लिया। 27 जनवरी को एक बड़ी-सी वैन में, जो स्थानीय अस्पतालों का चक्कर लगाती थी, कैट स्कैन किया गया। आश्चर्यजनक रूप से उनकी उस पूरी प्रक्रिया की यांत्रिक प्रणाली को जानने में बहुत दिलचस्पी थी—कैसे स्ट्रेचर उठकर वैन में जा रहा है इत्यादि। लिवर में एक गांठ होने के साथ-साथ पेंक्रियाज़ में कैल्सियम का जमाव है, यह बात स्कैन से प्रमाणित हो गई। यह जमाव ('कैल्सीफिकेशन') ही उस असाध्य बीमारी का मुख्य कारण था। डॉ. डोइच ने जब यह बात 'के' को बतायी तो उन्होंने पाइन कॉटेज वापस जाने की अनुमति मांगी; वे अस्पताल में नहीं मरना चाहते थे।

अस्पताल में ही उन्होंने स्कॉट को यह बात रिकॉर्ड करने के लिए कहा कि उनकी अस्थियों का क्या किया जाना है। अस्थियों के तीन हिस्से करने थे—ओहाय, ब्रॉकवुड और भारत भेजे जाने के लिए। किसी भी प्रकार के अनुष्ठान या उस तरह की मूढ़तापूर्ण बातें वह नहीं चाहते थे, और न ही वह चाहते थे कि जहां अस्थियां गाड़ी जाएं वे जगहें "पवित्र स्थान बन जाएं जहां लोग पूजादि तथा उस तरह की अनापशनाप बातों के लिए आएं।" (भारत में उनकी अस्थियां गंगा में बहा दी गईं।) इसके बावजूद केवल उत्सुकतावश उन्होंने पंडित जगन्नाथ उपाध्याय से यह जानना चाहा कि भारत में किसी 'धार्मिक' व्यक्ति के मृत शरीर के साथ परंपरागत रूप से क्या किया जाता है। यह जानकारी हासिल करने के लिए पंडित जी को एक पत्र भेजा गया।

30 की सुबह दर्द से मुक्त होकर तथा पोषक तत्त्वों की बढ़िया खुराक से अविश्वसनीय ढंग से करीब 6 किलो वज़न बढ़ाकर 'के' पाइन कॉटेज लौटे। उनके कमरे से उनका पलंग हटाकर अस्पताल का पलंग रख दिया गया। उनका अपना पलंग ड्रैसिंग रूम में रख दिया गया तथा चौबीस घंटे देखभाल का इंतज़ाम कर दिया गया। वापस आकर वह इतने खुश थे कि मेरी से उन्होंने पावारोत्ती द्वारा गाये गये नेआपोलिटन (नेपल्स, इटली के) गानों का रिकार्ड लगाने के लिए कहा तथा टमाटर सैंडविच और थोड़ी-सी आइसक्रीम लाने के लिए भी कहा। एक सैंडविच खाकर उनकी तबीयत फिर ख़राब हो गई (मुंह के द्वारा खाया गया उनका यह अंतिम भोजन था)। संध्या समय दर्द लौट आया और उन्हें फिर से मॉर्फिन दी गई।

जैसे ही 'के' को अस्पताल में यह पता लगा था कि अब उनकी मृत्यु होने को है, उन्होंने भारत से चार लोगों को बुलाने के लिए कह दिया था। ये चार लोग थे : राधिका हर्ज़बर्गर, राजघाट के नये रेक्टर डॉ. कृष्णा, महेश सक्सेना जिनको उन्होंने मद्रास में भारतीय फाउंडेशन का नया सेक्रेटरी नियुक्त किया था, और आर. उपासनी, जो कि राजघाट में कृषि महाविद्यालय के प्राचार्य थे।* युवा पीढ़ी के इन सदस्यों से 'के' को यह उम्मीद थी कि ये भारत में उनके कार्य को आगे बढ़ाएंगे। कुछ बातें अभी भी थीं जो 'के' उनको बताना चाहते थे। 'के' के आमंत्रण के बिना भी कुछ अन्य लोग थे, जब उन्हें पता लगा कि 'के' अब नहीं रहेंगे ओहाय पहुंच गए। इनमें थीं पुपुल जयकर और उनके भतीजे असित चांदमल, जिनके बंबई के घर में 'के' अक्सर रुका करते थे; मेरी कैडोगन जो इंग्लिश फाउंडेशन की सेक्रेटरी थीं, डोरथी सिमन्स जो ब्रॉकवुड एड्यूकेशनल ट्रस्ट की ट्रस्टी थीं, इंग्लिश फाउंडेशन की एक और ट्रस्टी जेन हेमंड जिन्होंने 'के' के लिए बरसों काम किया था, तथा मैं और मेरे पति। खुद को उनसे दूर रख पाना नामुमकिन लग रहा था; हालांकि 'के' ने हम सबका स्वागत किया पर निश्चित रूप से उनको हमारी ज़रूरत नहीं थी। हम लोगों की भावतरंगों ने शायद उनका भला कम, नुकसान ज़्यादा किया। ओहाय के सहृदय लोगों पर हम भार भी बन गए होंगे, जिन्हें हमारे भोजन की व्यवस्था के साथ-साथ हमारी देखभाल भी करनी पड़ती थी। फ्रीडरिश ग्रोहे भी, जिनका अब एक घर ओहाय में था, वहां पर थे।

भारत और इंग्लैंड से आने वाले 31 जनवरी को यहां पहुंचे। मैं और मेरे पति जिस हफ्ते वहां थे तो उस दौरान 'के' को पीड़ा से राहत मिल गई और हम लोग यह सोचने से खुद को न रोक पाए कि कोई चमत्कार घटित हो गया है और अब वह ठीक हो जाएंगे। डॉ. डोइच को उन्होंने बताया कि दर्द, जौंडिस, मॉर्फिन तथा दवाइयों ने उनके मस्तिष्क पर कोई प्रभाव नहीं डाला है। रात्रिकाल में 'आश्चर्यजनक ध्यान' से भी वह गुज़र रहे थे जिसका तात्पर्य था कि वह 'अन्य' अभी भी उनके साथ था। डॉ. परचुरे ने अपनी रिपोर्ट में इस सबकी पुष्टि की थी। इस दौरान 'के' ने अपने सोने के कमरे में दो बैठकें कीं, जिन्हें स्कॉट फोर्ब्स ने टेप में रिकॉर्ड कर लिया। 4 फरवरी की पहली मीटिंग में केवल उन लोगों ने हिस्सा लिया जिनका सरोकार उनकी पुस्तकों के संपादन और प्रकाशन से था (राधिका और डॉ. कृष्णा को अभी हाल में बनी अंतरराष्ट्रीय प्रकाशन समिति का भारतीय सदस्य बनाया गया था)। प्रकाशन के बारे में 'के' ने अपनी इच्छा को बिलकुल स्पष्ट कर दिया : उनकी वार्ताओं और आलेख को इंग्लैंड में ही संपादित किया जाए तथा भारतीय फाउंडेशन देशी भाषाओं में अनुवाद पर अपना ध्यान केंद्रित करे। बैठक के अंत में उन्होंने कहा कि भारतीय फाउंडेशन के सदस्य ऐसा समझते हैं कि उन लोगों ने 'के' को बेहतर ढंग से समझा है क्योंकि वह एक भारतीय शरीर में पैदा हुए। वह बोले—"देखिए, डॉ. कृष्णा, मैं कोई भारतीय नहीं हूँ।" डॉ. कृष्णा ने जवाब दिया, "मैं भी भारतीय नहीं हूँ।" "उस अर्थ में मैं भी भारतीय नहीं हूँ", राधिका बीच में बोल उठीं। "मैं भी अंग्रेज़ नहीं हूँ"—मेरी कैडोगन ने जोड़ा।[83]

उस दिन दोपहर बाद 'के' ने महसूस किया कि वह बाहर जा सकते हैं। व्हीलचेयर में उन्हें बरामदे की सीढ़ियों से उतारकर नीचे लाया गया। दिन साफ था, इसलिए उन्होंने स्वयं को गोलमिर्च के वृक्ष (पेपर ट्री) के नीचे अकेला छोड़ देने का आग्रह किया। अब यह वृक्ष काफी बड़ा हो गया था और वहां से वह घाटी के पार पहाड़ियों को देख सकते थे। इस डर से कि कहीं वह पीछे की ओर उलट न जाएं—क्योंकि वह पालथी मारकर बैठ गए थे—स्कॉट फोर्ब्स कुर्सी के पीछे कुछ दूरी पर खड़े रहे। वह वहां नितान्त निश्चल बैठे रहे। कुछ समय बाद उन्होंने वापस ले जाने के लिए कहा। यह आख़िरी बार था, जब वह बाहर निकले थे।

अगले दिन जब डॉ. डोइच उन्हें देखने के लिए आए तो उन्होंने पूछा कि क्या वह अब यात्रा कर पाएंगे तथा वार्ताएँ दे पाएंगे। डॉक्टर ने जवाब दिया कि पहले की तरह नहीं, पर लिख सकना या बोल कर लिखाना और निजी चर्चाएं करना शायद संभव हो पाए। डॉक्टर अब उनके मित्र बन चुके थे तथा लगभग रोज़ाना उन्हें देखने के लिए आ रहे थे।

पांच फरवरी की सुबह 'के' ने दूसरी बैठक बुलाई। स्कॉट को उन्होंने इसे रिकॉर्ड कर लेने के लिए कहा। हम कुल चौदह लोग वहां उपस्थित थे। 'के' ने डॉक्टर की कही हुई बात से अपनी बात शुरू की कि अब और वार्ताएं और यात्राएं नहीं होंगी। उन्होंने बताया कि इस क्षण उन्हें ज़रा भी दर्द नहीं है और उनका मस्तिष्क 'बहुत, बहुत, बहुत स्पष्ट' है और इस हालत में संभव है कई महीने गुज़र जाएं। वह बोलते गए—"जब तक यह शरीर

जीवित है मैं अभी भी शिक्षक हूँ। जिस तरह वह मंच पर होता है वैसे ही 'के' यहां पर है... मैं अभी भी इसका प्रमुख हूँ। मैं यह बिलकुल, एकदम स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। जब तक शरीर जीवित है 'के' मौजूद है। मुझे इसलिए यह पता है क्योंकि मुझे हर समय अद्‌भुत स्वप्न आ रहे हैं—स्वप्न नहीं, इसे जो कुछ भी कहा जाए।" वह यह विस्तार से जानना चाहते थे कि भारत और ब्रॉकवुड में क्या हो रहा है : "मुझे मत सुनाइए कि सब कुछ ठीक-ठाक है।"

इसके बाद उन्होंने जितना संभव हो सकता था उतनी विनम्रता से अनुरोध किया कि सभी आगंतुक वापस चले जाएं। वह नहीं चाहते थे कि जब उनकी मृत्यु हो जाए तो लोग आएं और शरीर का अभिवादन करें। फिर उन्होंने स्कॉट को निर्देश दिया कि जो कुछ रिकॉर्ड हुआ है उसे न बदला जाए। बिस्तर के पास माइक्रोफोन हाथ में लेकर खड़े स्कॉट को उन्होंने हमारी तरफ मुड़वाया और कहलवाया : "मैं वचन देता हूँ कि किसी भी टेप में जो कुछ भी रिकॉर्ड किया गया है उसे नहीं बदला जाएगा। अभी तक न कुछ बदला गया है और न कुछ बदला जाएगा।"[84]

"मैं अभी भी शिक्षक हूँ। जिस तरह वह मंच पर होता है वैसे ही 'के' यहां पर है"—'के' से यह सुनकर कुछ धक्का-सा लगा। क्या किसी को इस बारे में शक हो सकता था? हालांकि इस बैठक में वह कई बार अत्यधिक शारीरिक कमज़ोरी के कारण निढाल हो जाते थे पर इसके बावजूद वह अतिशय रूप से अपने आप में थे। कोई भी यह ईमानदारी से नहीं कह सकता था कि पीड़ा से मुक्त उन क्षणों में वह पूर्णतया 'स्वयं' नहीं थे।

'के' की इच्छाओं के अनुरूप मैं और मेरे पति अगले दिन चले गए। उनसे अलविदा कहते हुए यह सच में विश्वास नहीं हो रहा था कि मैं अब उनको फिर नहीं देख सकूंगी। उन्होंने मेरी को ख़ास तौर पर यह देखने के लिए भेजा कि जो कार हमने एयरपोर्ट जाने के लिए मंगाई है, वह ठीक है कि नहीं। वह यह जानकर संतुष्ट हुए कि वह एक अच्छी कार थी। बाकी मेहमान भी जल्दी ही वहां से चले गए। असित चांदमल भी वहां से निकल गए। पर उनको वापस आना था और 'के' की मृत्यु तक रुकना था। 'के' को बस डॉ. डोइच से मिलने का इंतज़ार रहता था; हालांकि वह इस बात से चिंतित थे कि डॉक्टर के अन्य मरीज़ों के समय का कितना बड़ा हिस्सा वह ले रहे हैं। 'के' ने एक सुंदर सी पाटेक-फिलिप घड़ी डॉक्टर को उपहार में दी। डॉक्टर ने एक दोस्त के रूप में, न कि डॉक्टर के रूप में, उसे स्वीकार कर लिया। (बीमारी के अंतिम काल में डाक्टर ने उनके इलाज के बदले में कोई भी बिल नहीं भेजा।) यह पता लगने पर कि 'के' क्लिंट ईस्टवुड के प्रशंसक हैं, जैसा कि वह खुद थे, वह ईस्टवुड की फिल्मों की कुछ वीडियो ले आए। 'के' को पेड़ों और पहाड़ों से कितना प्यार है, यह जानकर वह योसेमिटी नेशनल पार्क (कैलिफोर्निया) की स्लाइडें भी ले आए।

सात की सुबह मेरी ज़िंबलिस्ट ने 'के' से पूछा कि क्या वह मेरी कैडोगन द्वारा लिखित एक प्रश्न का उत्तर देना चाहेंगे। मेरी को उन्होंने पढ़ने के लिए कहा। प्रश्न था : "जब

कृष्णजी नहीं रहेंगे तो उस आश्चर्यजनक बोध और ऊर्जा का वास्तव में क्या होगा जो कि 'के' हैं?"—'के' ने जो तुरंत जवाब दिया उसे मेरी ने कागज़ पर जल्दी-जल्दी उतार लिया : "वह चली जाएगी। यदि कोई संपूर्ण तौर पर शिक्षा की गहराई में जाता है तो संभव है कि वह उसको स्पर्श कर ले; लेकिन कोई उसे कोशिश करके स्पर्श नहीं कर सकता।" एक क्षण के बाद उन्होंने जोड़ा—"काश आप लोग यह जान पाते कि आप किससे चूकते रहे—उस अथाह रिक्तता से।"

मेरी कैडोगन का प्रश्न शायद 'के' के मन में ही था, तभी सुबह-सुबह उन्होंने स्कॉट को बुला भेजा और उससे कुछ बातें जो वह कहना चाहते थे रिकॉर्ड करने के लिए कहा। मेरी ने लिखा—"उनकी आवाज़ कमज़ोर थी फिर भी वे दृढ़तापूर्वक बोले।" उनके ज़्यादातर शब्दों के बीच में अन्तराल था; ऐसा लग रहा था जैसे शब्दों को लाने के लिए उन्हें मेहनत करनी पड़ रही हो :

> मैं उन लोगों को आज सुबह बता रहा था कि सत्तर सालों से वह ज़बरदस्त ऊर्जा—नहीं—वह अपार ऊर्जा, वह अपार प्रज्ञा इस देह का उपयोग कर रही है। मुझे नहीं लगता कि लोगों को इसका एहसास है कि कैसी विस्मयकारी ऊर्जा और प्रज्ञा इस देह से होकर गुज़री—बारह सिलंडर के इंजन सी। सत्तर सालों तक—जो कि काफी लंबा समय था—और अब यह देह इसे और बर्दाश्त नहीं कर सकती। कोई भी व्यक्ति जब तक कि उसकी देह बहुत सावधानी से तैयार न की गई हो, उसकी रक्षा आदि न की गई हो, यह नहीं समझ सकता कि इस देह से होकर क्या गुज़रा है। कोई भी नहीं। कोई इसका दिखावा न करे। कोई भी नहीं। मैं यह दोहराता हूँ : न हमारे बीच से कोई जान पाया, और न ही बाहर लोगों में से किसी ने यह जाना कि क्या घटित हुआ। मुझे मालूम है कि वे नहीं जानते। अब सत्तर सालों बाद इसका अंत होने को आया है। उस प्रज्ञा और ऊर्जा का अंत नहीं—वह तो यहां प्रतिदिन है, विशेषकर रात्रि में। और अब सत्तर साल बाद शरीर इसे सहन करने के काबिल नहीं है—यह अब और सहन नहीं कर सकता, नहीं कर पा रहा। भारतीय लोगों के दिमाग में इस बारे में बहुत सारे बेहूदा अंधविश्वास हैं—कि आप इच्छा करेंगे और शरीर चला जाएगा—उस तरह की कितनी ही मूढ़तापूर्ण बातें हैं। सैकड़ों सालों तक आपको ऐसा कोई शरीर या किसी शरीर में काम कर रही वह परम प्रज्ञा देखने को नहीं मिलेगी। इसे आप दोबारा नहीं देख सकेंगे। उसके जाने के साथ इसने भी चले जाना है। 'उस' चेतना की, 'उस' अवस्था की कोई अवशिष्ट चेतना पीछे नहीं छुटेगी। वे सब ऐसा दावा करेंगे या कल्पना करने की कोशिश करेंगे कि वे उसके संपर्क में आ गए हैं। शायद वे उसके थोड़े-बहुत संपर्क में आ भी जाएँ, यदि वे इन शिक्षाओं को जीते हैं। लेकिन किसी ने भी यह नहीं किया है। किसी ने भी। बस यही बात है।[85]

स्कॉट ने 'के' से कुछ बातें स्पष्ट करने का अनुरोध किया, इस भय से कि उनकी कही कुछ बातों से गलतफहमी पैदा हो सकती है। इस पर 'के' बेहद ख़फा हो गए और स्कॉट

को कहा—"इसमें दख़ल देने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है।" दख़ल न देने की बात से यह साफ हो जाता है कि 'के' चाहते थे कि उनका यह वक्तव्य उन सभी तक पहुंचे जिनकी इसमें रुचि है।

'के' के पास जीने के लिए नौ दिन शेष थे। वह मरना चाहते थे और उन्होंने पूछा कि खाने की ट्यूब निकाल देने पर क्या होगा। उन्हें बताया गया कि शरीर जल्दी ही निर्जलित हो जाएगा। ट्यूब निकाल देने का उन्हें कानूनी अधिकार है, यह उन्हें पता था। लेकिन वह मेरी या डॉक्टर के लिए कोई परेशानी खड़ी करना नहीं चाहते थे। इसके अलावा, 'शरीर' अभी भी उनकी निगरानी में था। अतः अंत तक वह उसकी देखभाल करते रहे : दिन में तीन-चार बार दांत मांजना जैसा कि वह हमेशा करते रहे थे, यहां तक कि तालु और जीभ को साफ करना; बेट्स की विधि से रोज़ाना आंखों का व्यायाम करना तथा ग्लूकोमा की दवाई अपनी बायीं आंख में डालना। बिस्तर में पड़े रहने के कारण जो द्रव्य उनके फेफड़े में जमा हो गया था उसको साफ करने के लिए डॉ. डोइच ने एक तरीका बताया—सर्जिकल दस्ताने को फूंक मारकर फुलाना। दस्ताने को वह हर घंटे फुलाते रहे जब तक कि उसे फुलाने की उनमें ताकत ही न रही।

डॉ. डोइच के सुझाव पर उन्हें रोज़ाना दोपहर को व्हीलचेयर में बैठाकर बड़े कमरे में लाया जाता, जहां वह जलती हुई लकड़ी की लपटों को देखा करते। पहली दफा जब उनको लाया गया तो उन्होंने एकांत में रहने का आग्रह किया। कहीं वह उलट न जाएं इसलिए स्कॉट को उन्होंने पीछे खड़ा रहने दिया। स्कॉट ने बाद में लिखा : "कमरे के साथ उन्होंने कुछ किया। ऐसा करते हुए उन्हें देखा जा सकता था, और उसके बाद कमरा पहले जैसा न रहा। हमेशा की तरह वह सारी शक्ति और महिमा उनमें विद्यमान थी। यद्यपि वह पहियों वाली कुर्सी पर कंबलों से ढके बैठे थे, ट्यूब के माध्यम से आहार ले रहे थे, फिर भी वह असीम और भव्य थे। वह कमरा उनसे संपूर्णतः आपूरित था, यह सब कुछ जीवंत था, धड़कता हुआ सा। वह देदीप्यमान थे।" आधा घंटे बाद जब उन्होंने वापस अपने कमरे में जाना चाहा तो उन्होंने बिना सहारा लिए वापस चलकर सभी को चकित कर दिया।

दस तारीख को पंडित जगन्नाथ उपाध्याय का उत्तर आया कि मृत्यु के पश्चात किसी धार्मिक व्यक्ति के शरीर के साथ परंपरागत रूप से क्या किया जाता है। इसे सुनने के बाद 'के' ने कहा कि वह ऐसा कुछ भी नहीं चाहते। मृत्यु के बाद उनके शरीर को देखने के लिए कोई न आए तथा उसके दाह के समय कम से कम लोग मौजूद रहें, ऐसी उनकी इच्छा थी।

जब वह इतने कमज़ोर हो गए कि पहियों वाली कुर्सी में बैठना भी उनके लिए कठिन हो गया तो उन्हें चादर के झूले में बैठकघर में ले जाया जाता। चौदह तारीख को दर्द फिर लौट आया और उन्हें मॉर्फिन दी गई। दवाई का असर होने में दस मिनट लगे, इस दौरान उन्होंने मेरी से कहा—"अरे वाह, विश्वास नहीं होता—दुख! मैंने तो सोचा था कि मैं तुम्हें खो चुका हूँ।" मेरी को पक्का विश्वास है कि उनका आशय यह रहा होगा—'मैंने सोचा था

कि मैं दुख को खो चुका हूँ, लेकिन यह सोच तो सच हो सकने के लिहाज़ से कुछ ज़्यादा ही थी।' दूसरे दिन वह स्कॉट से संसार की दशा के बारे में बात कर रहे थे। स्कॉट से उन्होंने पूछा, "क्या तुम्हें लगता है कि डॉ. डोइच को इस सबके बारे में पता है? क्या वह यह सब समझते हैं? मुझे उनसे इस बारे में बात करनी होगी।" और ऐसा उन्होंने किया भी, जब डॉक्टर दोपहर को उन्हें देखने के लिए आए। स्कॉट ने इसे रिकॉर्ड कर लिया।

> डॉ. डोइच को कृष्णजी ने जो बताया वह संसार की दशा के बारे में उनकी सोच का दस-पंद्रह मिनट में समेट कर संजोया गया अद्‌भुत सार था। यह सारगर्भित, संक्षिप्त और पूर्ण था, और मैं वहां चकित और प्रभावित खड़ा रहा; मैं बिस्तर के पैताने खड़ा सुन रहा था और डॉ. डोइच उनके पास बैठकर। कृष्णजी द्वारा डॉ. डोइच को कही गई एक बात मुझे अच्छी तरह याद रही—"मृत्यु का मुझे भय नहीं है क्योंकि मैं मृत्यु के साथ जीवन भर जिया हूँ। मैंने कभी भी कोई स्मृति नहीं ढोई है।" बाद में डॉक्टर ने कहा, "मुझे लगता है कि मैं कृष्णजी का आख़िरी शिष्य था।" यह सच में सुंदर था। असाधारण रूप से प्रभावशाली बात यह थी कि कृष्णजी इतने कमज़ोर और मृत्यु के इतने निकट होते हुए भी इतनी शक्ति जुटा पाए कि यह सार प्रस्तुत कर सकें। डॉक्टर के लिए उनके मन में जो स्नेह था, उसका भी यह संकेत था।

मध्य रात्रि के तुरंत बाद, 17 फरवरी को, नींद में उनका देहांत हो गया। मेरी के शब्दों में :

> रोज़ की तरह मैं, डॉ. परचुरे और स्कॉट वहां पर थे और हमेशा की तरह 'के' को अन्य लोगों का ख़याल था। उन्होंने मुझसे आग्रह किया, "सोने के लिए जाओ, गुडनाइट, सोने के लिए जाओ।" मैंने कहा कि मैं सो जाऊंगी, पर आपके पास ही रहूंगी। वह सो गए। उनके बायीं तरफ बैठ कर जब मैंने उनका हाथ पकड़ा, तो इससे उन्हें कोई परेशानी नहीं हुई। उनके आराम के लिहाज़ से बिस्तर के आगे का हिस्सा थोड़ा ऊपर उठा दिया गया था; उनकी आंखें आधी खुली थीं। स्कॉट उनके दायीं तरफ थे और मैं बायीं तरफ बैठी थी; डॉ. परचुरे चुपचाप आते-जाते स्थिति पर नज़र रखे हुए थे; पुरुष नर्स, पैट्रिक लिनविले, दूसरे कमरे में थे। धीरे-धीरे कृष्णजी की नींद कोमा में बदलती गई और सांसें धीमी हो गईं। डॉ. डोइच अचानक और चुपचाप करीब ग्यारह बजे पहुंचे। रात्रि के किसी क्षण अपने भीतर की यह अदम्य लालसा कि वह ठीक हो जाएँ आख़िरकार इस चाहत में तब्दील हो गई कि उन्हें अब कष्ट से मुक्ति मिल जाए। मध्य रात्रि के दस मिनट बाद जब कृष्णजी के हृदय की धड़कनें बंद हुईं तब मैं, स्कॉट और डॉ. डोइच वहाँ पर थे।

उनकी इच्छा के अनुसार बस थोड़े से लोगों ने उनकी मृत्यु के बाद उन्हें देखा तथा गिने-चुने मित्र ही उनके दाह के समय मौजूद रहे। सुबह आठ बजे वेन्चुरा में उनका दाह कर दिया गया।

* मेरे द्वारा लिखी गई ‘के’ की जीवनी के आखिरी खंड ‘द ओपन डोर’ में उनकी बीमारी और मृत्यु का विस्तृत ब्यौरा दिया गया है जो कि तीन अलग-अलग स्रोतों से प्राप्त किया गया था—मेरी ज़िंबलिस्ट की डायरी से, डॉ. परचुरे द्वारा रोज़ाना लिखी गई मेडिकल रिपोर्ट से तथा ‘के’ की मृत्यु के बाद स्कॉट फोर्ब्स द्वारा लिखे गए विवरण से।

* (समय पर पासपोर्ट न मिल पाने के कारण उपासनी नहीं आ पाए थे।)

23

मस्तिष्क समझने में असमर्थ है

'के' की मृत्यु कुछ मायनों में उतनी ही रहस्यमय थी जितना कि उनका जीवन। अपने जीवन के अधिकांश समय उन्हें यह महसूस होता रहा कि जीवित रहने की अपेक्षा 'चले जाना' अधिक आसान है लेकिन यह विडंबना ही है कि जब वह 'चले जाना' चाह रहे थे तब उन्हें जीवित रहना पड़ रहा था। उन्हें यह विश्वास था कि उन्हें मालूम है उनकी मृत्यु कब होने वाली है, पर मृत्यु एक अप्रत्याशित घटना की तरह उनके सामने आई। ओहाय की अंतिम रिकॉर्डिंग में जब उन्होंने 'बेहूदा भारतीय अंधविश्वासों' की बात की थी तो उनका इशारा भारत में प्रचलित उसी पारंपरिक विश्वास की तरफ था कि कोई धार्मिक पुरुष 'इच्छामृत्यु' को आमंत्रित कर सकता है। 'के' अगर चाहते तो शरीर को खाना पहुंचाने वाली ट्यूब को निकलवाकर मृत्यु को बुला सकते थे, किंतु उन्हें लगा कि ऐसा करना आत्महत्या होगी, उस पवित्र उत्तरदायित्व को भंग करना होगा जिसके तहत उन्हें एक देह का ज़िम्मा सौंपा गया है। लेकिन क्या मृत्यु की 'इच्छा करना' भी—यदि वह पूरी हो जाए—एक तरह की आत्महत्या नहीं है?

'के' को आश्चर्य हुआ कि 'वह अन्य' एक बीमार शरीर को ही क्यों धारण रखना चाहता है; क्यों नहीं उन्हें जाने देता। क्या यह बीमारी उनकी किसी गलती का परिणाम है, उन्होंने सोचा। यह पूछा जा सकता है कि 'उस अन्य' ने उन्हें इसलिए जाने दिया क्योंकि उनका शरीर अनुपयोगी हो गया था, या 'उस अन्य' ने एक घातक बीमारी को इसलिए बढ़ने दिया कि 'के' के पास कहने के लिए अब कुछ शेष नहीं रहा था, कारण कि उनके द्वारा दी जाने वाली शिक्षा अब पूरी हो चुकी थी? किसी भी सूरत में, ऐसा लगता है कि 'उस अन्य' ने आख़िर में भी उनका साथ नहीं छोड़ा था।

'के' को विश्वास था कि 'कुछ' है जो यह निर्णय ले रहा है कि उनके साथ क्या होना चाहिए और जिसके बारे में उन्हें बात करने की अनुमति नहीं थी। पर साथ में वह यह भी कह रहे थे कि कितना अद्भुत होता अगर 'कुछ' ऐसा हो जो यह तय कर रहा हो कि उनके साथ क्या-क्या होना है। निश्चय ही यहां विरोधाभास है। लेकिन इसके अलावा भी कई सारी असंगतियां उनके वक्तव्यों में मिलती हैं जो उन्होंने अपने बारे में दिए।

'के' को इस बात में कभी भी शक नहीं रहा कि वह किसी के द्वारा संरक्षित हैं। उन्हें यह पक्का भरोसा था यदि वह हवाई जहाज़ में हैं, या वार्ता देने के लिए किसी भी तरीके से यात्रा कर रहे हैं तो उस दौरान उन्हें कुछ नहीं हो सकता था और यह सुरक्षा उस व्यक्ति को भी उपलब्ध रहती थी जो उनके साथ यात्रा कर रहा हो। पर साथ ही यह उनका फ़र्ज़ बनता था कि महज मनोरंजन के लिए वह अपने को ख़तरे में न डालें, जैसे कि ग्लायडिंग करना। उन्होंने न कभी शिक्षाओं के महत्त्व के बारे में संदेह किया और न ही उस देह के महत्त्व के बारे में जो उनकी निगरानी में सौंपी गयी थी। उन्होंने यहां तक कहा था कि ऐसी देह बनने में कई सदियाँ लगी हैं। (हमेशा बात 'इस शिक्षा', 'इस देह' की होती थी; 'मेरी शिक्षा', 'मेरी देह' उन्होंने कभी नहीं कहा।) ऐसा लगता था कि वह अपने स्वयं के रहस्य के भीतर भी थे और बाहर भी। वह कोई रहस्य निर्मित करना नहीं चाहते थे, इसके बावजूद एक रहस्य सदा मौजूद रहा जिसे समझ पाने में वह स्वयं को भी अक्षम ही पाते थे—उनकी समझ में इस रहस्य को हल करना उनका काम नहीं था, हालांकि इस बात के लिए वह उत्सुक रहते थे कि अन्य लोग इसे हल कर पाएँ, और तब वह उन लोगों के हल की पुष्टि कर सकेंगे।

'के' ने कहा था कि 'प्रकटन' (रेवलेशन) के रूप में यह शिक्षा उन तक पहुंची; यदि वह इस बारे में सोचने बैठ जाते तो यह उन तक कभी नहीं पहुंचती। फिर भी स्पष्ट है कि यह शिक्षा उन तक रोज़ाना पहुंचती रही जब वह अपनी 'नोटबुक' लिख रहे थे। क्या एकाएक 'नोटबुक' लिखने के लिए उन्हें किसी चीज़ ने प्रेरित किया? विषयवस्तु के अलावा, वह पांडुलिपि अपने आप में अद्‌भुत है—तीन सौ तेईस पेज बिना किसी काट-छांट के!

'के' के अपने शब्दों के कारण यह निष्कर्ष निकालने के लिए बाध्य होना पड़ता है कि वह किसी चीज़ के 'संवाहक' थे और इसी कुछ के कारण यह शिक्षा उन तक पहुंची थी। हालांकि अधिकांशतः उस कुछ से वह इतने एकाकार रहते थे कि वह कुछ वह स्वयं थे। इतना ही नहीं, जब 'वह' उनसे अलग भी होता तो वह तब उनके पास वापस आ जाया करता जब वह इस बारे में गंभीरता से बात करने लग जाते थे या उसके प्रति स्वयं को खुला छोड़ देते थे, ख़ासकर रात्रिकालीन ध्यान के समय; बुलाते वह उसे कभी नहीं थे। कभी-कभार उन्हें उसे वहां देखकर अचरज भी होता था। 'नोटबुक' में वह इसका ज़िक्र करते हैं कि कैसे वह गश्टाड के शांत वातावरण से पेरिस के आठवीं मंज़िल के आवास में पहुंचते हैं और पाते हैं कि "दोपहर को चुपचाप बैठे, घर की छतों के ऊपर देखते वक्त अत्यंत अप्रत्याशित ढंग से उस आशिष, उस शक्ति, उस अन्यता का सौम्य स्पष्टता के साथ आगमन हुआ; उसने पूरे कमरे को भर दिया और वहां मौजूद रहा। यह लिखते हुए भी वह यहां मौजूद है।"

मैंने लोगों को यह चर्चा करते हुए सुना है कि 'के' की प्रेरणा किसी भी अन्य कलाकार की प्रेरणा से भिन्न नहीं थी, ख़ासकर किसी संगीतकार से; कोई चाहे तो मोत्सार्ट की प्रतिभा के स्रोत का पता लगाने की कोशिश कर सकता है। यदि यह शिक्षा 'के' के

मस्तिष्क से आयी होती तो यह बात तर्कसंगत लगती, लेकिन मैंने किसी भी प्रतिभा के बारे में यह नहीं सुना कि 'प्रॉसेस' जैसे वाकये से उसका गुज़रना हुआ हो।

लॉर्ड मैत्रेय की परिकल्पना को यदि हम स्वीकार कर पाते, तो 'के' के रहस्य से तुरंत पर्दा उठ जाता, जिसके अनुसार मैत्रेय अपने लिए तैयार किसी देह को धारण करते हैं। तब 'प्रॉसेस' के बारे में जो कुछ भी सुना गया है वह सब अपना उचित स्थान ले लेता—ओहाय, अर्वल्ड और पर्जिन में पहुंचे वे सारे संदेश तथा 'के' की अपनी यह धारणा कि यह दर्द कुछ ऐसा है जिसे बरदाश्त करना ही होगा, उससे बचने या उसे कम करने का कोई भी प्रयास किए बिना। इस अद्‌भुत घटना की अद्वितीय विशेषता का खुलासा नित्या के माध्यम से ओहाय में 'लाये गये' इस संदेश से हो जाता है : "अभी जो काम चल रहा है वह अत्यधिक महत्त्व का है और अत्यंत नाज़ुक है। विश्व में ऐसा प्रयोग पहली बार हो रहा है।"

जिस प्रकार विश्व शिक्षक ('वर्ल्ड टीचर') होने का खंडन उन्होंने पूरी तरह कभी नहीं किया उसी तरह इस परिकल्पना का खंडन भी उन्होंने पूरी तरह कभी नहीं किया। वह बस यही कहा करते थे कि यह परिकल्पना 'कुछ ज़्यादा ही स्थूल' थी, या 'सीधी-साफ नहीं' थी, और सच में ऐसा लगता भी है। ओहाय में 1972 में जब वह एक समूह को संबोधित कर रहे थे तो उनसे पूछा गया कि वह कौन हैं, तब उनका उत्तर था : "मुझे लगता है कि हम लोग किसी ऐसे मसले की तहकीकात कर रहे हैं जिसे चेतन मन कभी नहीं समझ सकता है...कुछ ऐसा विद्यमान है, मानो एक विराट जलाशय हो, जिसे यदि चित्त स्पर्श कर पाता है तो ऐसा कुछ प्रकट होगा जिसे जो किसी भी बौद्धिक मिथक से—आविष्कार, अनुमान या रूढ़ि से—उद्‌घाटित नहीं किया जा सकता। ऐसा कुछ है, पर मस्तिष्क उसे समझने में असमर्थ है।" इसके दो साल बाद जब मैंने उनसे इस बारे में प्रश्न किया तो उन्होंने कहा था कि हालांकि वह इसका स्वयं पता नहीं लगा सकते ("पानी यह नहीं जान सकता कि पानी क्या है"), फिर भी उन्हें 'पक्का यकीन' था कि मेरी ज़िंबलिस्ट, मैं और अन्य लोग यदि साथ मिलकर बैठ जाएं और कहें, 'आइए, इसकी तह में जाएं', तो सच्चाई का पता लगाया जा सकता है; लेकिन साथ ही उन्होंने यह भी जोड़ा कि इसके लिए 'आपके मस्तिष्क का रिक्त होना ज़रूरी है'।

यह हमें 'रिक्त मन' के प्रश्न पर ले आता है। मेरी पूछताछ के दौरान 'के' बार-बार 'उस बालक' के खाली, रिक्त मन की ओर लौट आते थे। उनका कहना था कि यह एक ऐसी रिक्तता थी जो उनसे कभी अलग नहीं हुई। उन्होंने सवाल किया कि वह क्या था जिसने उस मन को खाली रखा? वह क्या था जिसने उस रिक्तता को हमेशा बचाए रखा? अगर वह स्वयं उस रहस्य के बारे में लिखने बैठते तो शुरुआत उस खाली मन से ही करते। अपनी मृत्यु के नौ दिन पूर्व कहे गए उनके ये शब्द मेरे मन में ऐसे ही गूंजते हैं जैसे कि उनके अन्य कथन : "काश आप लोग यह जान पाते कि आप किससे चूकते रहे—उस अथाह रिक्तता से।"

'के' का कहना था कि जिस थियोसोफी में उनका पोषण हुआ, उससे वह कभी

संस्कारबद्ध नहीं हुए। क्या यह मुमकिन नहीं है कि अवचेतन स्तर पर वह उससे संस्कारित हुए हों (हालांकि उन्होंने यह कभी नहीं माना कि अवचेतन जैसा भी कुछ होता है), और जब वह अपने शरीर से बाहर होते थे तब वे सारी बातें, जो लॉर्ड मैत्रेय और मास्टर आदि के बारे में उन्हें बताई गई थीं, फिर सतह पर आ जाती थीं। लेकिन इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि उन्हें अपने शरीर से बाहर क्यों आना पड़ता था, और 'प्रॉसेस' जैसी घटना की आवश्यकता क्या थी।

एक दूसरा पहलू जिस पर हमें गौर करना है वह है : ऊर्जा जो उनमें प्रायः प्रवेश करती रहती थी, या उनसे होकर गुज़रती थी। जब वह इस बारे में गंभीरता से बात कर रहे होते थे कि वह कौन हैं, वह कहते, “आप इसे अभी, इस कमरे में, धड़कता हुआ महसूस कर सकते हैं।” अपनी आख़िरी टेप-रिकॉर्डिंग में उन्होंने कहा, “मुझे नहीं लगता कि लोगों को इसका एहसास है कि कैसी विस्मयकारी ऊर्जा और प्रज्ञा इस देह से होकर गुज़री है”। जब मैंने कैसेट में इन शब्दों को सुना तो मुझे तुरंत ब्रॉकवुड पार्क की उस दोपहर का स्मरण हो आया जब ड्रॉइंग रूम के दरवाज़े से उस शक्ति ने, उस ऊर्जा ने, मुझे अपने घेरे में ले लिया था—यह उस समय हुआ था जब मुझे इसकी तनिक भी उम्मीद नहीं थी। अगर वह आवेग, वह विराट ऊर्जा, 'के' की देह का 1922 से—यानी जब 'प्रॉसेस' की शुरुआत हुई थी तब से—इस्तेमाल कर रही थी, तो यह हैरानी की बात थी कि वह इतने लंबे समय तक जीवित रहे। क्या वह ऊर्जा ही 'वह अन्य' थी? क्या वह ऊर्जा ही उस 'प्रॉसेस' की पीड़ा का कारण थी? क्या वह ऊर्जा, वह 'प्रोसेस', सन् 1922 से शुरू होकर उनके जीवन के आख़िरी साल तक जारी रहा और वह पीड़ा क्रमशः कम होती गई, क्योंकि उनकी देह धीरे-धीरे उस रिक्तता के सृजन हेतु और अधिक खुलती गई? वृद्धावस्था में जो ऊर्जा उनके भीतर से होकर गुज़री, यदि उनकी देह उस ऊर्जा को ग्रहण करने के लिए पहले से तैयार नहीं की गई होती, और वह एकाएक अपने पूरे आवेग के साथ उनमें प्रवेश कर जाती तो क्या उसने उन्हें मार दिया होता?

अब मुझे लगता है कि यह प्रश्न अवश्य पूछा जाना चाहिए : क्या 'के' को अपने बारे में कि वह कौन हैं और क्या हैं, उससे कहीं अधिक पता था जितना उन्होंने प्रकट किया? जब उन्होंने मुझे और मेरी ज़िंबलिस्ट को कहा कि अगर हम सच्चाई का पता लगा लें तो वह इसकी पुष्टि कर सकेंगे, और हम उसे व्यक्त करने के लिए सही शब्द भी ढूंढ़ लेंगे, तब क्या वह सच में यह कह रहे थे : “मुझे आपको सच्चाई नहीं बतानी चाहिए, पर हां, अगर आप स्वयं इसका पता लगा लें तो मैं इसकी पुष्टि कर दूंगा कि यह सही है या नहीं?” शायद इस बारे में सबसे महत्त्व की बात उन्होंने मेरी से कही थी। 1985 में अक्टूबर के अंत में जब वह ब्रॉकवुड से दिल्ली के लिए निकलने वाले थे तो मेरी ने उनसे पूछा था कि क्या अब वह उन्हें फिर से मिल पाएंगी, तब उनका जवाब था : “मैं अचानक नहीं मरूंगा...यह सब किसी और के द्वारा तय होता है। मैं इस बारे में बात नहीं कर सकता। मुझे इसकी इजाज़त नहीं है। तुम समझ रही हो न? यह सब अत्यधिक गंभीर मामला है। कुछ बातें ऐसी हैं जिन्हें तुम नहीं जानतीं। यह सब अत्यंत विराट है, मैं तुम्हें बता नहीं

सकता।” (ध्यान दें कि यह सब ‘किसी और’ के द्वारा तय होता है, न कि ‘कुछ और’ के द्वारा)।

तो ‘के’ को अपने बारे में कुछ ऐसी बातों का पता था जो उन्होंने कभी नहीं बतायीं, हालांकि अपनी अंतिम कैसेट में उन्होंने पर्दे का एक छोर ज़रूर उठाया।

कई लोग यह महसूस करेंगे कि ‘के’ के रहस्य को समझने का कोई भी प्रयास न केवल समय की बरबादी है बल्कि पूरी तरह ग़ैरज़रूरी है, क्योंकि महत्त्व शिक्षा का है न कि शिक्षक का। पर किसी भी ऐसे व्यक्ति के लिए जिसने युवा कृष्णा को जाना है और शुरू की कुछ घटनाओं में हिस्सा लिया है, और जो यह स्वीकार नहीं कर सकता कि यह शिक्षा उनके अपने मस्तिष्क में विकसित हुई, उसके लिए यह तब तक एक तरसाती हुई पहेली बनी रहेगी जब तक कि वह संभवतः अपने मस्तिष्क को रिक्त करने में कामयाब नहीं हो जाता। ‘के’ ने कहा था : “कुछ है जो कमरे में मौजूद है। अगर आप उससे पूछेंगे कि वह क्या है, तो वह कोई उत्तर नहीं देगा। वह कहेगा, ‘तुम बहुत ही छोटे हो’।” सच में, यही एक विनम्र एहसास बचा रह जाता है कि हम अपने हमेशा शोर मचाते मस्तिष्क के साथ अत्यंत छोटे और क्षुद्र हैं।

कुछ ऐसा ही उन्होंने अपने अंतिम टेप में कहा था : “वे सब ऐसा दावा करेंगे या कल्पना करने की कोशिश करेंगे कि वे उसके संपर्क में आ गए हैं; शायद वे उसके थोड़े-बहुत संपर्क में आ भी जाएँ, यदि (लेखिका द्वारा प्रतिबलित) वे इन शिक्षाओं को जीते हैं।”

स्रोत जो भी रहा हो, ‘के’ की शिक्षा का आगमन विश्व इतिहास के एक निर्णायक दौर में हुआ है। जैसा कि उन्होंने वाशिंगटन में एक पत्रकार को कहा था : “यदि मानव बुनियादी तौर पर नहीं बदल जाता, मूलभूत रूप से अपने भीतर एक परिवर्तन नहीं ले आता, तो हम अपना विनाश करने जा रहे हैं। यह मनोवैज्ञानिक क्रांति अभी, इसी क्षण संभव है, न कि एक हज़ार साल बाद। हज़ारों साल तो हमने बिता दिये हैं और आज भी हम बर्बर, असभ्य ही हैं। इसलिए अगर हम अभी नहीं बदलते तो हम कल भी, और हज़ारों कल के बाद भी बर्बर, असभ्य ही रहेंगे।” तब अगर कोई यह पूछे : किसी एक व्यक्ति का बदलना कैसे पूरे संसार को प्रभावित कर सकता है? इसके लिए सिर्फ ‘के’ का उत्तर ही दोहराया जा सकता है : “बदलिए तो, तब देखिए कि होता क्या है।”

टिप्पणियों के स्रोत

AA	अड्यार आर्काइव्ज़
BA	ब्रॉकवुड आर्काइव्ज़
EFB	इंग्लिश फाउंडेशन बुलेटिन
Herald	द हेरल्ड ऑव स्टार
ISB	इंटरनेशनल स्टार बुलेटिन
KFAA	कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ऑव अमेरिका आर्काइव्ज़, ओहाय
SPT	स्टार पब्लिशिंग ट्रस्ट
TPH	थियोसोफिकल पब्लिशिंग हाउस, अड्यार, चेन्नई, भारत

श्रीमती बेसेंट और सी. डब्ल्यू. लेडबीटर के बीच हुआ पत्राचार अड्यार आर्काइव्ज़ में है। कृष्णमूर्ति के अनुरोध पर बी. शिवा राव द्वारा भेजी गयीं उन पत्रों की प्रतिलिपियों से उनको यहां उद्धृत किया गया है।

कृष्णमूर्ति द्वारा लेडी एमिली को लिखे गये पत्र ब्रॉकवुड आर्काइव्ज़ में हैं। लेडी एमिली द्वारा श्रीमती बेसेंट को लिखे गये पत्र अड्यार आर्काइव्ज़ में हैं।

संदर्भ-सूची

टिप्पणी

1. ब्लावत्स्की एंड हर टीचर्स, जीन ओवर्टन फुलर, पेज 24-27 (East-West Publications, 1988)
2. परंपरा के अनुसार बुद्ध श्रेणीक्रम की एक अवस्था थी। गौतम अंतिम बुद्ध हुए थे। ऐसा कहा जाता था कि धरती पर अपने कार्य को पूरा करने के बाद मैत्रेय अगले बुद्ध होंगे, इसलिए उनको बोधिसत्त्व की उपाधि दी गयी थी। मैडम ब्लावत्स्की ने अपने किसी भी लेखन में मैत्रेय के भावी अवतरण की बात का ज़िक्र नहीं किया था, लेकिन यह बात प्रमाणपुष्ट है कि उन्होंने अपने अनुयायियों से इस संदर्भ में कुछ कहा था, भले ही उसे गलत ढंग से समझा गया हो, क्योंकि मिसेज़ बेसेंट ने जब ऑर्डर ऑव द स्टार इन द ईस्ट की स्थापना की तो उन्होंने अपने आलोचकों से कहा था कि मैडम ब्लावत्स्की ने "भावी महान शिक्षक के आगमन के लिए विश्व को तैयार करना थियोसोफिकल सोसायटी का मिशन माना था; हालांकि इस घटना को उन्होंने संभवतः मेरे द्वारा इंगित किये गये समय से आधी सदी बाद रखा था।"
3. द मास्टर्स एंड द पाथ, सी. डब्ल्यू. लेडबीटर (TPH 1925)
4. कृष्णमूर्ति, पुपुल जयकर, पेज 16 (Harper & Row, 1986)
5. AA कृष्णा द्वारा लिखे गये एक निबंध "फिफ्टी यिअर्ज़ ऑव माइ लाइफ" से जिसे वह वरौंझविल, नॉर्मंडी में लिखने बैठे थे। हर साल का ब्यौरा कृष्ण इसमें जोड़ना चाहते थे लेकिन जो कुछ वास्तव में लिखा गया वह करीब 3500 शब्दों में 1911 तक के उनके जीवन का रेखाचित्र था।
6. क्लेयरवौयंट इन्वेस्टीगेशंज़, सी.डब्ल्यू. लेडबीटर, और द लाइव्स ऑव अलक्योनि, अर्नेस्ट वुड (निजी तौर पर प्रकाशित, अड्यार 1947) थियोसोफिकल जर्नल, इंग्लैंड, जनवरी-फरवरी 1965 को भी देखिये।
7. इस अध्याय में मिसेज़ बेसेंट और लेडबीटर के बीच हुए वार्तालाप को सी. जिनराजदास ने द थियोसोफिस्ट के जून 1932 के अंक में प्रकाशित किया था।
8. ऑस्ट्रेलियन थियोसोफिस्ट, सितंबर 1928 के अंक में क्लार्क द्वारा दिया गया दीक्षा का विवरण।
9. AA द यिअर्ज़ ऑव अवेकनिंग, पेज 35-38, में पूरा पत्र उद्धृत किया गया है।
10. द मैन एंड हिज़ मैसेज, लिली हेबर, पेज 49 (Allen & Unwin, 1931) में उद्धृत।
11. कैंडल्ज़ इन द सन, लेडी एमिली लट्यंस, पेज 32 (Hart-Davis, 1957)
12. लेडबीटर द्वारा लेडी एमिली को लिखे पत्र में इस मुकदमे का विवरण मिलता है।

(BA)
13. कैंडल्ज़ इन द सन, पेज 59-60
14. ऑकल्ट इन्वेस्टीगेशंज़, सी. जिनराजदास (TPH, 1938)
15. हेरल्ड, जून 1922
16. नित्या और कृष्णा के विवरण लेडी एमिली को भेजी गयी प्रतियों से उद्धृत किये गये हैं जो अब ब्रॉकवुड आर्काइव्ज़ में रखे हैं।
17. AA नित्या द्वारा दिनांक 17 फरवरी 1923 को हस्ताक्षरित। श्रीमती राधा बर्नियर की अनुमति से मूल की प्रतिलिपि से उद्धृत। पहली बार पुपुल जयकर की पुस्तक कृष्णमूर्ति में उद्धृत, पेज 49-57
18. 9000 शब्दों की यह गद्य-कविता हेरल्ड में द पाथ के नाम से तीन मासिक किस्तों में – अक्टूबर 1923 से प्रारंभ होकर—प्रकाशित हुई थी। 1981 में द पाथ को पोएम्ज़ एंड पैरेबल्स, जे. कृष्णमूर्ति (Gollancz, Harper & Row, 1981) में शामिल किया गया।
19. लेडी एमिली की डायरी, 1925 से (BA)
20. 'द मेनर' में लेडबीटर की कम्यूनिटी में जीवन किस तरह का था, इस विवरण को जानने के लिए पढ़िये : टू बी यंग, मेरी लट्यन्स (Corgi, 1989)
21. हेरल्ड, सितंबर 1925। इस अध्याय में वर्णित अन्य 'गुह्य' घटनाओं का वर्णन लेडी एमिली की डायरी में मिलता है। (BA)
22. हेरल्ड, फरवरी 1926
23. वही, जून 1926
24. वही, मार्च 1926
25. कैंडल्ज़ इन द सन, पेज 144
26. 31 जुलाई 1926 को मारिया-लुइसा कर्बी द्वारा आर.जी. मैकबीन को लिखा गया पत्र (Theosophist, 19 जुलाई 1948)
27. द पूल ऑव विज़डम (SPT, 1928)
28. KFAA
29. हू ब्रिंग्स द ट्रुथ (SPT, 1928)
30. द लास्ट फोर लाइव्ज़ ऑव एनी बेसेंट, ए. एच. नेदरकोट, पेज 193 (Hart-Davis, 1961)
31. L'Intransigéant के मार्च 1928 के अंक में छपे बोर्डेल के साक्षात्कार का अंग्रेज़ी अनुवाद इंटरनेशनल स्टार बुलेटिन के अप्रैल 1928 के अंक में उद्धृत है।
32. Let Understanding be the Law (SPT, 1928)
33. KFAA
34. बर्नार्ड शॉ, हेस्केथ पियर्सन, पेज 115 (Collins, 1942)
35. ISB जुलाई 1929
36. ISB सितंबर 1929
37. ये उद्घोषणाएं की गयी थीं : थियोसोफिस्ट के जून एवं दिसंबर 1931 के अंकों में; थियोसोफी इन इंडिया, 1931 में, तथा वेजवुड द्वारा लेडी एमिली को अक्टूबर 1929

में।

38. ISB जून 1931
39. कृष्णमूर्ति को लिखे गये लेडी एमिली के पत्र कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ऑव अमेरिका की आर्काइव्ज़ में हैं और इसकी प्रतिलिपियां ब्रॉकवुड आर्काइव्ज़ में हैं।
40. ISB जून 1931
41. कृष्णमूर्ति द्वारा लेखिका को बताया गया।
42. लातिन अमेरिका और मैक्सिको में हुई कृष्णमूर्ति की वार्ताओं की प्रामाणिक रिपोर्ट जिन्हें स्वयं उनके द्वारा संशोधित किया गया था। इनका प्रकाशन 1936 में SPT द्वारा किया गया।
43. कृष्णमूर्ति की पांडुलिपि, 1976 (BA)
44. कमेंटरीज़ ऑन लिविंग, पेज 15, 16 और 44। इस पुस्तक के दो और खंड 1959 एवं 1960 में प्रकाशित हुए थे। इन तीनों खंडों का संपादन राजगोपाल ने किया था।
45. कृष्णमूर्ति, पुपुल जयकर, पेज 57। कृष्णमूर्ति द्वारा नंदिनी मेहता को 1948 एवं 1960 के बीच लिखे खूबसूरत पत्रों के अंशों को इस पुस्तक में उद्धृत किया गया है। (पेज 251-273)
46. ट्रायल ऑव मिस्टर गांधी, फ्रांसिस वाटसन (1969)
47. पुपुल जयकर के नोट्स से जो पहली बार द यिअर्ज़ ऑव फुलफिलमेंट में छपे थे। यह विवरण मामूली फेरबदल के साथ उनकी पुस्तक कृष्णमूर्ति, पेज 125-130, में भी दिया गया है।
48. वही, पेज 202-203
49. डोरिस प्रैट को लिखे गये एवं उनसे आये पत्र। (BA)
50. कृष्णमूर्ति, पुपुल जयकर, पेज 242
51. वांदा स्कारावेल्ली के नोट्स से।
52. Aldous Huxley, Sybille Bedford, II, p. 71 (Chatto & Windus, 1973)
53. EFB, नं. 2, 1969
54. द अर्जेन्सी ऑव चेंज। इस पुस्तक और एक पुरानी पुस्तक द ओनली रेवलूशन को एक खंड में मिलाकर सेकेंड पेंग्विन कृष्णमूर्ति रीडर (1973) प्रकाशित हुई थी।
55. जनवरी और मार्च 1972 (KFAA)
56. प्रतिलेखन (ट्रान्सक्रिप्ट्स) से (BA)
57. तीनों फाउंडेशनों में उपलब्ध ये वीडियो टेप अत्यधिक लोकप्रिय रहे हैं।
58. फ्रीडम फ्रॉम द नोन, पेज 116
59. गोल्डन जुबली सूवनियर बुक, (कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया, 1979)
60. लेटर्स टू द स्कूल्स (कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंग्लैंड, 1981) 15 नवंबर 1981 से 15 नवंबर 1983 के बीच स्कूलों को लिखे गये अठारह और पत्र फाउंडेशन द्वारा 1985 में प्रकाशित किये गये।
61. एक्सप्लोरेशन इनटू इनसाइट, पुपुल जयकर एवं सुनंदा पटवर्धन द्वारा संपादित, पेज 77 (Gollancz, Harper & Row, 1979)
62. EFB, नं. 42, 1982

63. द फ्यूचर ऑव ह्यूमैनटी (Mirananda, Holland, 1986) मेरी कैडोगन ने बिना अपना नाम दिये द एंडिंग ऑव टाइम को संपादित किया।
64. द नेटवर्क ऑव थॉट, पेज 99-110 (Mirananda. Holland, 1983)
65. द फ्लेम ऑव अटेंशन (Mirananda. Holland, 1983)
66. KFAA और BA में उपलब्ध
67. पुपुल जयकर की पुस्तक कृष्णमूर्ति में विस्तार से इनमें से कई परिचर्चाओं को शामिल किया गया है।
68. कृष्णमूर्ति टु हिमसेल्फ (Gollancz, Harper & Row, 1987)
69. लॉस एलमॉस (एक पुस्तिका) (कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंग्लैंड, 1985)
70. यू.एन. सेक्रेटेरियल न्यूज़, 16 मई 1984 एवं EFB नं. 47, 1984
71. वॉशिंग्टन डॉ.सी. टॉक्स, 1985 (Mirananda, Holland, 1988)
72. इन बहुत बढ़िया तस्वीरों में से सत्तर तस्वीरों को लास्ट टॉक्स एट सानेन (Gollancz, Harper & Row, 1986) में प्रकाशित किया गया था।
73. BA
74. वही
75. 'सेंटर' के बारे में मेरी ज़िंबलिस्ट और स्कॉट फोर्ब्स के साथ शोनरीड (Schonried, Saanen) में 1984 के अगस्त में बात करते हुए।
76. द फ्यूचर इज़ नाउ, सं. राधिका हर्ज़बर्गर (Golancz, 1988)
77. कृष्णमूर्ति की मृत्यु के बाद उनकी बीमारी के बारे स्कॉट फोर्ब्स द्वारा लिखे गये लंबे विवरण से।
78. कृष्णमूर्ति की मृत्यु के बाद स्टीफन स्मिथ द्वारा लेखिका को लिखे गये एक पत्र से।
79. कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया आर्काइव्ज़ एवं ब्रॉकवुड आर्काइव्ज़।
80. इस फिल्म का वीडियो ब्रॉकवुड आर्काइव्ज़ में उपलब्ध है।
81. EFB का विशेष संस्करण, 1986, तथा द फ्यूचर इज़ नाउ (Golancz, Harper & Row, 1988).
82. के.एफ.आई. बुलेटिन, नं. 3 1986
83. टेप रिकॉर्डिंग से (BA)
84. वही
85. वही (शब्दशः प्रतिलेखन)

Book by Krishnamurti

The First and Last Freedom (1954)
Education and the Significance of Life (1955)
Commentaries on Living (1956)
Commentaries on Living, Second Series (1959)
Commentaries on Living, Third Series (1960)
This Matter of Culture (1964)
Freedome from the Known (1969)
The Only Revolution (1970)
The Urgency of Change (1971)
The Impossible Question (1972)
Beyond Violence, paperback (1973)
The Awakening of Intelligence, illustrated (1973)
The Beginnings of Learning, illustrated (1975)
Krishnamurti's Notebook (1976)
Truth and Actuality, paperback (1977)
The Wholeness of Life (1978)
Exploration into Insight (1977)
Meditations (1979)
Poems and Parables (1981) (American title : From Darkness of to Light)
Krishnamurti's Journal (1982)
The Ending of Time (1985)
Last Talks of Saanen, illustrated (1986)
Krishnamurti to Himself (1987)
The Future is now (198)

Published By Penguin

The Penguin Krishnamurti Reader (1970)
The Second Penguin Krishnamurti Reader (1973)
The Beginning of Learning (1978)

The Impossible Question (1978)

❑ ❑ ❑